दो शब्द

महा पुरुष विश्व वाटिका का अनुपम मोहक पुष्प होता है। उसकी मधुमय सुवास से सारा विश्व सुवासित हो उठता है। पृथ्वी की क्षान्ति, पानी का जीवन तत्त्व, अग्नि का दिव्य तेज, एव वायु की प्राण वाहिनी शक्ति हमे सन्त मे एक साथ मिल जाती है। विश्व की महत्तम शक्तियाँ मानव के लिए उपकारी है। सद्गुणो का प्रभावलयित सन्त भी असीम उपकारी है। सस्कृत का कलाकार एक श्लोक मे इसी चिरन्तन सत्य को स्पष्ट करते हुए कह रहा है कि:—

धर्मः पापं शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा
पापं ताप च दैन्य च, हन्ति सन्तो महाशयाः ॥

धर्म पाप को नष्ट करता है। जेठ की प्रखर धूप से जल रहा तन रात्रि मे पीयूष वर्षी सुधा घर की चन्द्रिका मे मनस्ताप को धो देता है। उसके तन मन नयन चमक उठते है। कल्प वृक्ष की शीतल छाया-शरण में गया व्यक्ति दारिद्रय के कठोर पाश से मुक्त होकर वैभव विलास के प्रासादो में पहुच जाता है। कवि कहता है गगा, चन्द्र एव कल्प वृक्ष प्रत्येक अपनी-अपनी एक-एक

विशेषता रखते हैं पर महापुरुषों के वरद हस्त के नीचे गया मानव पाप ताप एव दारिद्रय के अभिशाप से मुक्त होकर आनन्द और हर्ष साम्राज्य को पा लेता है।

श्रद्धेय जैन दिवाकरजी महाराज सचमुच एक ऐसी ही महान विभूति थी। समाज उनकी दिव्य प्रभा से आलोकित था। जिस ओर उनके चरण सरोज घूम पडते थे जनता कृतकृत्य हो जाती थी। उनकी प्रवचन शैली मे वह जादू था कि एक बार भी जिसने उनका प्रवचन सुन लिया उसका मानस लोह चुम्बक की भाँति चिपक जाता था। उनकी ओजमयी दिव्यवाणी को सुन कर बड़े २ मौलवी मुसलमान व वोहरे भी झूम उठते थे।

बडे २ महाराजा महाराणा भी आपके प्रवचनो के लिए उत्सुक थे। आज भी मैं गाँवो मे विहार करता हू गावो के किसान मौलवी और मुल्लाजी पूछते हैं हमारे पैगम्बर हमारे गुरूजी दिवाकरजी कहा है ? क्या उत्तर देता उस समय में जीभ हिलती ही नही थी। सचमुच वे जैन जगत् के ही नही भारत भर के दिवाकर थे। यद्यपि मैं उनकी अधिक सेवा का लाभ न ले सका हूँ फिर भी जो कुछ थोड़े दिनो का परिचय रहा है वे क्षण मेरे जीवन के सुनहरे क्षण थे। वे उनकी दिव्य विभूति को लिये मेरी पलको मे आज भी समाये रहते हैं।

वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ का हरा भरा उद्यान जो हमारे नेत्रो के सामने है उसके बीज वही से मिले थे। व्यावर सम्मेलन इस बात का साक्षी है। कोटा का भव्य चातुर्मास तो तीन महा नदियो का संगम स्थल प्रयागराज था। तीनो महा

सघों में प्रेम की सुवास पैदा कर यह समय अपने को धन्य कर गया है।

प० मध्य भारत मंत्री श्री प्यारचन्दजी महाराज दिवाकर के दिव्य पुष्पों का जो हार निर्माण कर रहे है उनका यह प्रयत्न स्तुत्य है-उनके लिए मैं उनको हार्दिक बधाई देता हूँ क्योंकि दिवाकरजी महाराज श्री के भौतिक देह के अभाव मे उनका यह यश शरीर समाज के लिए गौरव की वस्तु होगी !

महावीर भवन, इन्दौर
दिनांक १६-६-१६५४

मुनि सौभाग्य

विषयानुक्रमणिका

卐 ● 卐

दुर्गुण--विजय

स्तुति :

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवान्! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय? हे प्रभो! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं?

भगवान्! आप अनन्त गुणों के सागर हैं और आपके समस्त गुण चन्द्रमा के समान निर्मल हैं। मेरी तो शक्ति ही क्या

है, देवो के गुरु वृहस्पति के समान वुद्धि वाला भी उन गुणो का वर्णन करने मे समर्थ नही हो सकता। प्रलयकाल का सा तूफान आया हो और तूफान के कारण मगरमच्छ उद्धत हो रहे हो तो उस समुद्र को क्या अपनी भुजाओ से कोई पार कर सकता है? प्रथम तो शान्त समुद्र भी भुजाओ से पार नही किया जा सकता, फिर अगर प्रलयकालीन तूफान से समुद्र मे भीषण उवाल आ रहा हो और उसमे रहने वाले मगरमच्छ क्रुद्ध हो रहे हो तो उसका पार करना एकदम ही असभव है। इसी प्रकार हे गुणों के सागर! आपके गुणों का कथन करना भी असभव है। ऐसे भगवान् ऋषभदेवजी है। उनको ही हमारा वार वार नमस्कार हो।

भाइयो! दूसरे मतावलम्बियो ने ईश्वर और जीव को अर्थात् परमात्मा एवं जीवात्मा को मूल मे ही अलग-अलग स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि जीवात्मा कभी परमात्मा नही वन सकता। किन्तु जैन धर्म की ऐसी मान्यता नही है। वस्तुओं का विभाग उनके मौलिक गुणो के आधार पर होता है। गुणों में भिन्नता हो तो गुणी अर्थात् द्रव्य मे भी भेद माना जाता है। जहाँ गुणभेद नही होता वहाँ द्रव्य मे भी भेद नही माना जाता। जैसे ससार के सभी जीवो के गुण समान है, अतएव वे सव आत्मा नामक एक ही द्रव्य के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार जव हम जीवात्मा और परमात्मा के गुणों की परीक्षा करते हैं तो वे समान ही प्रतीत होते है। आत्मा ज्ञानमय है और परमात्मा भी ज्ञानमय है। चेतना आत्मा का लक्षण है और परमात्मा का भी लक्षण है। ऐसी स्थिति मे आत्मा और परमात्मा

को सर्वथा भिन्न श्रेणी मे रखना उचित नही है। दोनों का ही मूल स्वरूप समान है।

इस दृष्टि से विचार करने पर विदित होगा कि परमात्मा मे जो और जितने गुण है, वही और उतने ही गुण प्रत्येक जीवात्मा मे भी है। परमात्मा की उपासना करने से उन गुणो की अभिव्यक्ति हो जाती है। अगर परमात्मा की भक्ति और चरम सीमा की साधना करने पर भी जीवात्मा कभी परमात्मा का पद न पा सकता होता तो फिर परमात्मा की उपासना की आवश्यकता ही क्या थी ?

इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दोनों समान स्वरूप के धारक है। फिर भी उनमे जो अन्तर है वह गुणो के प्रकट होने और न होने का है। जिसके गुण पूर्ण रूप से विकसित हो चुके हैं, वही परमात्मा है और जिसके गुणो का विकास नही हुआ है वह जीवात्मा है।

गुण कब प्रकट होते हैं ? जब दुर्गण दूर हो जाते हैं। अर्थात् गुणो मे आया हुआ अनादिकालीन विकार जब दूर हो जाता है, तब स्वाभाविक गुण अपने असली स्वरूप मे प्रकट हो जाते हैं। दुर्गण, गुणो को दबा देते हैं। मान लो एक आदमी बड़ा ही दानवीर है किन्तु परस्त्रीगामी है, या झूठ बोलता है या चोरी करता है। तो उसके दानवीरता रूप गुण को उसका दुर्गुण दबा देगा। इस प्रकार जो मनुष्य बहुत लायक होता है उसमे भी अगर कोई दुर्गुण होता है तो वह समस्त लायकी को कलकित कर देता है।

राजा रावण को ही लीजिए। उसमे गुणो की कमी नही थी। जब वह भरत क्षेत्र के तीन खण्डो पर विजय प्राप्त करने का उद्योग कर रहा था तो एक राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। वह राजा शक्तिशाली था और विद्याओं को भी जानता था। उस पर विजय प्राप्त करने के रावण ने अनेक प्रयत्न किये, पर वह जीता न जा सका। उसकी राजधानी पर घेरा डाले हुए रावण ऊब उठा। रावण के सभी उद्योग निष्फल गये।

उस राजा की रानी जब कुँवारी थी तो रावण के साथ विवाह करना चाहती थी। मगर उसके पिता ने किसी कारण रावण के साथ उसका विवाह करना उचित न समझ कर इस राजा के साथ कर दिया। रानी को जब मालूम हुआ कि रावण अपनी सेना लेकर इस राज्य पर आक्रमण करने आये हैं और विजय प्राप्त नही कर पा रहे हैं तो उसकी पूर्वकालीन आकांक्षा जाग उठी। वह सोचने लगी—रावण को प्राप्त करने का यह स्वर्णमय अवसर है। अगर मैं उनकी सहायता करूँ तो वह मुझे अपना लेंगे। इस प्रकार विचार करके रानी ने रावण के पास अपनी विश्वासपात्र दूती भेज कर कहलाया—अगर आप मुझे अंगीकार कर लेने के लिए तैयार हों तो मैं आपको वह उपाय बतला सकती हूँ, जिससे अनायास ही आपको विजय प्राप्त हो सकेगी।

दूसरा कोई साधारण राजा होता तो वह इसे अप्रार्थित वरदान मानता और प्रसन्नता के साथ इस मॉग को स्वीकार कर लेता। मगर लकाधिपति रावण बड़ा धर्मनिष्ठ राजा था।

वाल्मीकि ने उसे महात्मा कह कर पुकारा है। वह अपनी नीति-मर्यादा पर दृढ था। उसने उत्तर दिया—मैं विजय प्राप्त कर सकूं अथवा न प्राप्त कर पाऊं, मगर परस्त्री को मैं नहीं स्वीकार कर सकता। मैं परस्त्री को माता के समान समझता हूं। दूती अपना-सा मुँह लेकर वहाँ से चलती बनी।

यह कथा लम्बी है, परन्तु मेरे कहने का आशय यह है कि रावण कोई गया-बीता, दुश्शील व्यक्ति नहीं था। वह परमात्मा का भक्त था, अपने कर्त्तव्य पर स्थिर रहने वाला था। विवेकवान् था। मगर होनहार की बात कि जब उसकी मृत्यु का समय निकट आ गया और उसकी बुद्धि में फर्क आ गया तो उसने सीता का हरण कर लिया। इसी को कहते हैं—विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

फिर भी आप रावण की प्रणवीरता का खयाल कीजिए। उसकी प्रतिज्ञा थी कि जब तक कोई स्त्री मुझे न चाहेगी, उसके साथ विषयसेवन नहीं करूंगा। इस प्रतिज्ञा का रावण ने अन्त तक दृढतापूर्वक निर्वाह किया। सीता अकेली थी और रावण के पास असीम शक्ति थी। वह प्रचण्ड बल का स्वामी था। वह बलात्कार करने पर उतारू हो जाता तो कौन उसे रोकने जाता? मगर नहीं उसने क्षण भर के लिए भी ऐसा विचार नहीं किया। उसने सीताजी को बहुत समझाया कि तुम मुझे पति के रूप में अंगीकार कर लो, प्रलोभन भी दिये और भय भी दिखलाया, किन्तु बलात्कार नहीं किया और न ऐसा करने की इच्छा ही की।

इस प्रकार रावण मे अनेक सद्गुण थे। फिर भी उसने अपने जीवन मे एक भूल कर डाली। वह सीताजी जैसी सती को

चुरा कर ले गया। इसी दोष के कारण वह जगत् मे निन्दा का पात्र बन गया। लोग आज कल भी प्रतिवर्ष रावण का पुतला बना कर जलाते हैं, गालियाँ देते है और पत्थर मारते हैं। मगर ऐसा करने वाले कभी यह नही सोचते कि आज कल अधिकांश लोग तो रावण के भी चाचा बन कर बठे हैं! उनके मन, वचन और काय तीनो ही बिगड गये है!

रावण का पुतला जलाने वाले! तू जरा अपनी तरफ तो देख! तू स्वय रावण का बाप बना बैठा है और रावण को जलाने चला है! अरे, पहले तू अपनी दुर्वासनाओ को जला, जो तुझे रावण से भी गया-बीता बना रही हैं पतित कर रही हैं, और तब रावण के विषय मे विचार करना! जो परस्त्री लम्पट है और वेश्यागामी हैं, वे भी रावण को पत्थर मारने दौडते हैं, मगर यह नहीं सोचते कि जिस दोष के कारण रावण की यह दशा हुई, वही दोष मुझमे और भी ज्यादा है तो मेरी क्या दशा होगी!

भाइयो! रावण जैसी मर्यादा रखने वाला कौन है? किन्तु एक अवगुण भी दूसरे सब सद्गुणो पर पानी फेर देता है। रावण सीता को सिर्फ ले ही गया था, उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नही किया, इतने मात्र से वह बडा दोषी समझा गया। रामायण मे उसकी निन्दा की गई और आज भी दुनिया उसकी बुराई करती है। इसीलिए मैंने कहा है कि गुणो का नाश करने वाले दुर्गुण हैं। अतएव अपने अन्त करण में एक भी दुर्गुण को स्थान मत दो। दुर्गुणो को स्थान दोगे तो हानि उठाओगे। उलटे रास्ते पर जाओगे तो दुनिया तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखेगी। यह मत सोचो कि मेरे काम को कोई जानता नही है। मैं छिपकर पाप करता हूँ।

किसी को पता ही क्या लगने वाला है ? ऐसा सोचना और समझना अपने आपको ही धोखे मे रखना है। रावण क्या ढोल बजा कर सीता को ले गया था ? नही, वह भी छिपकर, अकेले मे ही ले गया था। फिर भी बात छिपी नही रही। इसी प्रकार लाख प्रयत्न करने पर भी तुम्हारा पाप छिपा नही रहेगा। वह एक दिन अवश्य प्रकट होगा और तुम्हें निन्दा एव घृणा का पात्र बना देगा।

प्रारभ मे थोडी–सी असावधानी होती है और उसी असावधानी के मार्ग से पापो का प्रवेश हो जाता है। अतएव पापों से बचने के लिए उस प्रारभिक असावधानी से बचने की आवश्यकता है। भगवान् ने साधुओ को आज्ञा दी है कि तुम्हे वेश्याओ के मुहल्ले मे होकर गोचरी के लिए नही जाना चाहिए, क्योकि इससे चित्त मे प्रमाद उत्पन्न होने की सभावना है, व्रतो मे बाधा आ सकती है। कदाचित् बाधा उत्पन्न न हो तो लोक मे अप्रतीति तो होती ही है। वेश्याओ के मुहल्ले मे जाते देख कर लोग साधु के विषय मे न जाने कैसी–कैसी बाते सोचने लगेंगे। साधु को ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिए, जिससे जनता को किसी प्रकार अश्रद्धा या शका उत्पन्न हो।

यह व्यवहार की बात है। व्यवहार अच्छा होना चाहिए। निश्चय की शुद्धि के लिए व्यवहार की शुद्धि आवश्यक है। जिसका बाह्य व्यवहार ही दूषित होगा, वह निश्चय तक पहुच ही नही पाएगा। अतएव निश्चय की साधना करने के लिए, पहले व्यवहार को शुद्ध बनाने का प्रयत्न करो। शास्त्रो में इसी उद्देश्य से नाना प्रकार के विधि–विधान बतलाये गये हैं। जिसका व्यवहार शुद्ध

है उसके घर में कुछ भी न हो तो भी उसे हजारो रुपयें उधार मिल जाते हैं। इसके विपरीत जिसका व्यवहार विगडा होता है, वह लखपति हो तो भी उसे कोई पैसा नही देना चाहता ! उसकी कोई प्रतीति नही करता।

विधवा स्त्री यदि युवती है तो अकेले में वह हरेक से भाषण न करे, क्योंकि ऐसा करने से भी व्यवहार दूषित होता है। ब्रह्मचारिणी स्त्री आठ-दस वर्ष के बालक को भी अपने साथ न सुलावे। इसी प्रकार पिता भी आठ-दस वर्ष की वच्ची को अपने साथ न सुलावे। यह कायदा और मर्यादा है। ऐसा करने से ही व्यवहार की शुद्धि समझी जाती है।

कई व्यवहार का निषेध करते हैं और एकान्त निश्चय का अवलवन करने की वात कहते हैं। मगर ऐसा कहने वाले एकान्तवादी हैं। जिसने भगवान् के उपदेश को भलीभाति समझा होगा, वह किसी भी प्रकार के एकान्त को अगीकार न करके अनेकान्त की सत्य विचारधारा मे ही अवगाहन करेगा। जैसे गाडी दो पहियो से चलती है, उसी प्रकार आत्मा का कल्याण भी निश्चय और व्यवहार—दोनो की साधना से ही हो सकता है। रायपसेणीसूत्र मे भगवान् ने चार प्रकार का व्यवहार वतलाया है।

केशीश्रमण महाराज राजा प्रदेशी को तत्त्वज्ञान समझा रहे थे। जीव क्या है और शरीर क्या है ? दोनो पृथक् पृथक् है, एक नही हो सकते। यह बात राजा को युक्तियो के साथ वतला रहे थे। तव राजा ने कहा—आपने जो वात समझाई है, वह तो मैं पहले ही प्रश्न मे समझ गया। वह मेरे हृदय मे अच्छी

तरह जम गई है। मैंने पुनः प्रश्न इस उद्देश्य से किया है कि फिर खुलासा हो जाय।

राजा की बात सुन कर केशी स्वामी ने कहा-राजन् ! तू कहता है कि मेरी समझ मे नही आता और साथ ही यह भी कहता जाता है कि मै तो पहले ही समझ गया ! तो चार प्रकार के व्यवहारियो मे से तू किस प्रकार का व्यवहारी है ? चार प्रकार के व्यवहारी ये है:--

(१) पहला व्यवहारी वह है जो किसी से उधार लावे और मुद्दत से पहले ही चुका दे।

(२) दूसरा व्यवहारी वह है जो मुद्दत पूरी हो जाने के बाद, ऋणदाता जब रुपया माँगने आता है तो कहता है—आप माँगने आये क्यो ? क्या हम नादार हैं, चोर हैं, ? क्या हमारे बगला, मकान, खेत और कुएँ नही है ? क्या हम आपकी रकम खाकर भाग जाते थे ? इतना कह कर वह अपने लड़के से कहता है-अरे छोकरे ! इनके रुपये व्याज समेत फैंक दे। इस तरह वह तकाजा होने पर व्याज सहित रुपया चुकता कर देता है।

(३) तीसरा व्यवहारी कहता है—आप रुपये लेने पधारे हैं ? आइए, पधारिये मैं रुपया अवश्य दे देता, मगर क्या करूँ एक महीने बाद दूँगा। आपके घर पहुचा दूँगा।

एक महीना बीत गया और जब रकम आती न देखी तो साहूकार फिर तकाजा करने पहुचा। तब वह कहता है—आपके रुपये मैं दूध से धोकर दूँगा। आप माँगने वाले है और मैं देने

वाला हूँ। किन्तु आयदा साल दे सकूँगा ! इस तरह वह देता तो कुछ भी नही है मीठी–मीठी बाते बना कर टालने की कोशिश करता है। ऐसे लोगो के विषय मे कहा है —

यस्य किञ्चिन्न दातव्यं तस्य देयं किमुत्तरम् ?
अद्य सायं पुनः प्रातः सायं प्रातः पुनः पुनः ।।

जिसे कुछ देना नही है, क्या उत्तर देता है ? आज दे दूँगा, शाम को दे दूँगा, कल प्रात काल दे दूँगा, सायकाल दे दूँगा, इस प्रकार वह शाम–सुबह करता–करता टालमटूल किया करता है।

(४) चौथा व्यवहारी तकाजा होने पर कहता है—अभी मेरे पास देने को नही है । होगा तब दे दूँगा। तकाजा करने वाला कहता है—अजी साहब, इस समय मुझे बहुत आवश्यकता है ! तब वह अकड कर उत्तर देता है—बस, कह दिया है। चले जाओ अभी नही मिल सकता ! कदाचित् तकाजा करने वाला कहता है—नही, मैं तो अभी लूँगा ! तो वह साफ जबाव दे देता है—जाओ, तुम्हारे वाप का कुछ भी लेना—देना नही है। बहुत करो तो अदालत खुली पडी है ! नही मानोगे और होहल्ला मचाओगे तो जूते पडेंगे !

यह चार प्रकार के व्यवहारी हैं । पहले और दूसरे को उधार मिल सकता है। तीसरे को कोई उधार नही देगा और चौथे को तो दुकान पर पाँव भी नही धरने देगा। उसकी परछाई भी लोग बचना चाहेगे।

केशी स्वामी कहते हैं–राजन् ! तू इन व्यवहारियो मे से किस श्रेणी मे है ?

राजा बोला—महाराज ! आपकी और मेरी मान्यता में अन्तर है। मैं आत्मा का शरीर से अलग अस्तित्व नही मानता। आप हथेली पर रख कर आत्मा दिखला दे तो मैं अवश्य मान लूंगा।

भाइयो ! मुनिराज केशी स्वामी पक्के व्यापारी थे। उन्हे अपनी ग्राहकी जमाना खूब आता था। परन्तु उनका व्यापार था परोपकार के लिए। पेट की उन्हे चिन्ता नही थी। वे आत्मा की खुराक के लिए ही व्यापार करते थे। राजा ने जब यह बात कही तो हवा चल रही थी या चलने लगी। उन्होने कहा-राजन् ! यह तो बतलाओ कि पेडो के यह पत्ते क्यो हिल रहे हे ?

राजा—इसमे क्या पूछना है महाराज ! पत्ते हवा से हिल रहे हैं।

मुनिराज—ठीक है। यह हवा क्या चीज है ? क्या उसे तुम हथेली पर रख कर दिखला सकते हो ?

राजा—नही, हवा हथेली पर नही रखी जा सकती, क्योकि वह बहुत सूक्ष्म है।

मुनिराज—हवा रूपी है और पकड मे आ सकती है, फिर भी हथेली पर रख कर नही दिखलाई जा सकती। तो फिर अरूपी आत्मा हथेली पर रख कर किस प्रकार दिखाई जाय ? जिसमे रूप नही उसे आँखो से देखना चाहते हो ?

इस प्रकार अनेको प्रश्नोत्तर हुए। अन्त में राजा समझ गया। उसने कहा—महाराज ! मैं अव तक भ्रम मे था। मेरा अतीव सौभाग्य है कि आज आपके दर्शन हो गये। मैं अधकार से निकल कर प्रकाश मे आ गया।

भाइयो ! राजा प्रदेशी केशी स्वामी की वात मान गया। एक वार के सतसमागम से ही उसकी विचार धारा मे परिवर्त्तन हो गया। न केवल विचार मे ही, किन्तु आचार मे भी आमूल परिवर्त्तन हो गया। पहले वह घोर से घोर पाप करने में नही हिचकता था, अव वह पापो से दूर रहने लगा और धर्म का आचरण करने लगा। अपनी आत्मा के साथ उसकी तुलना करो। सोचो कि सतसमागम करने मे तुममे क्या विशेषता आई है ? अपने आचार–विचार को सुधारने का उद्योग करो। इसी से आपका इहलोक और परलोक सुधरेगा।

जिसका व्यवहार सुधरा होगा उसका निश्चय भी सुधर सकता है। जिसका व्यवहार ही दूषित होगा, वह निश्चय को सुधार नही सकता। यह ठीक है कि निश्चय परमार्थ है और साध्य है। व्यवहार साधन है। प्रत्येक साधक को निश्चय की ओर वढना चाहिए और उसी पर निगाह रखनी चाहिए। मगर व्यवहार की उपेक्षा करके व्यवहार को त्याग कर जो निश्चय की ओर दौड लगाएगा, वह दोनों से ही जावगा। अतएव व्यवहार को सँभाल कर चलो और निश्चय की दिशा में चलो। यही सच्चा मार्ग है। केवली भगवान् भी व्यवहार को नही छोडते। केवल ज्ञानी होने के कारण रात्रि में भी सव कुछ देखते हैं फिर भी रात्रि मे विहार नही करते। इसी कारण कि ऐसा करने से व्यवहार

दूषित हो जायगा और निश्चय का बहाना करके सामान्य साधु भी उनकी देखादेखी रात्रि मे विहार करने लगेंगे ।

कहने का आशय यह है कि दुर्गुणो से बचने के लिए और सद्गुणों की रक्षा एव प्राप्ति के लिए आपको अपने व्यवहार पर पूरी निगाह रखनी चाहिए । दुर्गुणो को जरा-सा छिद्र मिलेगा और वे आपकी आत्मा को अपना घर बना लेंगे । अतएव व्यवहार-शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रक्खो । शराब की दुकान पर बैठ कर दूध पीओगे तो लोग यही समझेंगे कि यह शराब पी रहा है ! मनुस्मृति मे मनुजी ने लिखा है कि अपनी माता और बहिन के साथ भी एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए । राजा भर्तृहरि को जब वैराग्य हुआ और वे राज्य आदि का त्याग करके महात्मा बनने लगे तो उनकी पत्नी ने कहा—मैं भी साध्वी बन जाती हूँ और आपके साथ ही रह कर परमात्मा का भजन करूँगी । तब भर्तृहरि ने कहा था —

> रानीजी ! कोई कहेंगे थांने बेनड़ी,
> कोई कहेला घर को नार ।।
> रानी ! म्हाने दोष लागेजी ।।

रानी ! तुम्हे मेरे साथ देख कर कोई-कोई कहेगे कि यह महाराज की बहिन है और कोई कहेंगे कि यह इनकी पत्नी है । रानीजी ! मुझको दोष लगता है । इसलिए तुम्हारा मेरे साथ रहना उचित नही है ।

भाइयो ! व्यवहार बडी चीज है । व्यवहार का सदा ध्यान

रक्खो। जब तक मोतियो का पानी नही उतरा तभी तक उनकी कीमत है। अपनी आत्मा को पवित्र बनाना है तो व्यवहार को शुद्ध रखकर अपने गुणो को दूषित मत होने दो। जो कुछ करो बिना आगा-पीछा सोचे मत करो। बिना विचारे काम करने वाले को पछताना पड़ता है। कहा भी है—

बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय।
काम बिगारे आपुनो, जग में होत हँसाय ॥

सोचे-समझे बिना काम करने वाले को पछताना तो पडता ही है, वह अपना काम भी बिगाड लेता है और संसार मे हँसी का पात्र भी बनता है। इसके विपरीत उत्तेजना के बड़े से बडे अवसर पर भी जो विवेक को नही विसरता और समझ-बूझ से काम लेता है, उसे पछताने का अवसर नही आता।

एक राजा अपने महल मे गया तो क्या देखता है कि एक पलंग पर रानी और दूसरे पर एक गुलाम सो रहा है। यह दृश्य देखते ही राजा के क्रोध का पार न रहा। वह तलवार निकाल कर उसके टुकड़े-टुकडे कर देने को तैयार हो गया। उसी समय राजा को खयाल हो आया कि दीवान कहता था कि कानो से सुनी और आखो से देखी बात भी गलत हो सकती है। अलबत्ता निर्णय की हुई बात सच्ची होती है। तो इस समय दीवान को ही बुला लूं और कहूँ कि इसका निर्णय कर !

राजा ने बाहर जाकर दीवान को बुलाया। हाथ पकड़ कर उसे महल में ले गया। वह दृश्य दिखला कर कहा—अब

इसका निर्णय करो और बतलाओ कि आखो देखी बात किस प्रकार झूठी हो सकती है ?

दीवान ने कहा-जरा ठहरिये । निर्णय करने दीजिये । इसके बाद दीवान ने राजा को एक ओर खडा कर दिया और एक वडा-सा सुया लेकर आप पलग के नीचे घुस गया । उसने रानी और गुलाम को नीचे से सुया चुभाया । सुया चुभते ही दोनो चौक कर जाग उठे । रानी ने आँख खोलते ही गुलाम को देखकर कहा-कौन है ? गुलाम घवडा कर वोला-माताजी ! मुझे तो पता ही नहीं था ! रानी गुस्से में आकर वोली-मैंने समझा-महाराज सो रहे है ! महाराज देख पाएँगे तो तेरी वोटी-वोटी काट डालेंगे और मेरे मा-वाप को कलक लग जायगा । यह फटकार सुन कर गुलाम भाग गया और रानी फिर सो गई ।

दीवान ने धीमे-धीमे राजा के पास जाकर कहा-अन्नदाता देख लिया न आपने ? यह सब गफलत का नतीजा है । अगर आप निर्णय न करते तो भारी अनर्थ हो जाता ! रानीजी को परेशानी होती और आपकी वदनामी होती !

राजा ने कहा-हाँ, रानी भी निर्दोष है और गुलाम भी निर्दोष है । राजा ने स्वीकार किया कि कभी-कभी आखो देखी बात भी गलत हो सकती है । निर्णय कर लिया तो अच्छा ही हुआ । निर्णय करने से ही सत्य-असत्य का विवेक होता है ।

जैनाचार्यों मे कई धुरन्धर आचार्य कट्टर परीक्षाप्रधानी हुए हैं । वे युक्ति एव तर्क की कसौटी पर कस कर ही जिनेन्द्र भगवान् के वचनो की प्रमाणिकता के कायल हुए थे । हरिभद्रसूरि तो स्पष्ट कहते हैं:—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

अर्थात्-मुझे भगवान् महावीर के प्रति पक्षपात नहीं है और कपिल, सुगत आदि दूसरे मत के देवताओ से द्वेष नही है। जिसकी वाणी युक्ति युक्त हो तर्कसंगत हो, उसी की बात माननी चाहिए।

जैनधर्म क्या चीज है ? हिन्दी भाषा में कहा है-

सांच प्रगटे झूठ विघटे न्याय-तलवार ऐसी है—
कोई आ देखले जिनराज की सरकार ऐसी है ॥

यह जिनराज महाराज की कचहरी है। यहां सत्य और झूठ का फैसला हो जाता है। किसी प्रकार की खेचतान नहीं है, एक पक्ष से अनुराग और दूसरे पक्ष से विराग नही है। यहां किसी भी प्रकार के एकान्तवाद को जगह नही है। अनेकान्त का प्रशस्त साम्राज्य है। सवको समान भाव से न्याय प्राप्त होता है। जिन राजा की कचहरी मे पाव धरते ही सत्य का सूर्य उदित हो जाता है और झूठ का अन्धकार दूर हो जाता है।

कोई कहते हैं आत्मा नित्य ही है। दूसरा उसका विरोध करता हुआ दावा करता है कि नही, आत्मा अनित्य है। दोनों परस्पर विरोधी पक्ष उपस्थित करते हैं और एक दूसरे की मान्यता का खण्डन करते है। दोनो सवल युक्तिया देकर अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते हैं।

नित्यवादी कहता है कि अगर आत्मा को नित्य न मान कर अनित्य मानेंगे तो वह इसी भव के अन्त में नष्ट हो जायगा और जैसे स्थूल शरीर परलोक में नही जाता उसी प्रकार आत्मा भी परलोक मे नही जायगा। आत्मा परलोक में नही जायगा तो स्वर्ग और नरक का अभाव हो जायगा। मोक्ष का भी अभाव हो जायगा। जिन्दगी भर किये हुए पुण्य और पाप को फिर कौन भोगेगा ?

अनित्यवादी कहता है—अगर आत्मा को अनित्य न मान कर नित्य मानोगे तब भी यही सब आपत्तियाँ आएँगी। नित्य होने के कारण आत्मा तीन काल मे एक—सा ही रहेगा। उसमे किञ्चित् भी परिवर्त्तन न हो सकेगा। जब हमेशा एक-सा रहेगा तो कभी स्वर्ग का देव और कभी नरक का नारकी नही बन सकेगा। जो ससारी है वह सदैव ससारी ही रहेगा, मुक्त नही हो सकेगा, क्योंकि मुक्त होने पर उसके स्वरूप मे परिवर्त्तन आ जाएगा और ऐसी दशा मे वह नित्य नही रहेगा। एकान्त नित्य मानने से आत्मा सुख-दुःख का भोग भी नही कर सकेगा। क्योंकि कभी सुखी और कभी दुःखी होना मानने से उसकी नित्यता मे फर्क आता है।

इस प्रकार नित्यवादी, अनित्यवादी को और अनित्यवादी, नित्यवादी को झूठा बतलाते है। दोनो वादी और प्रतिवादी अथवा मुद्दई और मुद्दायला बन कर जिनराज की कचहरी मे पहुचते हैं। जिनराज अपना निष्पक्ष निर्णय देते हैं कि तुम दोनो का ही कहना ठीक है। दोनो का पक्ष सच्चा है। वास्तव मे आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी है। दोनो मे से कोई भी एक पक्ष

स्वीकार करने पर और दूसरे पक्ष को अस्वीकार करने पर जो आपत्तियां आती हैं, उनका उल्लेख तुम स्वय अपने—अपने दावे मे कर चुके हो। अतएव तुम दोनो ही दोनो पक्षो को स्वीकार कर लो। नित्यवादी अनित्यता को भी मान ले और अनित्यवादी नित्यता को भी स्वीकार कर ले। ऐसा करने से तुम्हारे विवाद का अन्त हो जायगा और तुम सत्य की शरण मे भी पहुच जाओगे। वस, इतना करो कि अभी तुम दोनों आपस मे एक दूसरे को झूठा कहते हो सो इसके बदले एक दूसरे को सच्चा कहने लगो। ऐसा करोगे तो दोनो सच्चे हो जाओगे।

जिनराज रूपी न्यायाधीश फिर कहते है—वास्तव में आत्मा को सर्वथा नित्य मानने से अनेक दोष उपस्थित होते है और सर्वथा अनित्य मानने से भी वही सव दोष उपस्थित होते है। इन दोनो से बचने का तीसरा मार्ग है--आत्मा को नित्यानित्य मानना।

न्यायाधीश का यह निर्णय सुन कर दोनो को प्रसन्नता होती है। न्यायाधीश सर्वथा मध्यस्थ है और वे किसी एक का पक्ष नही ले रहे हैं, यह जान कर उन दोनों को सन्तोष होता है। मगर दोनो को ही थोडा सशय रह जाता है। उस सशय को वे छिपाते नही हैं। प्रकट करते हुए कहते है-महाराज! यह तीसरा मार्ग है तो बहुत उत्तम और इसे मान लेने से हमारे आपसी झगडे हमेशा के लिए मिट जाएंगे। हम एक दूसरे के शत्रु मिटकर मित्र बन जाएंगे। इससे दुनिया मे शान्ति होगी और विसवाद का नाश हो जायगा। पर एक वात हमारी समझ मे नही आती। वह यह है कि आत्मा अगर नित्य है तो अनित्य कैसे? अगर

अनित्य है तो नित्य कैसे ? दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं, अतएव एक ही जगह और एक ही साथ किस प्रकार रह सकती है ?

जिनराज उत्तर देते हैं—बन्धुओं ! जिस मार्ग पर चलने से शत्रुता मिटती है और मित्रता बढती है, जिस मार्ग पर चलने से जगत् मे शान्ति का प्रसार होता है और जिस मार्ग पर चलने से क्लेश, कलह एव वाद का नाश होता है, वह मार्ग सत्य का मार्ग है। उसी मार्ग पर चलने से विश्व को शान्ति प्राप्त हो सकती है। अतएव इसी मार्ग पर चलो। इसमे संशय मत करो।

वादी-प्रतिवादी-मगर उस विरोध वाली बात का क्या उत्तर है ?

जिनराज-उसका भी उत्तर है। एक ही अपेक्षा से जब परस्पर विरोधी बात कही जाय तब दोपापत्ति होती है। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओ से एक वस्तु मे भिन्न-भिन्न धर्म माने जाएँ तो विरोध नही रहता। आत्मा द्रव्य की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है। तात्पर्य यह है कि आत्मा अपने मूल रूप मे सदैव कायम रहता है परन्तु उसके पर्याय सदैव बदलते रहते हैं। इस प्रकार विभिन्न दृष्टिबिन्दुओ से नित्यता और अनित्यता घटाई जाय तो किसी प्रकार का विरोध नही रहेगा। देखो न, पेंसिल, सुई की अपेक्षा बडी है और मूसल की अपेक्षा छोटी है। ऐसा कहने मे क्या कोई विरोध है ? अगर यहां कोई विरोध नही है तो आत्मा को द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य मानने में विरोध कैसे हो सकता है ?

यह है जिनराज की सरकार की कचहरी का निर्णय ! इसे कहते है निष्पक्ष न्याय ! जिसमे राग नही है, द्वेष नहीं, है वही ऐसा निर्णय दे सकता है ।

आत्मा मे सद्गुण भी है और दुर्गुण भी हैं । मगर राग और द्वेष दुर्गुणो के मूल है । तमाम दूसरे दुर्गुण इन्ही से उत्पन्न होते हैं । भगवान् ने राग और द्वेष को जीत कर तमाम दुर्गुणो की जड काट फैंकी, इसी कारण वे समस्त दुर्गुणो से रहित और सद्गुणो के सागर बन गये है । उन महाप्रभु के गुणो की गणना करना आचार्य महाराज असभव बतलाते हैं, तो सामान्यजनो का तो कहना ही क्या है ?

जबतक आत्मा ससारी अवस्था मे है, उसमे गुण और दुर्गुण दोनो ही रहते है । दुर्गुणो के कारण ही यह आवागमन है । दुनिया मे दुर्गुणों की बुराई और सद्गुणो की भलाई है । एक साधुजी आ रहे थे । एक आदमी ने उन्हे देख कर गालियाँ दी । कहा तू नालायक, दुष्ट, पलीत, गलीच और गन्दा है ! साधुजी समभावी थे । उन्होंने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया-तुम जो कहते हो, बिलकुल सत्य है ।

साधुजी कुछ आगे चले और गाँव के निकट पहुँचे तो वहां के नर-नारियों को पता चला कि मुनि महाराज पधार रहे है । वे सब उनके स्वागत के लिए आये और 'घणी खमा' पट्काया के प्रतिपाल को घणी खमा आदि-आदि नारे लगाते हुए उनका गुणानुवाद करने लगे । मुनिराज ने कहा-तुम्हारा कहना सत्य है ।

मुनिराज की यह बात सुन कर गाली देने वाला पशोपेश मे पड गया । उसने सोचा-इन्होंने गाली देने पर मुझे भी सच्चा कहा और गुणगान करने वाले इन लोगो को भी सच्चा कह दिया ! इसमे कुछ रहस्य होना चाहिए ।

आखिर मुनिराज एक निरवद्य उपाश्रय मे ठहर गये । भक्त लोग मगलपाठ और स्तवन आदि सुन कर चले गये । तब अकेले मे गाली देने वाले ने पूछा-महाराज ! आपने दोनो को सच्चा कहा तो यह क्या बात है ? मुनिराज उसी शान्त भाव से बोले-भाई तुमने जितनी गालियाँ दी, उतनी सब बुराइयाँ मुझ मे मौजूद है । अगर मैं समस्त बुराइयो से छुटकारा पा गया होता और लायक होता तो मुक्ति न पा गया होता ? इस कारण मैं नालायक हूँ । मेरी आत्मा में अभी तक मलीनता है । आत्मा पूरी तरह निर्मल होता तो मुझे केवल ज्ञान हो जाता । इस कारण मै पलीत और गलीच हूँ । इसीलिए गन्दा भी हूँ । भक्तो ने मुझे धन्यवाद दिया और मेरा गुणगान किया सो वास्तव मे वह मेरा गुणगान नही था, संयम अथवा साधुता का गुणगान था । वे तप की प्रशसा और स्तुति करते थे, मेरी नही । सयम और साधुता सदैव प्रशसनीय और स्तुत्य ही है ।

इस प्रकार तुमने मेरे कर्मो को अपने सामने रख कर अपने उद्गार प्रकट किये है और उन्होने साधुता के दृष्टिकोण को अपने समक्ष रक्खा है । अत दोनो ही सच्चे है ।

मुनिराज ने जो खुलासा किया, उसे सुन कर वह गाली देने वाला उनके पैरो मे गिर पड़ा । वह दुर्वचन कहने के लिए

पश्चात्ताप करने लगा। कहने लगा–महाराज! आप महानुभाव है। मुझे क्षमा कर दीजिए। मैंने आप सरीखे गुरु दूसरे नही देखे।

इस प्रकार पश्चात्ताप करके वह नुगरे के बदले उनका चेला बन गया। उसने अपना जीवन सफल बनाया!

कहो, भाइयो! उस आदमी ने निर्णय किया तो अज्ञान दूर हो गया। कहने का आशय यह है कि ससारी जीवो मे सद्-गुण भी पाये जाते हैं और दुर्गुण भी पाये जाते है। दुर्गुण पाये जाते हैं, इसीलिए साधना करने की, तपस्या करने की और स्वा-ध्याय-ध्यान आदि करने की आवश्यकता होती है। सद्गुण पाए जाते हैं, इसी कारण मनुष्य इन पावन कर्त्तव्यो को उपादेय समझता है और इनका आचरण करने की ओर प्रवृत होता है। जीव मे लेश मात्र भी सद्गुण न होते तो वह भलाई की ओर आँख उठा कर भी न देखता।

भविष्यदत्त–चरित

देखो, भविष्यदत्त में सद्गुण विद्यमान थे तो उसने भोजन की वस्तुएँ मिलने पर भी बिना पूछे भोजन नही किया और कुमारी के कहने पर भी कन्यादान के बिना उससे विवाह करने को तैयार नही हुआ।

आज भी कोई-कोई ऐसे व्यक्ति मिलते है जो भविष्यदत्त की भाति ही अन्याय से भयभीत होते है और अन्याय से बचने के लिए अपने स्वार्थ का भी त्याग कर देते है। आप लोगो में बनारस से आए हुए एक सज्जन हैं। उन्होने मिल-मालिक की

नौकरी त्याग दी, यह कह कर कि आपके यहां 'ब्लेक-मार्केट' होता है और मैं अपने हाथो से यह काम नही कर सकता। उनके स्थान पर दूसरा जो आदमी रहा, उसने पचास हजार रुपया कमाये। उसने इन्हे पच्चीस हजार देने की इच्छा-प्रकट की, मगर उन्होने लेने से साफ इन्कार कर दिया! अब वे बनारस की गोशाला का काम अवैतनिक रूप से, बिना कुछ भी लिए, कर रहे है।

मतलब यह है कि आज भी ऐसे नीतिमान् गृहस्थ मौजूद है जो अपने पवित्र सकल्प पर सुदृढ रहते है और बडे से बड़ा प्रलोभन होने पर भी उसे ठुकरा देते हैं, अपनी प्रतिज्ञा को त्यागते नही हैं। भविष्यदत्त इसी कोटि का व्यक्ति था! तिलकसुन्दरी ने स्वेच्छा से अपने आपको समर्पित किया, मगर भविष्यदत्त डिगा नही। भला नवयौवन दशा मे इस प्रकार का त्याग क्या कम प्रशसनीय है? मनुष्य दुर्बलताओ का पुतला कहलाता है। मगर जो अपनी दुर्बलता को जीतकर ऊँचा बनता है और प्राप्त की हुई ऊँचाई से फिर नीचा नही खिसकता है, उस ऊँचाई को कायम रखता है और अधिक ऊँचाई पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है, वह धन्य है! वह प्रशसनीय है। वह जगत् के समक्ष एक स्पृहणीय आदर्श उपस्थित करता है। उसका अनुकरण करके दूसरे लोग भी अपना कल्याण करने का मार्ग पा जाते है।

भविष्यदत्त भोजन करके जो सोया तो अभी तक सो रहा है। पैदल चलते–चलते वह बुरी तरह थक गया था। मानसिक अशान्ति और अजीब हालतो ने भी उसे थका दिया था। अतएव उसे गहरी नीद आई। सायकाल होने आ गया, मगर

उसकी नींद न टूटी। तब तिलकसुन्दरी ने उसे जगाया तो वह एक-दम उठ बैठा। तिलकसुन्दरी के चेहरे पर घबराहट का भाव देख कर उसने कहा—क्या बात है? चिन्तित क्यों हो रही है?

तिलकसुन्दरी—वह दानव बड़ा ही क्रूर है, दुष्ट है। सायकाल हो रहा है और वह अब आने ही वाला है। इसीलिए आपको जगाया है।

भविष्यदत्त—तो चिन्ता क्यों करती हो? क्या चिन्ता करने से उसका आना रुक जायगा? चिन्ता करने से उसकी मति बदल जायगी? वह अपनी दुष्टता छोड़ देगा? नहीं, यह सब तो होगा नहीं, बल्कि उसकी क्रूरता का मुकाबिला करने की अपनी शक्ति और जाती रहेगी। जो होनहार होगा, हो जायगा। उसके लिए चिन्ता क्यों? परेशानी क्यों? मनुष्य को निर्भय और निश्चिन्त होकर प्रत्येक परिस्थिति का सामना करना चाहिए। अगर हमारा आयुष्य बलवान् है तो दानव कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। इसलिए तुम घबराओ मत। निश्चिन्त रहो।

भाइयो! संसार मे सुख-दुःख आते ही रहते हैं। कर्मों की विचित्र गति है। कभी शुभ कर्म तो कभी अशुभ कर्म का उदय आ जाता है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह—'होकर सुख मे मग्न न फूले, दुःख मे कभी न घबरावे।' बल्कि मध्यस्थभाव की रक्षा करता हुआ सब कुछ सहन करले। ईश्वर का भजन करे। भगवान् का स्मरण और भजन करने से ही सब दुःख और संकट टलते हैं। दुश्चिन्ता, घबराहट, हाय-हाय या रुदन-विलाप करने से कर्मों का फल मिट नहीं सकता। कर्मों की गति बड़ी गहन है

और वे अत्यन्त बलवान् हैं। वह जीव को दुर्गति और सद्गति की ओर ले जाते है। आवागमन की भीषण आपत्तियाँ कर्मों का ही फल है। कर्म के उदय से जीव दु ख और सुख की ओर स्वय ही खिचा हुआ चला जाता है। महाराज दशरथ ने घोषणा कर दी कि कल रामचन्द्र का राज्याभिषेक होगा। सब तैयारिया होने लगी। राजा और प्रजा मे उत्साह की लहर दौड गई। सर्वत्र आनन्द-मगल होने लगा। मगर कर्म कुछ और ही दृश्य दिखलाने वाले थे। परिणाम यह हुआ कि अवध के राज्य के बदले राम को बारह वर्ष का वनवास मिला! बताओ, दशरथ को या किसी और को क्या खबर थी कि यह व्यवस्था होने वाली है! सब के मनोरथ धरे रह गये। मसूबो पर पानी फिर गया!

भविष्यदत्त ने कहा--कुमारी! भविष्य का क्या पता है? किस क्षण क्या होने वाला है सो कौन जानता है? कर्म का उदय आने पर देव, दानव, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि सब की बुद्धि उलट-पलट हो जाती है। कर्म के आगे किसी की भी नही चलती है। तब फिर चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या है?

तिलकसुन्दरी--मैं आपकी शिक्षा सिर-आँखो पर धरती हूँ, किन्तु उस दुष्ट के आने का समय हो गया है। अतएव आप शीघ्र से शीघ्र रवाना हो जाइए। देर मत कीजिए। अब वह आने ही वाला है। जाकर किसी गुफा या झाडी मे छिप जाइए। अपने प्राणो की रक्षा करने का उद्योग कीजिए। वह बडा ही निर्दय है। उसका कलेजा पत्थर का है। उसे देखते ही मनुष्य के होश उड जाते है। उस पर किसी का जोर नही चलता, चाहे कोई कितना ही बड़ा बली हो, शूरवीर हो। यहाँ का राजा बड़ा

ही बलवान् था। मगर क्षण भर मे ही उसने राजा के प्राण ले लिये।

कुमार! आप मेरे अतिथि है। अतिथि की रक्षा करना मेरा धर्म है। फिर आप तो मेरा उद्धार करने वाले भी हैं। आप पर ही मेरी समस्त अभिलाषाएँ अवलम्बित है आपका ही मुझे सहारा और विश्वास है। आप पर किसी प्रकार का सकट आना मेरे लिए सह्य नही होगा। आप बच जाएंगे तो मेरा उद्धार हो जायगा। इसलिए मैं चाहती हूँ कि आप एक दम बचने का प्रयत्न कीजिए। अपनी खातिर नही तो मेरी खातिर ही आप अपने मूल्यवान् जीवन रक्षा कीजिए।

भविष्यदत्त—कुमारी! तुम मेरी शिक्षा को शिरोधार्य भी कर रही हो और उसी के विरुद्ध मुझे शिक्षा भी दे रही हो! मै मानता हूँ कि तुम जो आग्रह कर रही हो, उसमे मेरे कल्याण की भावना भी प्रबल है। तुम मेरा अनिष्ट नही देख सकती। मगर भाग कर मै जाऊँ कहाँ? तुम कहती हो कि दानव बड़ा जबर्दस्त है। तो क्या वह उसी गुफा या झाडी मे नही पहुच सकेगा, जिसमे मैं छिपने को जाऊँगा? मगर मैं यह सोच कर यहाँ नही ठहर रहा हूँ। मैं तो मानव की असीम शक्ति पर अटल विश्वास करके यहाँ ठहरा हूँ। तुम मुझे कोई मामूली डरपोक आदमी मत समझो। मै प्रत्येक परिस्थिति का सामान करने के लिए तैयार हूँ। वह दानव है तो मैं भी मानव हूँ। मानव के आत्मबल के सामने देव और दानव भी पानी भरते है। वे इस बल का मुकाबिला नही कर सकते। देवो का राजा इन्द्र भी इस शक्ति के सामने अपना मस्तक झुकाता है।

तुम कहती हो कि दानव के द्वारा यहाँ का राजा भी मार डाला गया था, मगर इन्सान होने पर भी पूरी इन्सानियत उसमे नही होगी। देखो, मनुष्य की शक्ति अपार है। वह हीरे को भी राख बना देता है। मैं कोई काच की चूडी नही हूँ कि जरा-से झटके मे ही चटक जाऊँ। आज तुम देखोगे कि मनुष्य की शक्ति कैसी होती है! और मैं देखूँगा कि वह इन्सान के सामने क्या कर सकता है?

कुमारी! तुम अपने दिल को सँभाले रहना और खड़ी-खडी देखना कि इन्सान के आगे वह पानी-पानी हो जाता है या नही? आज मैं तलवार से अपनी तकदीर आजमाऊँगा। दानवीय शक्ति को मानवीय बल से परास्त करूँगा और एक इच भर भी पीछे नही हटूँगा।

इतना कह कर भविष्यदत्त कुमार तैयार हो गया। उसने अपने एक हाथ मे तलवार और दूसरे हाथ मे ढाल ले ली। वह एक पैर ऊँचा और दूसरा पैर नीचा करके बैठ गया है। साथ ही उसने णमोकार मत्र का भी आश्रय ले लिया है। वह दानव के आने की बार देख रहा है।

भाइयो! हिम्मत बडी चीज है। फारसी मे कहते हैं-हिम्मते मरदा, मददे खुदा। सच्चा मनुष्य वही है जो मुसीबत के समय हिम्मत रखता है। जो हिम्मत रखता है, ईश्वर उसकी सहायता करता है। अर्थात् उसमे ईश्वरीय बल-आत्मिकशक्ति प्रकट हो जाती है।

बहुत से जरा-सी कठिनाई आते ही हिम्मत हार जाते है।

वे उस कठिनाई को नही जीत सकते उन्हे नवीन बल प्राप्त नही होता है और उनके पास जो वल होता है, वह भी दब जाता है। अधीर मनुष्य इसीलिए जरा-सी कठिनाई के आगे पराजित हो जाता है। इसके विरुद्ध धैर्यवान व्यक्ति बडी से बडी कठिनाई को भी जीत लेता है। उसका धैर्य ही उसमे एक प्रकार की प्रचण्ड शक्ति को उत्पन्न कर देता है इसलिए भाइयो ! अगर आप अपने जीवन-सग्राम मे विजयी बनना चाहते है तो कभी हिम्मत न हारे सचाई और नीति के पथ को कभी न त्यागते हुए धैर्य रक्खे आपका धैर्य उपस्थित प्रवल कठिनाई को निर्बल बना देगा और आपको विजयी बनाएगा। तथाऽस्तु।

१८-१०-४८ }
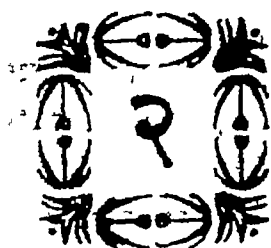
अन्धकार से प्रकाश की ओर

स्तुति :

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतु समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब—
मन्य क इच्छति जन. सहसा ग्रहीतुम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आप विबुधार्चितपादपीठ है—देवतागण आपके चरण-कमलो के आसन की पूजा करते है। आपकी स्तुति करने

योग्य बुद्धि मुझ मे नही है, फिर भी निर्लज्ज होकर मैं स्तुति करने के लिए तैयार हो गया हू। मुझ जैसा बुद्धिहीन प्राणी आपके गुणो का किस प्रकार पार पा सकता है? पानी से परिपूर्ण घड़े मे चन्द्रमा की परछाई देख कर उसे पकडने के लिए बालक के सिवाय और कौन तैयार हो सकता है? ऐसा करना बाल चेष्टा है। चन्द्रमा उसके हाथ नही आ सकता। फिर भी बालक तो बिना सोच-विचार किये चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की चेष्टा करता है। इसी प्रकार हे भगवन्! आपके अनन्त गुणो की स्तुति कर सकना सम्भव नही हैं, फिर भी मै स्तुति करने को तैयार हो गया हूँ।

ऐसे भगवान् आदिदेव ऋषभनाथ है। उनको ही मेरा वार-वार नमस्कार हो।

भाइयो! इस स्तुति का नाम 'भक्तामर' स्तोत्र है। प्राचीन काल में ऐसी परिपाटी सी पड गई थी कि कोई भी स्तुति जिस पद से प्रारम्भ हो, उसी पद के नाम से वह प्रख्यात हो जाती थी। भगवान् ऋषभदेवजी की इस स्तुति का नाम भी इसी प्रकार 'भक्तामर' पडा है, क्योंकि इसका पहला पद 'भक्तामरप्रणत-मौलिमणिप्रभाणाम्' है। 'भक्तामर' पद पहले-पहल आ गया और इसी कारण इस-स्तुति का नाम भी 'भक्तामर' हो गया। और स्तुतियाँ भी इसी प्रकार विभिन्न नामो से प्रसिद्ध हुई हैं। 'कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि' इस पद से प्रारम्भ होने के कारण यह सपूर्ण स्तुति 'कल्याणमदिर' स्तुति कहलाती है। 'पुच्छिस्सु ण समणा माहणा य' यह सूत्रकृतागसूत्र मे की हुई चरण तीर्थंकर भगवान् महावीर की स्तुति है। यह 'पुच्छिस्सु ण' स्तोत्र के नाम

से प्रसिद्ध है, क्योंकि इसका प्रारम्भ 'पुच्छिस्सु ण' इस पद से होता है। इस प्रकार अपने प्रथम पद के नाम से प्रसिद्ध होने वाली स्तुतियाँ बहुत-सी है। 'भक्तामर' स्तोत्र भी उन्ही मे से है।

इस स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मानतुंगजी है। स्तोत्र की रचना मे जान पडता है कि आचार्य महाराज भगवान् के बडे भक्त तो थे ही, काव्य लिखने मे भी अत्यन्त कुशल थे। उनकी रचना सरल, सुबोध और प्रसादमय है। एक-एक पद्य मे सुन्दर और हृदयहारी भाव भरे हैं। पढते-पढते चित्त मे अपूर्व भक्ति भाव जागृत होता है। चित्त चाहता है कि बार-बार इसे पढते ही रहे। पढे बिना तबीयत मानती नही है।

फिर भी आचार्य महाराज अपने को बालक कहते है और स्तुति रचने के अपने प्रयास को बालचेष्टा समझते है। कहते है कि मैं स्तुति ठीक तरह तो कर नही सकूँगा, फिर भी कर रहा हूँ और ऐसा करने मे मुझे कोई लज्जा नही है। अपनी शक्ति के अनुसार प्रयास करने मे लज्जा क्यो होनी चाहिए? जिसे जो कार्य प्रिय है, उसे सम्पन्न करने मे प्राणी मात्र सलग्न है। कोई भी तो यह दावा नहीं कर सकता कि वह अपने काम मे पूरी तरह सफल होगा ही होगा। व्यापारी धन उपार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। क्या वह ससार भर की समस्त सम्पत्ति अपनी तिजोरी मे भर सकता है? अगर ऐसा कर सकना सम्भव नही है तो वह क्यो सम्पत्ति उपार्जन करने की चेष्टा करता है? यही सोच कर कि जितनी सम्पत्ति प्राप्त हो जायगी उतना ही लाभ है।

यही बात धर्म क्रिया के सम्बन्ध मे भी सोचनी चाहिए और

भगवद्भजन के विषय मे भी सोचनी चाहिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार धर्म का आचरण और प्रभु का स्मरण करना चाहिए ऐसा करने मे किसी भी प्रकार की लज्जा शका या सकोच को हृदय मे स्थान नही देना चाहिए।

आचार्य महाराज के कथन से एक बात और ध्यान मे ले आना चाहिए वह है विनम्रता और लघुता की शिक्षा उत्तम काव्य रचयिता होने पर भी आचार्य ने कितनी लघुता प्रकट की है ? वे अपनी कुशलता और विद्वत्ता पर लेश मात्र भी गर्व नही करते, हालांकि उनकी विद्वत्ता और कुशलता गर्व करने योग्य है ! साधारण आदमी चार अक्षर सीख कर ही आसमान मे उडने लगता है और अपने आपको दूसरो से ऊँचा समझने लगता है। मगर आचार्य अपने आपको अत्यन्त लघु प्रकट करते है यह भक्त होने का लक्षण है। सच्चा भगवद्भक्त कभी अभिमान नही कर सकता वह सदैव अपनी निर्मलता की ओर नजर रखता है और इस कारण निर्मलता की ओर ही अग्रसर होता जाता है घमण्डी मनुष्य अपना विकास नही कर सकता और वही वास्तव मे उपहास का पात्र बनता है।

ज्ञानवान् पुरुष अपने अज्ञान को जानता है, इसीलिए तो वह ज्ञानवान् है उस अज्ञानी के अज्ञान की कहाँ सीमा है जो अपने अन्त करण मे फैले हुए अज्ञान को भी नही समझ पाता !

जिसने अपनी लघुता समझ ली, समझ लो कि वह गुरुता की प्रथम सीढी पर पैर बढा चुका। जिसने अपनी गुरुता का

अभिमान किया, समझ लो कि वह अपनी गुरुता से गिर रहा है और लघुता की तरफ बढ रहा है।

भाइयो ! भगवान् की भक्ति करना मनुष्य मात्र का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य है परन्तु भक्ति करने वाले के चित्त मे अहकार और कपट नही होना चाहिए। भगवान् के गुणो का पार नही है। कल बतलाया था कि भगवान् गुणो के समुद्र हैं। अगर संसार के समस्त समुद्रों के जल की स्याही बनाई जा सके, संसार के समस्त वृक्षो की कलमे बनाई जा सके, अनन्त आकाश को कागज बना लिया जाय और अक्षय आयु लेकर कोई भगवान् के गुणो को लिखने बैठ जाय और निरन्तर लिखता ही चला जाए, तब भी उनके गुणों का पार नही पाया जा सकता। समस्त गुणो का उल्लेख नही हो सकता। वाणी पौद्गलिक है और स्थूल है। वह सम्पूर्ण रूप से किसी एक भी भाव को प्रकट नही कर सकती तो अनन्त भावो को कैसे पूर्ण रूप से प्रकट कर सकती है ? फिर भी वाणी की सार्थकता प्रभु का गुणगान करने मे ही है। एकेन्द्रिय जीवो को वाणी प्राप्त नही है। जीव अनन्त-अनन्त काल पर्यन्त एकेन्द्रिय पर्याय मे बिता देता है। जब प्रबल पुण्य का उदय होता है तो उसे द्वीन्द्रियपर्याय की प्राप्ति होती है। द्वीन्द्रियपर्याय मिलने पर वाणी मिलती है। मगर वह मनके अभाव मे सार्थक नही हो पाती। मन की प्राप्ति पचेन्द्रियपर्याय मे होती है। तभी सोच-समझ कर बोलने की योग्यता आती है। पचेन्द्रियपर्याय प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य-अवस्था मे ही वचन का ठीक तरह और व्यक्त रूप मे प्रयोग किया जा सकता है। मै सक्षेप में ही यह सब बतला रहा हू। विस्तार के लिए अवकाश नही है। अगर आप विस्तार

के साथ इस विषय पर विचार करेंगे तो पता चलेगा कि मनुष्य की वाणी अत्यन्त महँगी और महत्त्वपूर्ण चीज है। बड़ी ही कठिनाई से, लम्बी साधना के बाद किसी प्रकार से इसकी प्राप्ति हो सकी है। यह समझ कर भाइयो ! अपनी इस अनमोल धरोहर का, अपनी पवित्र पूंजी का, अपनी श्रेष्ठ सम्पदा का दुरुपयोग न करो, सदुपयोग करो ! भगवान् की स्तुति और गुणगाथा का गान करना ही इसका सर्वोत्तम उपयोग है। यह अनुकूल अवसर मिल गया है तो चूको मत। इससे लाभ उठा लो। भगवान् की भक्ति कर लो। यह अवसर फिर कौन जानता है, कब मिलेगा ?

अवसर बेर-बेर नही आवे ! २ थने सद्गुरुजी समझावे (टे.)

तरह-तरह के मिष्टान्न जीभ को चखाते हो तो एक बार भगवद् भक्ति के अपूर्व रस को भी तो चखाओ !

याद रक्खो, भगवद् भक्ति नही करोगे तो घर के रहोगे न घाट के और उड जाएँगे बाल टाट के ! चौरासी मे इतने चक्कर लगाने पडेगे और ऐसे असह्य दु:ख उठाने पडेगे कि नानी याद आ जायगी !

सच्चा ईश्वर भक्त कौन है ? कैसे मालूम पडे कि यह ईश्वर को याद रखता है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जो मनुष्य सदैव ईश्वर का स्मरण रखता होगा वह कभी झूठ नही बोलेगा। जो झूठ बोलता है, वचन द्वारा किसी को धोखा देता है, छल-कपट की वाणी बोलता है, समझ लो कि उसके हृदय मे ईश्वर का वास नही है। ईश्वर भक्त की आत्मा मे अपरिमित कोमलता होती है। उसके हृदय से अनुकम्पा का निरन्तर प्रवाह फूटा

करता है । वह परदुःख-कातर होता है । अपने ऊपर आये हुए घोर से घोर सङ्कट को कठोर वन कर सह लेता है पर दूसरे के थोडे-से कष्ट से भी द्रवित हो जाता है । अपनी ओर से किसी दूसरे को कष्ट पहुँचाना तो दूर रहा, वह किसी भी कारण से दूसरे पर आये हुए कष्ट का निवारण करने के लिए अपने कष्टो की परवाह नही करता ।

ईश्वर भक्त कभी चोरी नही कर सकता । चोरी छिपे-छिपे की जाती है । ईश्वर भक्त समझता है कि मैं छिप कर कोई काम नहीं कर सकता । भगवान् सर्वदर्शी है । वे सब को देख रहे हैं । उनसे मेरी कोई प्रवृत्ति छिप ही नही सकती । अजी, चोरी करने की बात जाने दीजिए, भक्त चोरी करने का सकल्प भी अपने मन मे नही कर सकता । भला जिसके चित्त मे ईश्वर का वास है, उसके चित्त मे चोरी करने की या और कोई भी पाप करने की भावना ही किस प्रकार उदित हो सकती है ? इस प्रकार ईश्वर का भक्त सभी पापो से अलिप्त रहता है ।

ईश्वर जब किसी के हृदय मे प्रवेश करता है तो उस का हृदय एक अपूर्व प्रकाश से जाज्वल्यमान हो उठता है । उसमे भावना की पावनता स्वत ही उद्भव हो उठती है । अतएव पाप मय प्रवृत्ति की ओर उसका झुकाव होता ही नही है । यही ईश्वर भक्त की सब से बड़ी पहचान है । अन्धकार तब तक ही रहता है जब तक कि प्रकाश का अभाव हो । सूर्य चमक रहा हो तब बेचारे अन्धकार को कैसे जगह मिल सकती है ? ईश्वर दिव्य प्रकाश का परम पुञ्ज है । उसकी उपस्थिति मे पाप के अन्धकार की गुजर नही होती । वह फटक ही नही सकता । अतएव समझे

लो कि जो अन्धेरे मे भटक रहे हैं, वे ईश्वर को भूले हुए हैं। जो ईश्वर को याद रक्खेगा उसे उजाले मे ही समझना चाहिए। शास्त्रीय भाषा मे उसे 'शुक्लपक्षी' कहते है।

भाइयो! जो अन्धेरे में भटकते हैं, उन्हे ठोकरे लगती है, वे गड्ढे मे गिर जाते है उन्हें साँप-बिच्छू आदि विषैले कीट काट खाते हैं और दीवार आदि से टकरा कर अपना माथा फोड लेते हैं। उजाले मे, इनमे से कोई भी झगडा-झंझट नही रहता। वह उजाला परमात्मा के नाम का है। जब यह उजाला तुम्हारे अन्तःकरण मे फैलेगा तो आत्मा मे अद्भुत ज्योति जाग उठेगी। इसीलिए परमात्मा से प्रार्थना की जाती है:—

"तमसो मा ज्योतिर्गमय"

प्रभो! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जा।

सावधानी के साथ विचार किया जाय तो स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि ससार मे जितने भी कष्ट है, उन सब का मूल कारण आत्मा मे पैदा हुआ अन्धकार ही है। मिथ्यात्व के अन्धकार मे आत्मा डूबी हुई है और वही सबसे बडा अन्धकार है। अतएव अगर अपनी कुशल-क्षेम चाहते हो तो अन्धकार से बचो और प्रकाश मे आओ। प्रकाश मे आने का सर्वोत्तम उपाय भगवद्-भक्ति है। भगवान् ऋषभदेवजी का गुणगान करने से चित्तव्यापी अन्धकार दूर हो जायगा!

पतिव्रता स्त्री अपने पति पर पूर्ण प्रेम और विश्वास रखती है और पर-पुरुष की ओर नहीं देखती। और जो देखे,

समझ लेना चाहिए कि उसका अपने पति पर पूरा विश्वास एवं प्रेम नहीं है। इसी भांति ईश्वरभक्त भी सच्चा वही है जो एक मात्र वीतराग ईश्वर पर ही भरोसा रखता है और उसके सिवाय दूसरे पर भरोसा नहीं रखता। जो भैरों और भवानी के आगे मस्तक टेकता फिरता है, बकरे और पाडे कटने की जगहों पर धर्मभाव से जाता है और वहाँ जाकर धन अथवा पुत्र की याचना करता है, कैसे माना जाय कि वह सचमुच वीतराग भगवान् का भक्त है!

ईश्वर भक्त संसार के समस्त पदार्थों को असार अशरण और नाशशील समझता है। वह जानता है कि इनके द्वारा आत्मा का शरण नहीं हो सकता। वह सब विनाशीक पदार्थ हैं। वह धन के लिए अपनी आत्मा की उपेक्षा नहीं करता है। वह मानता है कि धन तो थोड़े दिनों तक ही ठहरने वाला है। धन कितने दिन का है? जब तक दिवाला न निकले या मौत न आ जाय तब तक का है। ईश्वर भक्त कभी नहीं भूलता कि दुनियावी रौनक में क्या रक्खा है! वह आगे की रौनक को ही देखता है और उसी की ओर आकर्षित रहता है।

द्वारिका नगरी का नवयुवक सेठ थावच्चाकुमार प्रभु का भक्त था। उसके बत्तीस स्त्रियाँ थीं और विपुल संपत्ति थी। संसार के किसी सुख की उसे कमी नहीं थी। सब प्रकार का आनन्द-मंगल था। एक दिन पड़ौस में पुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में गीत गाये जा रहे थे। गीतों की ध्वनि उसके कानों में पड़ी और वह इतने रुचिकर हुए कि उन्हें सुनते-सुनते नाटक देखना भूल गये। गीत सुनकर थाव-च्चाकुमार को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह ऊपर से नीचे उतरे और

माता के पास जाकर बोले—यह स्त्रियाँ क्या गा रही है ? तब माता ने बतलाया कि बालक की खुशी के गीत गा रही हैं । थावच्चाकुमार ने कहा—माता ! यह गीत मुझे बहुत मनोहर और मधुर प्रतीत हुए है । इनके सामने नाटक कोई चीज नही है ।

भाइयों गाने—गाने मे अन्तर होता है । कभी—कभी दिल गाता है और कभी—कभी जीभ गाती है । दिल के गाने मे जो माधुर्य होता है, वह जीभ के गाने मे नही हो सकता । दिल का गाना आन्तरिक आह्लाद का गाना है और जाम का गाना भाडे का गाना है । दिल से उठा हुआ गाना, अन्त करण के मधुर अमृत को लेकर उठता है और इस कारण उसमें एक अनोखी मधुरता होती है । इसी मधुरता ने थावच्चाकुमार के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था ।

सयोग की बात कि शाम के समय वह नवजात बालक मर गया । रात्रि भर उसके घर के लोग रोते रहे । जैसे गाना दो प्रकार का है, वैसे रोना भी दो प्रकार का है—असली और नकली । गुज-रात में औरते स्नान करके आती हैं और जब कोई सबधी या दूर का रिश्तेदार मर जाता है तो वे नकली रोना रोती है और छाती पीटती है । उसके घर के लोग अलबत्ता असली रोना रोते हैं

पिछली रात थावच्चाकुमार की नींद टूटी तो उन्होंने रोने की आवाज सुनी । वह ऊपर से फिर अपनी माता के पास आये । कहने लगे—शाम का गाना तो बहुत अच्छा लगा था, पर यह गाना तो मुझे बिलकुल ही पसन्द नही आ रहा है ।

माता ने कहा—बेटा, यह गाना नही, रोना है । जो बच्चा

जनमा था और जिसकी खुशी मे गीत गाये जा रहे थे, वह चल बसा है। अभी तक उसकी लाश घर में पडी है। उसे देख-देख कर घर के लोग रो रहे है।

थावच्चाकुमार की प्रबल इच्छा हुई कि जाकर बच्चे की लाश को देख तो आऊँ! माता ने भी मना करना उचित न समझा। वह सीधे बाहर निकल कर उस मकान मे पहुँचे। बोलें—वह बालक कहाँ हैं? घर वाले उसे उसी कमरे मे ले गये, जहाँ बालक का शव रक्खा हुआ था। थावच्चाकुमार ने कभी शव को नही देखा था। अतएव उन्होंने ढँका हुआ कपडा उघाडा और शव देख कर कहा—क्या मरा है इसका? मुँह, कान, नाक, आँखे, हाथ और पैर वगैरह सभी तो ज्यो के त्यो मौजूद है। आखिर इनमे से मरा क्या है? फिर आप लोग क्यो रो रहे है? यह तो ज्यो का त्यो है। इसमें किसी चीज की कमी नही हुई है!

घर के एक मुखिया ने कहा कुमार! तुम अभी समझते नही हो। तुमने दुनिया नही देखी है। इसी से ऐसा कहते हो।

थावच्चाकुमार—अच्छा, अब आप इसका क्या करेंगे?

मुखिया—इसे उठा कर ले जाएँगे और धरती मे गडहा खोद कर गाड देगे। इसके सिवाय और क्या चारा है?

थावच्चाकुमार के खेद भरे आश्चर्य का पार नही रहा। फिर बोले—अजी यह तो मजे का दीख रहा है! अपना पेट ऊँचा-नीचा हो रहा है, लेकिन इसका नही होता है। अपनी छाती धडक रही है, शरीर काँप रहा है, पर इसकी छाती मे न धडकन है, न अगोपागो मे कम्पन है। फिर क्यो इसे गाड देंगे?

मुखिया ने बतलाया-शरीर के भीतर एक प्रकार की शक्ति होती है। उसी शक्ति के सहारे जीवन के सब कार्य होते है । उस बालक के शरीर मे से वह शक्ति निकल गई है। और सभी के शरीरों मे से एक न एक दिन निकल जाने वाली है।

थावच्चाकुमार-क्या मेरे शरीर मे से भी निकल जायगी ?

मुखिया—अवश्य ।

थावच्चा०—इसके न निकलने का कोई उपाय भी है ?

मुखिया-उपाय होता तो क्या हम उस बालक को जिदा न रख लेते ?

इतना सुन कर थावच्चाकुमार सीधा घर आया। पर उसके दिमाग मे एक ही धुन सवार हो गई। वही विचार मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगा। यह क्या बात है ? यह शरीर एक दिन निश्चेष्ट हो जायगा। इसका हलनचलन बन्द हो जायगा। हम भी ऐसे ही हो जाएँगे ! ऐसी दशा मे मनुष्य को क्या करना चाहिए ?

थावच्चाकुमार के मस्तिष्क मे बार-बार यही विचार उत्पन्न हो रहे थे। उन्हे क्षण भर के लिए शान्ति नही मिल रही थी। उन्ही दिनों भगवान् नेमिनाथ का वहाँ पदार्पण हुआ। यद्यपि पहले भी भगवान् द्वारिका मे पधारे थे, मगर उस समय थावच्चाकुमार को अपनी बीमारी का पता नही था। जब तक बीमारी का पता न चले, कौन वैद्य के पास जाता है ? जाता भी है तो कौन औषध का सेवन करता है ? पहले यह ऐश-आराम मे मग्न थे। ईश्वर धर्म, आत्मा, परलोक आदि के विचार इनके दिमाग मे पैदा ही

नही होते थे। आज पडौस मे घटी हुई एक घटना ने उनके दिमाग को वदल दिया। एक नवीन विचारधारा उत्पन्न कर दी। आखिर थावच्चाकुमार भगवान् नेमिनाथजी की सेवा मे गये।

भगवान् का समवसरण लगा हुआ था। उपदेश सुनने के लिए विशाल श्रोतृ-समूह उपस्थित था। थावच्चाकुमार भी वहाँ उपस्थित हुए। प्रभु के मुख मडल पर अद्भुत दिव्य तेज झलक रहा था। अनन्त करुणा टपक रही थी।

प्रभु ने मेघ के समान गभीर ध्वनि मे उपदेश देना आरम्भ किया-भव्य आत्माओ! इस दुर्लभ मानव जीवन को प्राप्त करके आत्मा और अनात्मा का विवेक प्राप्त करना चाहिए। आत्मा अलग है और शरीर अलग है। आत्मा अजर, अमर, अविनश्वर ध्रुव शाश्वत और अव्यय है। शरीर जीर्ण-शीर्ण होने वाला है। आत्मा-चेतनामय है और शरीर अचेतन है। मगर ससारी जीव इस विवेक को भूलकर शरीर को ही आत्मा समझ लेते हैं और अपना अत्यन्त मूल्यवान् जीवन शरीर की रक्षा और पालन-पोषण मे व्यतीत कर देते हैं। जिस शरीर की सेवा मे समग्र जीवन व्यतीत किया जाता है। वही शरीर अन्त मे धोखा देता है। वह आखिर छूट जाता है और इस प्रकार सारा जीवन निष्फल हो जाता। जीवन मे पुण्य एव धर्म का आचरण न करने के कारण आत्मा जव परभव मे जाता है तो उसे घोर यातनाएँ सहन करनी पडती है।

भव्य जीवो! अपने मानव भव को सफल और सुफल वनाना हो तो सर्वप्रथम शरीर और उसमे रहे हुए आत्मा के

पार्थक्य को समझो और उस पर दृढ आस्था जमाओ। आत्मा न कभी जनमता और न कभी मरता है ऐसी सुदृढ प्रतीति जिसके अन्तःकरण मे बद्धमूल हो जायगी, वह आत्म-हित के लिए अवश्य प्रयत्न करेगा। वह अल्पकालस्थायी शरीर के सुख के लिए अपने अनन्त आत्मिक सुख की उपेक्षा नही करेगा। तुम आत्मा हो, अपने आपको समझो। पुद्‌गलो का सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त कर लेने पर भी अगर तुमने आत्मा को नही समझा तो कुछ भी नही समझा। आत्मज्ञान के अभाव मे समस्त ज्ञान अप्रयोजनभूत ज्ञान है। वह निरर्थक है। आत्मज्ञान से ही समस्त ज्ञान की सार्थकता है। अतएव मनुष्य का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यही है कि वह अपने स्वरूप को समझे---आत्म-ज्ञान प्राप्त करे। आत्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर और आत्मा का विशद स्वरूप समझ लेने पर सहज ही बोध हो जायगा कि कर्मो के वशीभूत होकर आत्मा किस स्वरूप से किस स्वरूप मे आ गया है ?

कोई मनुष्य निर्धन और दुखित घर मे जन्म लेता है और कोई धनाढ्य एवं सुख-सुविधा वाले कुटुम्ब मे उत्पन्न होता है। कोई अल्पायु होता है। एक, दो, चार महीना अथवा दो, चार, पाँच, दस वर्ष जीवित रहकर मर जाता है। कोई दीर्घ आयु पाता है। कोई रोगी होता है और रोग से पीडित होकर अपने जीवन को घोर अभिशाप समझता है, इसके विपरीत कोई नीरोग होता है और अपने जीवन को महान् वरदान अनुभव करता है। इस विभिन्नता को तुम प्रतिदिन देखते हो। मगर इसकी गहराई मे कभी गोता लगाते हो ? कभी सोचते भी हो

कि इसका मूल कारण क्या है ? एक सरीखे शरीर वाले मनुष्य-मनुष्य मे इतना अधिक अन्तर उत्पन्न क्यो हो गया है ? अगर समीचीन रूप से विचार करो तो इसी विचार मे से तुम्हे अपने कल्याण का पथ दिखाई देने लगेगा । फिर ज्ञान की खोज मे कही भटकना नही पडेगा ।

इस पार्थक्य का मूल कारण कर्म है । जिस जीव ने जैसे कर्म उपार्जन किये है, उसे वैसा ही फल भोगना पडता है । जिस स्टेशन का टिकिट खरीदा होगा, उसी स्टेशन पर उतरना होगा ।

भाइयों !- मृत्यु का कोई समय निश्चित नही है । जिस जीव ने जितने समय का आयुकर्म बाँधा है, उसे उतना ही समय बिता कर, शरीर त्यागकर प्रस्थान करना पडेगा । बँधी हुई आयु नियत समय से पहले तो भोगी जा सकती है, परन्तु, एक क्षण भर भी आगे नही बढाई जा सकती । मृत्यु के आने पर तत्काल रवाना होना पड़ता है । फिर मुहलत न मांगी जा सकती है, न माँगने पर मिल ही सकती है । संसार की प्रचण्ड से प्रचण्ड शक्ति भी मृत्यु का सामना करके सफल नही हो सकती । कोई किसी को मौत से बचा नही सकता ।

कजा का क्या भरोसा है, न जाने कब ये आवेगा ।
खड़ा रह जायगा लश्कर, पकड़ तुझको ले जाएगा ॥
तीतुर को बाज ज्यों पकड़े, मेढक को साप ग्रसता है ।
बिल्ली चूहा झपटती है, काल ऐसे दबावेगा ॥ १ ॥

भाइयो ! इस मौत का भरोसा नही है । न मालूम कब

गुरु हीरालालजो प्रसादे, कहे मुनि चौथमल ऐसे ।
करो क्रिया वरो मुक्ति, तो काल भी ताप खाएगा ॥

गुरु महाराज की कृपा से प्राणी यदि धर्मक्रिया करे और तप एव सयम का उत्कृष्ट रूप से सेवन करे और उसके फल-स्वरूप मोक्ष प्राप्त करले तो फिर उस पर मौत का जोर नही चलता ! वह मृत्यु जय वन जाता है ।

हाँ, तो भगवान् नेमिनाथ का वैराग्यमय उपदेश सुनकर थावच्चाकुमार के अन्तःकरण मे वैराग्य का भाव उत्पन्न हो गया । वह भगवान् का उपदेश सुनकर अपनी माता के पास आये । वोले--माताजी, मैं अव घर मे नही रहना चाहता । देखिए, उसी दिन उत्पन्न हुआ वह पडौस का बालक मर गया और सव को ही किसी न किसी दिन मरना पडता है, तो मैं भी सदा नही रह सकूँगा ।

माता ने वहुतेरा समझाया, मगर थावच्चाकुमार नहीं माने । एक छोटे-से वालक की मृत्यु की घटना ने उनके अन्त करण मे उजेला कर दिया । वे अन्धकार मे पडे थे, प्रकाश मे आ गये । वत्तीसो पत्नियो को और करोडो की सम्पत्ति को छोड कर भगवान् के चेले वन गये । कृष्ण महाराज ने भी उन्हे साधु न वनने के लिए समझाया था, मगर आखिर उन्ही के लवाजमे के साथ थावच्चा-कुमार का दीक्षा-जुलूस निकला ! वे श्रेष्ठ करनी करके मुक्ति के भागी हुए । उन्होंने मौत को जीत कर ही दम लिया ! ज्ञातासूत्र मे इस घटना का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है ।

भाइयो! कहने का आशय यह है कि जब आत्मा की परिणति सांसारिक भोगविलासो की ओर से हट कर योग की ओर चली जाती है, भगवान् की तरफ मुड जाती है, तो आत्मा उजली हो जाती है और उसमे लोकोत्तर प्रकाश आ जाता है। असल मे आत्मा तो प्रकाशमय ही है, उसमे दिव्य प्रकाश का पुञ्ज भरा हुआ है, वह किन्तु दुर्वासनाओं ने उस प्रकाश को मलीन बना दिया है, कर्मो ने उसे छिपा रक्खा है। हृदय मे जब पावन भावनाओ का स्रोत प्रवाहित होने लगता है तो समस्त संचित मलीनता धुल जाती है और निर्मलता ही निर्मलता प्रकट हो जाती है। कर्मो का आवरण दूर हो जाता है और आत्मा अपने असली स्वरूप मे चमकने लगती है। आत्मा को अपने असली स्वरूप मे लाने के लिए पावन भावनाएँ चाहिए और पावन भावनाएँ उत्पन्न करने के लिए भगवान् की भक्ति होनी चाहिए। भगवद् भक्ति करने से चित्त के विकार दूर हो जाते हैं। इसलिए जिसे ससार के समस्त दु खो और कष्टो से छुटकारा पाना है, आत्मा को पवित्र बनाना है, उसे अहकार का परिहार करके भगवान् आदिनाथ की शरण ग्रहण करना चाहिए और उनकी भक्ति-निष्कपट भक्ति करके आत्मा को अजर, अमर, अविनाशी बनाना चाहिए। यही मानव जीवन की सबसे बडी सफलता है, यही जीवन का सदुपयोग है, इसमे ही सच्ची कृतार्थता है। कीडो और मकोडो की तरह पैदा हो होकर मर जाने से कोई लाभ नही है। अनादिकाल से जन्म ले-लेकर मर रहे हो! अब तो इस चक्र से छूटने का प्रयत्न करो! याद रक्खो कि यह अवसर बार-बार नही मिलेगा। आत्म कल्याण की यह परिपूर्ण सामग्री बडी ही कठिनाई से प्राप्त होती है। अपने को धन्य समझो कि यह सामग्री पा सके हो! अगर

इसे वृथा वर्बाद कर दी तो फिर न जाने नरक निगोद मे पड़े सड़ा करोगे या कीड़े-मकोड़े हो कर कष्ट भोगोगे !

भाइयो ! बड़े-बड़े ऋषियों मुनियो और तीर्थकरो ने कहा है और मैं उन्ही की वाणी को दोहरा रहा हू कि प्रत्येक आत्मा में अनन्त बल है। तुम्हारी आत्मा भी अनन्त बल की धनी है। मगर तुम तो अपने को निर्बल बनाये हुए हो। तुम अपनी शक्ति को, अपने सामर्थ्य को, अपने प्रचण्ड बल को समझते नहीं हो और अपने आपको बलहीन मानकर दुर्वासनाओ के आगे घुटने टेक देते हो। जानते हो, परिणाम क्या होता है ? अपने आपको निर्बल समझने से आत्मा निर्बल हो जाती है। इसके विरुद्ध जब यह समझ लोगे कि मेरी आत्मा मे प्रचण्ड बल है, अतुल शक्ति है, असीम सामर्थ्य है और इतनी सामर्थ्य है कि मैं देवराज इन्द्र को भी अपने पैरो पर झुका सकता हूँ तो सचमुच तुम मे ऐसी ही शक्ति प्रकट हो जायगी।

भविष्यदत्त चरित

जरा भविष्यदत्त की ओर देखो। तिलकसुन्दरी ने राक्षस की क्रूरता का वर्णन करके उसे कही भाग कर छिप जाने का आग्रह किया मगर भविष्यदत्त को अपनी शक्ति का परिज्ञान था। उसने यही कहा कि अगर मेरी आयु पूर्ण नही हो गई है तो राक्षस भी मेरा बाल बाका नही कर सकता। वह अपनी शक्ति पर विश्वास करके राक्षस का सामना करने के लिए उद्यत हो गया है। कल्पना करो, अगर भविष्यदत्त ढीली धोती वाला व्यक्ति होता और राक्षस की प्रचण्ड शक्ति और क्रूरता का वर्णन सुन

कर थर-थर काँपने लगता, तो उसकी क्या दशा होती ? वह भाग कर भी कहाँ जाता और कहाँ बचता ? जहाँ वह जा सकता था, वहाँ क्या वह दानव नही पहुँच सकता था ? अवश्य पहुँच सकता था। फिर उसके बचाव की जगह कौन-सी थी ? अरे, कदाचित् दानव उसका पीछा न भी करता तो भी वह भय का मारा ही मर जाता !

आज अधिकाश लोग भूत-प्रेत से डरते हैं। उनके प्रति लोगो की भावना कुछ विचित्र-सी बन गई है। लोगो ने समझ लिया है कि भूत-प्रेत मानो मनुष्य के शत्रु ही होते हैं और ज्यो ही मनुष्य को पाते हैं कि खा जाते है। मनुष्य की इस भ्रमपूर्ण धारणा ने ही वास्तव मे भूतों-प्रेतो को विकराल रूप प्रदान कर दिया है। प्राय लोग भय से प्रेरित होकर ही अपने मन में भूत-प्रेत की कल्पना कर लेते है और उनकी भावना का भूत ही उन्हे क्षति पहुँचाता है। भावना मे वडी शक्ति है। वह भूत न होने पर भी भूत को खडा कर देती है, मनुष्य को विह्वल बना देती है और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है, जैसी कि वास्तविक भूत भी नही पैदा कर सकता। यह एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता ही है। भारतवर्ष में सैकड़ो नही, हजारो-लाखो ऐसे नर-नारी मिल सकते हैं जो केवल कल्पना के भूत के शिकार हो रहे हैं और कष्ट पा रहे है। अतएव इस प्रकार की भयजनक भावनाओ का परित्याग करके आत्मविश्वास का भाव रखना चाहिए। समझना चाहिए कि भूत-प्रेत मे अगर वल है तो मनुष्य मे भी प्रवल वल है। ऐसा समझने से आत्मा सचमुच वल-शाली हो जाती है।

"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।"

जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है ।

भविष्यदत्त को अपनी आत्मिक शक्ति पर भरोसा था । अतएव उसने स्वयं भी साहस प्राप्त किया और तिलकसुन्दरी को भी साहस बँधाया । वह धर्मशील और साहसी मानव दानव का सामना करने को तैयार हो गया ।

दानव के आने का समय हुआ । वह कूदता फाँदता और हुंकार मचाता हुआ चला आ रहा है । तेज आँधी चली, पानी बरसने लगा और अग्नि के स्फुलिंग उछलने लगे । आसमान में गड़गड़ाहट की भयानक ध्वनि होने लगी । इन सब चिह्नों को देख कर भविष्यदत्त ने उसके आने का अनुमान कर लिया । वह णमोकार मंत्र का ध्यान करता हुआ और अपने दोनों हाथों में तलवार एवं ढाल सँभाले हुए सामने चल पड़ा ।

दानव ने मानव को सामने आता देखा तो उसके क्रोध का पारा चढ़ गया । वह सोचने लगा—इस नगर को मैंने जनहीन बना दिया था, मगर यह मनुष्य फिर कहाँ से आ टपका ! दानव को भविष्यदत्त निर्भय अवस्था में और सामना करने को उद्यत देख कर आश्चर्य हुआ । उसे खयाल आया कि अब तक जिन मनुष्यों से उसे काम पड़ा, वे सब भयभीत थे, मुझे देखते ही उनके मुखमण्डल पर दीनता और कातरता छा जाती थी । सब लाचारी का अनुभव करते थे । मेरे मारने से पहले ही अधमरे हो जाते थे और इसी कारण वे मौत के अनायास ही शिकार

हो जाते थे। परन्तु यह मनुष्य तो एकदम निराला मालूम होता है! मेरे द्वारा उत्पन्न किये हुए भयङ्कर वातावरण को और मेरे विकराल रूप को जानते-देखते हुए भी इसके चेहरे पर भय का भाव नही दिखलाई पड़ता! यह निश्चित है। मालूम होता है, आज किसी विशिष्ट व्यक्ति का मुझे सामना करना है! देखो न कितनी लापरवाही के साथ मेरे सामने चला आ रहा है!

इस प्रकार भविष्यदत्त की निर्भयता ने दानव के मन मे एक प्रकार की उथल-पुथल मचा दी। दानव के दिल में हलचल पैदा हो गई। उधर भविष्यदत्त नमस्कार मन्त्र का स्मरण करता हुआ, धीरतापूर्वक आगे ही आगे बढता जा रहा था। उसके हृदय मे लेशमात्र भी भय का सञ्चार नही हुआ था। कहा है—

चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव,धीराणां निश्चलं मनः॥

प्रलयकालीन तूफानो के जबर्दस्त थपेडे खाकर पर्वत भले ही चलायमान हो जाएँ मगर धीर-वीर पुरुषो का मन घोर विपत्ति के अवसर पर भी नही विचलित होता।

भविष्यदत्त का चित्त ऐसा ही अचल था। सामने विकराल दानव है, इससे बढ कर भय का और क्या कारण हो सकता है? मगर भविष्यदत्त का कलेजा जैसे फौलाद का बना हुआ है! वह निडर और निश्चिन्त है?

भाइयो! तुम भी यही निर्भयता लाओ। भय का कारण उपस्थित होने पर भी भयभीत मत बनो। निर्भयता आ जाने

पर तुम स्वयं अनुभव करने लगोगे कि तुममे अपूर्व बल आ गया है। कामदेव श्रावक के जीवन को देखो! कितनी दृढ़ता थी उसके चित्त मे! संसार की बडी से बडी मुसीबत उसके सामने नाच रही थी, मगर क्या वह क्षण भर के लिए भी डिगा? नही, उसने अपने चित्त को सुमेरु की तरह अचल और अटल बनाये रक्खा। परिणाम क्या आया? यही कि उसका बाल भी बाका न हो सका। देवता को भी उसके सामने हार माननी पडी। इसी प्रकार अरणक की कथा भी आप सुन चुके है। उसने भी देवता को अपनी दृढता से परास्त किया था?

यह सब उज्ज्वल चरित्र धर्म ग्रन्थो मे क्यो लिखे गये हैं? किस लिए सन्त महात्मा उन्हे आपको सुनाया करते हैं? इसीलिए कि आप भी श्रावक है, अत आप भी उनके आदर्श का अनुसरण करके दृढता प्राप्त करे। आप मे भी निर्भय भावना आ जाय! आप कायरता का परित्याग करके वीर बने। आप वीर बन जाएँगे तो आपका जीवन तेजस्विता से परिपूर्ण हो जायगा। आपका धर्म चमक उठेगा और आप अपने व्यवहार से धर्म की प्रतिष्ठा को बढाएँगे।

वीर-वीर पुरुष मे अनूठा साहस आ जाता है। उस साहस के सहारे वह बडी से बडी कठिनाइयो पर अनायास विजय-प्राप्त कर लेता है। उसके लिए कठोर से कठोर अवसर भी साधारण बन जाता है।

अङ्गणवेदी वसुधा, कुल्या जलधि स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरु, कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य ॥

जिसने किसी भी कठिनाई पर विजय प्राप्त करने की दृढ प्रतिज्ञा करली है, उस वीर पुरुष के लिए यह विशाल भूमण्डल आगन की चबूतरी के समान बन जाता है। उसके लिए असीम समुद्र कुल्या–पानी का छोटा-सा गड्ढा हो जाता है। पाताल लोक को भी वह स्थल के समान समझने लगता है। उसके लिए सुमेरु भी वल्मीक (बाबी) की तरह नगण्य हो जाता है। अर्थात् धीर–वीर पुरुष बडी से बडी विघ्न बाधाओ को भी तुच्छ और तुच्छतर समझता हुआ कभी हतवीर्य नही होता, उसके उत्साह मे कमी नही आती और इस कारण वह उन सब पर अनायास विजय प्राप्त कर लेता है।

भाइयो ! भविष्यदत्त वणिक्कुल मे जन्मा था, मगर आपकी तरह ढीलाढाला नही था। दानव की बात को छोडिये, आपको अगर किसी मानव से भी मुकाबिला करना पडे तो आपकी क्या दशा होगी ? क्या आपके पूर्वज भी आप जैसे ही थे ? नही, उनकी वीरता का इतिहास बहुत गरिमामय है। आप जिस रियासत में रह रहे हैं और जिसमे मै यह चौमासा व्यतीत कर रहा हूँ, उसी रियासत के निर्माण मे आपके पूर्वजो ने कम भाग नही लिया था। वे निर्भीक होकर, आवश्यकता होने पर, नीति की प्रतिष्ठा के लिए तलवार भी हाथ मे लेकर खेलने मे झिझक नही करते थे।

भविष्यदत्त भी वीर पुरुष था। वह निर्भीक होकर दानव के सामने चला। दानव ने उसे देखकर कहा–अरे नादान ! तू कौन है ? क्या तुझे मृत्यु का आलिंगन करना है ? दुनिया मौत से दूर भागना चाहती है और तू मौत के मुख मे घुसना चाहता है ? मैने इस नगर के बडे-बडे शूरवीरों को यमराज के पास भेज

दिया है। तू कहाँ छिप रहा था? कैसे बच गया ? सावधान होजा, मौत तेरे सिर पर मँडरा रही है।

दानव की चुनौती सुन कर कुमार भविष्यदत्त ने कहा—मैं जानता हूँ कि तूने राजा और प्रजा के प्राणों का हनन करके इस स्वर्गोपम सुन्दर नगर को वीरान बना दिया है। मगर आज तुझे किसी दूसरे ही प्रकार के मनुष्य से पाला पडा है। मुझे सावधान करने के वदले स्वय सावधान हो जाने में ही तेरा हित है। निर्दय तेरा दिल फौलाद का बना हुआ है। तूने बिना किसी अपराध के बहुतो के प्राण लिये हैं। याद रख इसका बदला तुझे चुकाना पडेगा। अपनी करतूतो का फल भोगे बिना तू बच नही सकता।

दानव! तू अपनी शक्ति के मद मे चूर हो रहा है। घमण्ड के कारण तूने अपने जीवन को बर्बाद कर डाला है। मगर याद रखना, मान करना अच्छा नही होता। घमण्डी का सिर नीचा हुए बिना नहीं रहता! सूर्य कितना प्रतापशाली है? मगर सन्ध्या के समय उसे भी तेजोहीन होना पडता है। याद है, कस ने घमण्ड किया तो कृष्ण ने उसकी क्या दशा की थी? रावण को अभिमान के कारण ही अपने प्राणो से हाथ धोने पड़े थे। अतएव यदि तू अपनी भलाई चाहता है तो घमण्ड को त्याग दे और अपने वास्तविक कर्त्तव्य की ओर ध्यान दे।

दानव! तू देखता है कि मैं शस्त्रसज्जित होकर ही तेरे सामने आया हूँ और युद्ध के लिए तैयार हूं। फिर भी मैं हिंसा से घृणा करता हू और वृथा किसी के प्राण नही लेना चाहता! मैं तेरा घात करने की अपेक्षा तेरी बुराइयो का घात करना अधिक

अच्छा समझता हूँ तेरे उपर मुझे क्रोध नही है, द्वेष नही है, मगर क्रूरता जगत् को नष्ट करने वाली है और मैं उसका अन्त किये विना चैन नही लूँगा।

भविष्यदत्त ने दानव को उसकी चुनौती के वदले मे जो उत्तर दिया, उसमे वीरता के साथ-साथ दयालुता भी कूट-कूट कर भरी है। इसमे श्रावक के कर्त्तव्य का विवेक भी पूरी तरह सुरक्षित है। श्रावक निरपराधी त्रसजीव की सकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। दानव त्रसजीव तो है ही और भविष्यदत्त अगर उसकी हिंसा करे तो वह इस अवस्था मे विरोधी हिंसा ही कहलाएगी। मगर फिर भी उसका व्रत भग नही होगा, क्योकि दानव स्वय भविष्यदत्त को मार डालने को तैयार हो गया है और मारने की चुनौती भी दे चुका है। अतएव निरपराध नही, वल्कि सापराध है। हाँ, अगर दानव भविष्यदत्त को किसी प्रकार की हानि पहुचाने का इरादा न करता होता और उसकी शरण मे गई हुई तिलकसुन्दरी को भी क्षति न पहुचाता तो वह उसके लिए निरपराध हो जाता और उस हालत मे उसे मारना व्रत की मर्यादा मे न रहता। मगर चूंकि दानव उसे मार डालने धमकी दे चुका था, अतएव वह निरपराध नही रह गया था।

फिर भी श्रावक विवेकशील होता है। वह हर हालत मे प्रयत्न करता है कि किसी प्रकार हिंसा करने का अवसर न आ पावे। इसके लिए वह भरसक प्रयत्न करता है। भविष्यदत्त ने दानव को जो उत्तर दिया है, उससे साफ मालूम हो जाता है कि भविष्यदत्त दानव को बुराई छोड देने की प्रेरणा कर रहा है और वह वास्तव मे दानव को नही, किन्तु उसके दुर्गुणो को ही नष्ट

करना चाहता है। वह चाहता है कि किसी प्रकार दानव ठीक राह पर आ जाय और मुझे उसके प्राण न लेने पड़े ! फिर भी भविष्यदत्त भयभीत नहीं है और प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को उद्यत है।

इसे कहते हैं सच्ची वीरता ! जहाँ तिल भर भी कायरता न हो और साथ मे दयालुता हो, वही सच्ची वीरता चमकती है। आदर्श वीर श्रावक मे ऐसी ही वीरता होती है ! भविष्यदत्त ने श्रावकधर्म को वास्तविक रूप मे समझा था और अपने जीवन में उसका व्यवहार भी किया !

भविष्यदत्त की भावना मे दानव के प्रति द्वेष नहीं था, अतएव दानव के चित्त पर भविष्यदत्त की बात का कुछ अनोखा ही प्रभाव पड़ा ! दानव की प्रचण्डता कुछ कम हुई। उद्धतता में भी कमी आ गई। वह मन ही मन सोचने लगा—मुझे इस पुरुष के ऊपर क्रोध क्यो नहीं आ रहा है ? क्या इसके साथ मेरा पूर्व जन्म का कोई संबंध है ? उसने अवधिज्ञान का प्रयोग किया तो मालूम हुआ कि इसने पूर्व जन्म मे मेरे ऊपर उपकार किया था। इसी कारण मुझे इस पर क्रोध नहीं आ रहा है। मेरा दिल इसके साथ लड़ने के लिए उत्साहित नहीं हो रहा है !

इस प्रकार सोच कर दानव ने कहा—भविष्यदत्त ! ठहरो। तुम पूर्व जन्म के मेरे मित्र हो। मैं तुम्हे देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अब तुम्हारे साथ मेरा कोई लड़ाई—झगड़ा नहीं है !

भविष्यदत्त दानव की बात सुन कर आश्चर्यान्वित हुआ ! लेकिन उसने दानव की बात पर अश्रद्धा नही की। भविष्यदत्त श्रावक था । श्रावक सम्यग्दृष्टि ही होता है और सम्यग्दृष्टि आस्तिक ही होता है । वह भलीभाँति जानता था कि कृत कर्मो का जन्म-जन्मान्तर मे शुभ या अशुभ फल भोगना पडता है ।

भाइयो ! इस घटना से आपको शिक्षा लेने की आवश्यकता है । आप दूसरो का उपकार करेंगे और यदि आपको उस उपकार का बदला इस जीवन मे न मिला तो भी वह वृथा जाने वाला नही है। आगामी जीवन मे किसी न किसी रूप मे उसका बदला मिल ही जाता है। अतएव जिनसे आपको लाभ पहुँच सकता है, उन्ही को लाभ पहुँचा कर सन्तोष मत मान लो, बल्कि जिनके विषय मे आप सोचते हैं कि इनको उपकार करने से कोई लाभ न होगा, उनका भी उपकार करो। आगामी जन्म मे वे न जाने किस स्थिति मे होगे और तुम किस स्थिति मे होओगे ? इसके साथ ही अपनी सत्ता, प्रभुता, सम्पत्ति, शक्ति आदि के नशे मे चूर होकर किसी का बुरा मत करो । किसी को कष्ट न पहुँचाओ। किसी का अपमान मत करो। क्या आश्चर्य है कि आज अपनी सत्ता आदि के बल पर जिसका अपमान या बुरा कर रहे हो वह भविष्य मे स्वय सत्ताधीश बन जाय और आपसे आपके पूर्व व्यवहार का कई गुना बदला चुकाये ! हर हालत मे इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि हमारा अस्तित्व यही सदा के लिए समाप्त हो जाने वाला नही है। आगे विराट विश्व है और सभी प्राणी उसमे जाने वाले हैं। यह सोच कर सब प्राणियो की भलाई करो, शक्ति के अनुसार जिन-जिनका

उपकार कर सको, करो और जिनका उपकार करना संभव न हो, उनके प्रति भी सहानुभूति और अनुकम्पा की भावना तो अवश्य ही रक्खो। भविष्यदत्त ने दानव का पूर्वभव मे उपकार किया था तो देखो ऐन मौके पर कैसा काम आया? सहसा सारा चित्र वदल गया!

दानव का कथन सुन कर भविष्यदत्त ने कहा अच्छा, पूर्वजन्म का विस्तृत हाल सुनाइये।

दानव—पूर्वजन्म में मैं एक तापस था। कौशाम्बी नगर के बाहर तपस्या किया करता था। उस समय वहाँ विजौयर नामक राजा था। वहाँ के लोगो ने मुझसे द्वेष किया। मेरा अपमान किया और कहा कि यह तापस नही, ढोंगी है। किन्तु वहाँ तुम अकेले ही मेरे प्रति सद्भावना रखने वाले थे। तुमने मेरी भक्ति की थीं। वहाँ का राजा भी मेरा अपमान करने मे मुखिया था। तपस्या के प्रभाव मे मैंने देवगति पाई और सामुदानिक कर्मों का बन्धन करके वहाँ के लोग और राजा इस नगर मे आकर जनमे। सामुदानिक कर्म बाँधने के कारण वे सब एक ही गाँव मे जनमे। कहा भी है—

समुदाणी सुन माधव! कर्म समुदाणी

भाइयो! सामुदानिक कर्मों का फल इसी प्रकार सामुदायिक रूप मे भोगना पडता है। द्वारिका नगरी मे भी सामुदानिक कर्म बाँधने वाले लोगो का जन्म हुआ था। एक बार श्रीकृष्णजी ने भगवान् नेमिनाथजी से प्रश्न किया था-प्रभो! इस द्वारिका नगरी का भविष्य क्या होगा? तब भगवान् ने फरमाया था-माधव!

द्वारिकावासी सामुदानिक कर्म बाँध कर आये हैं, अत एक ही साथ इनका विनाश होगा। भागवत मे भी लिखा है कि यादव लोग आपस मे लड-लड कर मरेंगे। और ऐसा ही हुआ। द्वारिका मे आग लगी। श्रीकृष्णजी के देखते-देखते सारी द्वारिका नगरी भस्म हो गई। श्रीकृष्णजी ने बहुत चाहा कि द्वारिका की रक्षा की जाय, मगर वे सफल न हो सके। उन्होने अपने परिवार की रक्षा करने मे भी सफलता प्राप्त न की। हाँ,स्वय कृष्णजी और बलदेवजी ही उस आग से बच सके। शेष सब द्वारिकावासी एक ही साथ जल कर भस्म हो गये।

कभी-कभी कही भूकम्प आ जाता है और हजारो आदमी मर जाते है। इसी प्रकार के किसी अन्य कारण से भी सामूहिक मृत्यु होती देखी-सुनी जाती है। प्राय यह सब सामुदानिक कर्म का फल है।

सामुदानिक कर्म एक साथ बधता है। मान लीजिए कही देवी के स्थान पर भैंसा काटा जा रहा है। हजारों आदमी मूढता-पूर्ण भक्ति से प्रेरित होकर वहा जाते हैं। वे सोचते हैं-कब भैंसा कटेगा, न जाने कब कटेगा, जल्दी ही कटे तो ठीक रहे सब उस भैंसे के कटने की भावना करते हैं, उसकी अनुमोदना करते हैं और उसके कटने के उपलक्ष्य मे हर्ष मनाते हैं। ऐसे अवसरो पर समूहगत कर्म बध होता है और सामूहिक रूप से उसका फल भी भोगना पडता है। मेला-ठेला आदि के प्रसगो पर भी इस कर्म के बधन की सभावना रहती है। इसी कारण विवेकशील पुरुष कुतूहल वृत्ति को अपने वश मे करके ऐसे प्रसगो से दूर रहते है। वे जानते हैं और आपको भी जानना चाहिए कि यह सामुदानिक

कर्म बड़े ही भयकर होते है। इनसे बचने का सदैव ध्यान रखना चाहिए। वृथा अपनी आत्मा पर बोझ लादना उचित नही है।

तो दानव बोला—हे कुमार ! मेरे प्रति द्वेप धारण करने वाले, मेरी निन्दा करने वाले वे सब लोग और वहाँ का राजा यहाँ आकर जनमा था। पूर्वजन्म के सस्कारो के जागृत होने पर मेरे हृदय मे द्वेप का भाव जागा। मै क्रोध से विह्वल हो गया। बदला लेने की अन्त प्रेरणा हुई और मैने ढूंढ-ढूंढ कर सबको यमधाम पहुँचा दिया। अलबत्ता, एक लडकी यहाँ मौजूद है। उसने मेरी सहायता की थी। उस पर मेरा स्नेह था इस कारण उसे मैने नही मारा है। वह जीवित बची है।

भाइयो ! सुन लिया आपने परनिन्दा का फल कितना कटुक और भीषण होता है ? आज आपको निन्दा करने मे कुछ भी नही लगता। जरा-सी जीभ हिला दी और निन्दा हो गई। मगर इसका फल भोगते समय छठी का दूध याद आ जाता है ! ईर्षा से, अहकार से, द्वेष से, क्रोध से अथवा किसी ऐसे ही अन्य कारण से आप किसी की भी निन्दा कर बैठते हैं। यह बहुत बुरा कर्म है। इससे सदैव सावधानी के साथ बचो। गुणी जनो के गुणो की प्रशसा कर सको तो भले करो। प्रशसा न कर सकते होओ तो कम से कम निन्दा तो मत करो !

'बई महाराज ! निन्दा नही करा तो रोटी भी हजम नही होवे !'

अरे भाई ! इस दुर्बलता को छोड़ो। परनिन्दक नीच गिना जाता है। कोई भी समझदार आदमी उसकी सराहना नही करता

वह सब के घृणा का पात्र बनता है। विशेष तौर से देव और गुरु की निन्दा करने वाला तो अत्यन्त ही पाप का भागी होता है। कहा है—

हरि गुरु निन्दा सुनहिं जे काना,
पाप होइ गो घात समाना।

देव और गुरु की निन्दा करने की तो बात जाने दीजिए, वह तो भयंकर से भयंकर पाप है ही, मगर जो इनकी निन्दा को अपने कानों से सुनता है, वह भी पापी होता है।

भाइयो! निन्दा करने से बचो। दूसरों की राख लेकर अपने मस्तक पर बिखेर लेने से क्या लाभ है? संसार में गुणी जन बहुत हैं। उनके गुणों को देखो और प्रशंसा करो। इससे आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

१६-१०-४८ }

गुणमय दृष्टि

स्तुति :

य. संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा—
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि त प्रथमं जिनेन्द्रम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! समस्त शास्त्रो के तत्त्वज्ञान से जिन्हे श्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त हुई है और उस श्रेष्ठ बुद्धि से जो अत्यन्त कुशल बन गये हैं,

ऐसे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र आपकी स्तुति करते है। वे तीनो लोको के भव्य जीवो के चित्त को हरण करने वाले अतीव सुन्दर स्तोत्रो के द्वारा आपकी स्तुति करते है। उन्ही भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति मैं भी करता हूँ।

भाइयो! बार-बार भगवान् की स्तुति करनी चाहिए और अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिए। वीतराग प्रभु की स्तुति करने से वीतरागता आती है और वीतरागता आ जाने पर जगत् के समस्त दुःख और द्वन्द्व मिट जाते हैं। शनैः शनैः पूर्ण वीतरागता प्राप्त हो जाने पर यह आत्मा भी परमात्मा के पद को प्राप्त हो जाती है।

जीवन को निष्कलक और गुणमय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य दूसरे के गुणो के प्रति आदर की भावना रक्खे और उसके गुण ग्रहण करता रहे। जिसमे नम्रता का गुण है उससे नम्रता ग्रहण कर लो, जिसमे सत्यवादिता का गुण है उसमे से सत्य बोलने का गुण ले लो। इसी प्रकार न्यायी से न्याय का, दान-वीर से दान का; ज्ञानी से ज्ञान का, तपस्वी से तपस्या का, उदार से उदारता का, निष्कपट से सरलता का, दृढधर्मी से धर्म मे अटल रहने का और निरभिमानी से निरभि-मानता का गुण सीख लो। जिसमे जो भी गुण तुम्हे दिखाई दे उससे वही गुण सीखते और ग्रहण करते जाओ। अपनी प्रकृति को उसी प्रकार की बनाते जाओ।

कोई अच्छा और पक्का ब्रह्मचारी हो, परस्त्री को माता—बहिन समझता हो, और भलीभाति ब्रह्मचर्य का पालन करता

हो तो आपको चाहिए कि आप उसके इस गुण की सराहना करें और इसे सीख ले, ग्रहण कर लें। कोई उत्तेजना के अवसर पर भी क्रोध नही करता है और क्षमा ही धारण किये रहता है तो अपने को क्षमा के गुण की शिक्षा ले लेनी चाहिए। कोई साधु उत्तम रूप से सयम का पालन करता है और ज्ञान-ध्यान मे निमग्न रहता है तो आपको भी उसे आदर्श समझ कर उसके गुण ले लेने चाहिए। किसी स्त्री मैं सद्गुण हो तो उससे भी ग्रहण कर लेना उचित है। यही नही, अगर आपमे गुण ग्रहण करने की वृत्ति सचमुच जाग उठे तो आप वृक्ष से भी गुण ग्रहण कर सकते हैं। देखो, वृक्ष कितना सहनशील और उदार होता है? वह पत्थर मारने वाले को भी वैसे ही फल देता है जैसे पानी सिंचने वाले को देता है। इसी प्रकार हमे भी बुराई करने वाले के प्रति भलाई करनी चाहिए!

आपको घास मे भी गुण लेने चाहिए। वह पशुओ की उदरपूर्ति करता है और दूध के रूप मे परिणत होकर मनुष्यों को भी शक्ति प्रदान करता है। घास के तिनको को इकट्ठा कर लिया जाता है तो वे छप्पर का रूप धारण कर लेते है और सूर्य के प्रचण्ड ताप से, सर्दी से हमारी रक्षा करते हैं।

पशुओ से भी बहुत-सी शिक्षाएं ली जा सकती हैं। अनेक प्रकार के पशुओ मे अनेक प्रकार की उत्तम विशेषताएं होती है। गाय, भैस, बकरी घास खाकर दूध देती हैं, जो मनुष्य के लिए अमृत के समान है। उनकी काम वासना नियन्त्रित होती है। मनुष्य की भांति अनियन्त्रित नही होती कि समय-असमय का भी जिसमे विचार न हो। पशु जब तक जीवित रहता है, मनुष्य

समाज का नाना प्रकार से उपकार करता है और जब मर जाता है तब भी अपनी चमडी से आपको जूतिया पहनाता है, जिससे आप काटो और ककरो आदि से अपना बचाव करते हैं !

अरे, बबूल जैसे पेड से भी आप चाहे तो क्या शिक्षा नहीं ले सकते है ? वह सर्दी-गर्मी समान रूप से सहन करके और काँटेदार होते हुए भी धूप से व्याकुल और चलते-चलते थके हुए पथिको को छाया प्रदान करता है । उसके काटे पैर मे चुभे हुए काटे को निकालने मे काम आते हैं ।

पात्र सोने का है या मिट्टी का, उससे तुझे मतलब नही है, तू तो उसमे रक्खी हुई मोहरो से मतलब रख ।

ससार की समस्त वस्तुओ में कुछ अच्छाइयाँ है, कुछ बुराइयाँ हैं । और फिर एक के लिए जो अच्छाई है, दूसरे के लिए वही बुराई है । इन अच्छाइयो और बुराइयो मे से तुझे क्या लेना है ? अगर तुझे बुराइयो का भण्डार बनना हो तो तेरी मर्जी । तू सबकी बुराई ही बुराई देखा कर और उसे ग्रहण करके बुराइयो का भण्डार बन जा । अगर बुरा बनना तुझे प्रिय नही है और गुणवान् बनना चाहता है तो दूसरों की बुराइया छोड दे, उनकी तरफ निगाह मत कर और अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ सीख और गुण ही गुण ग्रहण कर । ऐसा करने से थोडे ही दिनो मे तेरे पास सद्गुणो का बडा भण्डार हो जायगा और तेरा जीवन उत्कृष्ट बन जायगा ।

जैसे घोडे की पीठ पर आगे-पीछे खडिया पडा रहता है, उसी प्रकार आदमी के कधे पर भी आगे-पीछे खड़िया पड़ा है ।

आगे वाले में बुराइयां भरी है और पीछे वाले मे अच्छाइयाँ भरी हैं। यानी वह अन्धा है, काना है, लूला है, लगडा है, दया-हीन है, अहकारी है, कुत्ता है, चाण्डाल है आदि-आदि बुराइयाँ उसमे मौजूद है और आगे वाले खडिया मे भरी हुई हैं। यह बुराइयाँ तुझे नजर आती हैं। मगर पीछे वाले खड़िया मे जो अच्छे-अच्छे गुरण भरे हुए है वे नजर नही आते। अगर तू ने जब धर्मशास्त्र का उपदेश सुनना शुरु किया है, सन्तो का समागम किया है और भला बनने की इच्छा तेरे अन्तःकरण मे जागी है तो तू आगे वाले खडिया को पीछे कर दे और पीछे वाले को आगे करदे। बस, ऐसा कर देने से तुझे दूसरे के गुरण ही गुरण दृष्टिगोचर होने लगेंगे। जरा-सा परिवर्त्तन कर देने से सब काम सुधर जायेंगे। सब मे से गुरण ही गुरण लो। याद रक्खो, सदा याद रक्खो दूसरे के गुणो को ही देखो और गुणो को ही ग्रहण करो। हस बनो, कौवा मत बनो।

इस प्रकार मनुष्यों, पशुओं, पेडों और जड़ पदार्थों से एक-एक दो-दो गुण लेते-लेते तुम असख्य-अनन्त गुणों के स्वामी बन जाओगे। सज्जन पुरुष का काम गुण ग्रहण करना है। दुर्जन दोष ही देखा करता है और उन्ही का सचय करता रहता है। वह अपने दोपो को तो देखता नही, परकीय दोषो को ही देखा करता है। कहा है—

> खलः सर्षपमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।
> आत्मनो विल्वमात्राणि, पश्यन्नपि न पश्यति ॥

दुर्जनो की दृष्टि वडी अनोखी होती है। उन्हें सरसो के

बराबर दूसरो के दोप तो साफ--साफ दिखाई दे जाते है, मगर अपने बेल फल के बराबर दोषो को देखते हुए भी वह नही देखता है ।

इस प्रकार अपने दोपो को अनदेखा करने से और पराये दोषो को देखते-देखते मनुष्य दोषो का घर बन जाता है । उसके हृदय मे गुण ठहर नही पातेः—

अय·पिण्ड इवोत्तप्ते, खलानां हृदये गुणाः
पतिता अपि नेक्ष्यन्ते, गुणास्तोयकणा इव ।।

जैसे आग मे तपने से लाल-लाल बने हुए लोहे के गोले पर पानी के कुछ बू द छिड़क दिये जाएं तो वे दिखाई नही देते, इसी प्रकार पर-छिद्रान्वेपी दुर्जन के हृदय मे लेश मात्र भी गुण नजर नही आते ।

गुण किसे प्रिय नही हैं ? और अवगुण किसे प्रिय है ? प्रत्येक मनुष्य-गुणवान् बनने की इच्छा करता है, परन्तु आश्चर्य है कि अधिकाश लोग गुणो के बदले मे अवगुणो को प्राप्त करने का मार्ग अंगीकार करते है । कई लोग अपने आपको गुणवान् प्रकट करने के लिए दूसरो को अवगुणी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। मगर उन्हे पता नही है कि दूसरे के अवगुणो को प्रकट करना भी शिष्ट समाज मे एक अवगुण समझा जाता है । ऐसी स्थिति मे वह अपने आपको किस प्रकार गुणवान सिद्ध कर सकता है ?

भाइयो ! सौ बात की एक बात यह है कि अगर आपको

सचमुच ही गुणी बनना है, तो आप गुणी जनो से प्रेम करो, उनके गुणो के प्रति आदर की भावना व्यक्त करो, गुण ग्रहण का भाव रक्खो और यथाशक्ति गुणो को ग्रहण किये जाओ। भूलकर भी परकीय छिद्रों को मत देखो। ऐसा करने मे आपको लाभ कुछ होगा नही और हानि ही हानि होगी। अगर आप दूसरे के दोषो पर दृष्टि न डाल कर गुण ही गुण लेते जाएँगे तो आपके पास गुणो का अक्षय भण्डार हो जायगा। आप अनन्त गुणी बन जाएँगे और अन्त मे परमात्मा का पद प्राप्त कर लेंगे।

ऋषभदेवजी पार्श्वनाथजी, महावीर स्वामी या रामचन्द्रजी ने परमात्मा का पद किस प्रकार प्राप्त किया? वे जगत् के पूज्य कैसे बन सके? वे दूसरो की बुराई ही बुराई देखा करते और ग्रहण भी करते जाते तो क्या वे परमात्मा बन सकते थे? जो बुराइयो पर ही निगाह रखता है, वह बुराइयो का भण्डार बन जाता है और अन्त मे नरक की यातनाएँ भोगता है।

किसी गांव मे एक महिला थी। उसके मुँह मे कोई रोग हो गया और इस कारण वह मुँह टेढ़ा करके बोलती थी। गाव के लडके उसे चिढाने के लिए उसकी नकल करते थे और वैसा ही मुँह बनाते थे। यो करते-करते उनकी भी वैसी ही आदत पड गई। क्योकि जो जैसी नकल करता है, वही नकल कालान्तर मे उसके लिए असल चीज बन जाती है। जैसा अभ्यास करोगे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होगी। अगर आप सत्पुरुषो की नकल करोगे, उनकी चेष्टाओ का तथा उनके व्यवहार का अनुकरण करोगे तो आप भी सत्पुरुष हो सकोगे। इसके विपरीत अगर आपने बुराई की नकल की तो बुराई के सिवाय और कुछ भी आपके हाथ

लगने वाला नहीं है । अतएव अपना भला चाहो तो दूसरो के गुण देखो, अच्छाइयो पर निगाह रक्खो । दोषो की ओर से आँखे मीच लो । ऐसा करने से आपका जीवन बहुत उन्नत और श्रेष्ठ बन जायगा ।

गुणग्राही और अवगुणग्राही की निगाह मे कितना अन्तर होता है, यह समझने के लिए एक उदाहरण प्रसिद्ध है । कृष्णजी बडे गुणग्राही थे । एक बार स्वर्ग मे इन्द्र महाराज ने अपनी सभा में कृष्णजी की प्रशसा करते हुए कहा कि वासुदेव श्रीकृष्ण जगत मे आदर्श गुणग्राही हैं । वे निकृष्ट से निकृष्ट समझी जाने वाली वस्तु मे से गुण ही ग्रहण करते हैं ।

श्रीकृष्ण की यह प्रशसा सुन कर एक देवता को उनकी परीक्षा करने का कुतूहल जागा । उसने परीक्षा करने का निश्चय किया । कृष्णजी, भगवान् अरिष्टनेमि की वन्दना करने के लिए जा रहे थे । साथ मे सेना थी । वे जिस रास्ते से भगवान् के पास जा रहे थे, उसी रास्ते मे, एक किनारे पर, उस देवता ने मरे हुए कुत्ते का रूप धारण कर लिया । उसके सडे हुए शरीर मे से असह्य दुर्गंध फूट रही थी और वह चारो ओर के वातावरण को दुर्गन्धमय बनाये हुए थी । श्रीकृष्णजी के आगे-आगे चलने वाले सैनिक जब उसके पास होकर निकले तो उनसे दुर्गन्ध सहन नही हुई । उन्होने किसी प्रकार अपनी नाक बद करके लम्बे-लम्बे डग भरे और अपनी जान बचाई । कृष्णजी भी उसके पास पहुचे । उन्होने उसे देख कर कहा-अहा, काले कुत्ते के शरीर मे स्वच्छ धवल दातो की पक्ति ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे नीलम के पात्र मे चमकते हुए मोती हो !

कितनी सुन्दर उपमा है ? अरे भाई, जब बुराई और भलाई दोनो एक जगह मौजूद है तो बुराई को क्यो देखता है ? भला बनना है तो भले मानुस, भलाई को ही क्यों नही देखता ?

कहा जा सकता है कि जहाँ भलाई हो, वहाँ तो भलाई देखना ठीक है, मगर जहाँ बुराई ही बुराई हो, वहाँ भलाई कैसे देखी जाय ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि अगर भलाई देखने की तुम्हारी आँखो की शक्ति नष्ट नही हो गई है तो तुम्हे सर्वत्र भलाई दिखलाई देगी। ससार की कोई भी वस्तु एकान्त अवगुणमय नही है। मगर होनी चाहिए दृष्टि भलाई की ओर।

कौवे को पक्षियो मे निकृष्ट समझा जाता है। पर क्या उसमे कोई सद्‌गुण नही है ? जब खाना मिलता है तो वह काँव-काँव करके अपने जाति-भाइयो को भी बुला लेता है। कौवे का यह गुण क्या साधारण है ? आप प्राणी-जगत् के सम्राट् हैं—मनुष्य हैं, परन्तु मनुष्य जाति के प्रति क्या आपके हृदय मे कौवे के बराबर भी सहानुभूति है ? क्या आपने कभी आज तक किसी भूखे को कराहते देख कर भी अपने भोजन मे से कुछ हिस्सा दिया है ? जब दुष्काल पडता है तो आप अपने घर के अन्न-भडार को दुष्काल पीडितो के लिए खोल देते हैं ? या एक के चार वसूल करने की कोशिश करते हैं ? क्या ही अच्छा होता, यदि मनुष्य अपनी जाति-मानवजाति के प्रति कौवे के समान समवेदनाशील होता !

चौपायो मे सूअर सब से निकृष्ट माना जाता है। सूअर को लोगो ने इतना बुरा समझ लिया है कि अगर कोई किसी

को 'सूअर' कह दे तो वह अपना घोर अपमान समझता है, गाली समझता है और बदले मे सौ गालिया सुनाने को तैयार हो जाता है। मगर क्या सूअर मे कोई अच्छाई नही देखी जा सकती? सूअर गाव के आस पास की गदगी को खाकर वायु को एकदम दूषित हो जाने से बचा लेते हैं। मनुष्य गन्दगी फैलाता है और सूअर गंदगी को खाकर सफाई कर देता है। क्या यह उसकी अच्छाई नही है? इस रूप में आपका उससे उपकार नही होता? अगर मनुष्यो के द्वारा फैलाई हुई गन्दगी ज्यो की त्यो पडी सडा करे तो ग्रामीण जनता का जीवन नरक का जीवन बन जाय। दुर्गन्ध के मारे चार दिन निकालना कठिन हो जाय और न जाने कितनी बीमारिया चारो ओर से फूट पड़े। मगर जो दोष दृष्टि है, उन्हे सूअर मे कोई गुण ही नजर नही आता! यह क्या आश्चर्य की बात नही है।

जलचरो मे मछलियो को ले लीजिए। वे निरन्तर जल मे घूम-घूम कर पानी की खराबियो को दूर कर देती है और उसे स्वच्छ कर देती है।

जलाशयो मे नदी को देख कर क्या कोई अच्छाई नहीं सीखी जा सकती? गुणग्राही व्यक्ति उससे अनेक गुण सीख सकता है। नदी निरन्तर कलकल नाद करती हुई अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर होती रहती है, वह क्षण भर के लिए भी कभी थकावट का अनुभव करके विश्राम नही लेती। इसी प्रकार मनुष्य ने अपने जीवन का जो लक्ष्य धर्म मे स्थिर किया हो, उसे उसी की ओर निरन्तर, अविश्रान्त गति से आगे बढ़ते जाना चाहिए और बीच मे नही रुक जाना चाहिए।

नदी अपने स्वामी को अपना जीवन (जीवन का अर्थ जल भी होता है) समर्पित कर देती है, इसी प्रकार मनुष्य भी अपने स्वामी-परमात्मा-के चरणो मे अपना जीवन अर्पित कर दे। जैसे नदी समुद्रमय बन जाती है, उसी तरह मनुष्य भी परमात्ममय बन सकता है।

नदी से और भी कुछ सीखा जा सकता है। वह अपवित्रों के ससर्ग से भी अपवित्र नही बनती, बल्कि उनको भी पवित्र-साफ-स्वच्छ-बना देती है। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि वह अपवित्र आचार-विचार वालो के ससर्ग मे आकर स्वय अपवित्र आचार-विचार वाला न बन जाय, किन्तु अपनी पवित्रता को ज्यो का त्यो सुरक्षित रखता हुआ अपवित्रो को भी पवित्र बना ले। इस प्रकार नदी में भी अनेक गुण है।

इस प्रकार जिसे देखो उसी से कुछ न कुछ अच्छाई लो। उसके गुणो की खोज करो। किसी सम्पत्तिशाली को देखो तो विचार करो—यह धर्म और पुण्य का आचरण करके सम्पत्तिमान् बना है। अतएव धर्म-पुण्य ही सुखदायी है और उसी का आचरण करना चाहिए।

किसी भिखारी पर दृष्टि पड जाय तो सोचो—इसने पहले पापकर्मो का उपार्जन किया है। इसी कारण बेचारे को याचना करके जीवन निर्वाह करना पड़ता है मैं पाप का आचरण करूँगा तो मुझे भी मँगता-भिखारी बनना पडेगा! इस प्रकार विचार करके पाप का त्याग कर दो।

आग अन्धेरे मे उजाला करती है, अन्न को पका देती है

जिससे हम उसे सरलतापूर्वक हजम कर सकते हैं, वह ठड को दूर कर देती है तथा और भी अनेक उपकार करती है। इस भाति उसमे अनेक गुण है।

मेरे कहने का आशय यह न समझ लें कि मैं ससार के समस्त पदार्थों को एकान्त गुणो ही गुणो से परिपूर्ण बतला रहा हूँ। मेरा आशय यह है कि प्रत्येक वस्तु मे गुण की तलाश की जा सकती है और गुणी बनने के लिए उन गुणो की ओर ही मनुष्य की दृष्टि जानी चाहिए।

आप व्याख्यान सुनने आये हैं किस प्रयोजन से ? कुछ गुण लेने के लिए ही तो आए हैं! अगर आपने गुण ले लिया तो आपकी जिन्दगी सुधर जायगी आपका कल्याण होगा। आप ससार-समुद्र से तिर जाएंगे। इसके विपरीत यहाँ आकर भी आप दूसरो के दोष देखते रहे तो याद रखना—

> अन्यस्थाने कृतं पाप, धर्मस्थाने विमुच्यते।
> धर्मस्थाने कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति॥

और-और स्थानो पर किया हुआ पाप धर्मस्थान मे नष्ट होता है, परन्तु धर्मस्थान मे आकर किया हुआ पाप वज्र के लेप के समान हो जाता है। उसका छूटना अत्यन्त कठिन है।

तो अपनी दृष्टि को ही ऐसी बना लो कि उसे दूसरो के गुण ही गुण दिखाई देवे। श्रीकृष्णजी के समान गुणदर्शिनी दृष्टि बना लेने पर आपका कल्याण होगा। दो-चार गुणो से काम

नही चलेगा, आपको अनन्त गुणों का संचय करना होगा। तभी आत्मा कृतकृत्य बनेगी।

अगर आप मे दुर्गुण देखने की आदत बनी रही तो आप अपनी आत्मा को गिरा लेंगे। एक दिन ऐसा आएगा कि आज जिसके दुर्गुण को तुम देखते हो और उस पर हसते हो आप उससे भी बदतर अवगुणी हो जाओगे।

जौक को तो आप जानते ही है न ? उसे गाय के स्तन पर लगा दो तो वह दूध नही पीएगी, खून ही पीएगी। तुम ऐसा न करो। किसी का खून पीने की इच्छा न करो, दूध ही पीओ। जैसे भैसा पानी को गन्दला कर देता है और खराब कर देता है और फिर उसे पीता है, वैसा तुम न करो। तुम बकरी के समान बनो, जो दोनो घुटने टेक कर अधर से निर्मल पानी पीती है। मतलब यह है गन्दगी से बचो और पवित्रता को अपनाओ। तुम्हे प्रत्येक के गुणो से मतलब होना चाहिए अवगुण हैं तो रहे, उनसे तुम्हे प्रयोजन नही।

यह क्रोध करता है, यह मान करता है, यह नालायक झूठ बोलता है, तो भाई, दुनिया डूबने वाली है तो डूबेगी। तुमने उसकी बुराइयो की ओर ध्यान दिया तो तुम्हारा भी दिवाला निकल जायगा। कहा है—

गुणी देख वन्दन करो, अवगुणी देख मध्यस्थ।
दुखी देख करुणा करो, मैत्रीभाव समस्त ॥

गुणवान् को देख कर वन्दन करना, अवगुणी के प्रति

समभाव रखना, दुखीजन को देखकर करुणा करना और उसका दु ख मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह नही कि दुखिया को देख कर नजर फिरा ले और लम्बे-लम्बे कदम रख कर निकल जाय ! देखो, एक बूढे जर्जर शरीर वाले आदमी को देख कर कृष्णजी ने सोचा-यह बेचारा ईंटे उठा रहा है। एक-एक ईंट कब तक उठाता रहेगा ! वे नजर बचाकर वही चले गये। उन्होने स्वय एक ईंट उठाई और बूढे के मकान मे रख दी। उनकी देखा-देखी उनकी सेना ने भी यही किया और बूढे के लिए जो काम अत्यन्त कठिन और कष्टसाध्य था देखते-देखते हो गया ! कृष्णजी चाहते तो स्वय ईंट न उठा कर अपने सिपाहियो को आज्ञा देकर उठवा सकते थे। परन्तु उस हालत मे अनुकम्पा का इतना महत्त्व न बढता। कृष्णजी जानते थे कि धर्म-कार्य नौकरो से नही कराया जाना चाहिए। कहा है—

खेती पाती वीनती, चौथी चले खुजाल।
दान मान सन्मान यह, हाथों-हाथ सँभाल ॥

यह सब काम पराये हाथों से कराये जाने के नही हैं। इन्हे अपने ही हाथो से किया जाता है, तभी वे ठीक तरह पूरे होते हैं। इसीलिए श्रीकृष्णजी ने स्वय ही ईंट उठाई और बूढे के मकान मे रख दी। बडे आदमी जब किसी काम को करने लगते हैं तो छोटे भी उनकी देखा देखी किया करते है। कृष्णजी की सेना ने उनका अनुकरण किया। यही नहीं उनके इस व्यवहार ने परोपकार और सेवा की महत्ता सिपाहियो के हृदय पर अकित कर दी। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग से मनुष्य को कितनी सुविधा मिल जाती है ! लोक में कहावत प्रसिद्ध है—

'सात-पाँच की लाकड़ी, एक जने का बोझ !'

जब भारतवर्ष का विभाजन हुआ और देश हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के रूप मे बट गया, तब आपस मे झगड़ा हुआ मारकाट भी हुई। कितने ही लोग दु खी हुए। वे लूट लिये गए किसी के माँ-बाप मारे गये, किसी का बेटा मारा गया, किसी की पत्नी गायब हो गई ! लोग भाग-भाग कर अपने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए इधर आये। बडी आशा से सहानुभूति पाने की अभिलाषा से वे इधर आए। इधर वालो ने कहा—ओह, तुम इतने दु खी हुए ! और जब उन निराश्रितो ने रहने को आश्रय मागा तो तीन रुपया मासिक भाडे के मकान के पचास रुपया माँगे ! यही करुणा की, ऐसी दया की ! उन पर करुणा की सो तो की ही, किन्तु जो पहले से मकान में रह रहे थे उन्हे भी कह दिया कि या तो किराया बढा दो या मकान खाली कर दो। यह आपकी करुणा का नमूना है !

आज समाज की स्थिति देख कर प्रत्येक विचारक को सताप होता है। आप जानते हैं कि क्या वैश्य समाज में और क्या ब्राह्मण समाज मे, विधवाओ की काफी सख्या है। घर का वायुमण्डल विकार-वासनाओ से परिपूर्ण होता है। विधवाओ का भोजन आदि विशेष प्रकार का नही होता। वे स्वय शिक्षिता नही होती और अधिकांश को सत्सगति या धर्मोपदेश श्रवण करने का अवसर नही मिलता। ऐसी स्थिति मे वे अगर अपने कर्त्तव्य से, धर्म से, डिग जाएँ तो क्या आश्चर्य है ? जब ऐसा प्रसग बन जाता है तो भ्रूणहत्याएँ होती हैं, शिशु-हत्याएँ होती है, या वे महिलाएँ सदा के लिए घर त्याग कर वेश्यावृत्ति अंगीकार कर

लेनी है। ससार मे क्या सभी राजीमतियाँ हैं? सब विजयकुमारियाँ है? नही, ऐसी महिलाएँ कदाचित् एक बार भूल करके फिर चाहे कि हमे आश्रय मिले और आयन्दा भूल नही करेगी, तब भी समाज उन्हे अपनाने को तैयार नही होता। यह सब क्या करुणा के लक्षण है? दीन-दुखियो के प्रति सचमुच दयाभावना हो तो जगह-जगह उत्तम महिलाश्रम बनाए जा सकते है, जहाँ विधवा बहिनो की शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था हो और जहाँ का वातावरण तपस्या और त्याग से परिपूर्ण हो। ऐसे आश्रम में रह कर विधवाएँ अपने जीवन को तो पवित्र बनाएँ ही, समाज के उत्थान मे भी बहुत सहायक हो सकेंगी। उनके सहयोग से महिला जाति मे चेतना, स्फूर्ति एव सुसस्कृति आएगी और इन गुणों के आने पर पुरुष जाति भी निहाल हो जायगी। क्योंकि पुरुषो का जीवन-निर्माण बहुत कुछ महिला वर्ग के ही हाथ में है। जब माता सुसस्कारो से सम्पन्न होगी तो उसकी सन्तान भी वैसी ही होगी। लेकिन यह सब होगा तभी जब आप में करुणा भावना होगी।

भाइयो! बकरो को बचाने के लिए तैयार हो जाते हो, किन्तु अपनी माताओ और बहिनो की रक्षा नही करते, उनकी उपेक्षा करते हो, यह कहाँ तक उचित है? समय बहुत नाजुक है। इसलिए दया करो। विवेक से काम लो। आँखे बन्द करके लकीर मत पीटते रहो। युग धर्म को भी पहचानो। विशेष-विशेष काल मे विशिष्ट कर्त्तव्य आगे आ जाते है। नयी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। उन्हे बुद्धिमत्ता के साथ हल करना चाहिए।

आज आपके देश मे बहुत दुखिया है। उन पर दया

करो। इससे तुम्हारा इहलोक सम्बन्धी भी और परलोक सम्बन्धी भी कल्याण होगा। अगर आपने इस ओर ध्यान न दिया और दुखी मनुष्यों की उपेक्षा करके अपने मजा-मौज मे ही मस्त रहे तो भयानक उथल पुथल होगी और उसका परिणाम तुम्हारे लिए सुखदायी नही होगा।

ससार मे जितने भी प्राणी हैं, उन्हे अपनी आत्मा के समान समझो। भेदभाव मत रक्खो। कदाचित् कोई बालक अनीति से उत्पन्न हुआ है तो वह अनीति उसके माँ-बाप ने की है। पाप किया है तो माँ-बाप ने किया है। उस उत्पन्न होने वाले बच्चे का इसमे क्या दोष है? उसका कोई अपराध नही है! उसे क्यो नष्ट होने देते हो? उसकी रक्षा करो, उसके साथ निर्दयता का व्यवहार मत करो। समभाव रक्खो। कहा भी है:—

विद्याविनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः॥

यह गीता का श्लोक है। यहाँ बतलाया गया है कि जो चराचर प्राणियों को समभाव से देखता है, वही सच्चा पडित है। चाहे ज्ञान और चरित्र से सम्पन्न ब्राह्मण हो, चाहे चाण्डाल हो, गाय हो या कुत्ता हो हाथी हो, या कोई छोटा सा कीट हो, सब पर मध्यस्थभाव रखना ही विवेकशील पुरुष का कर्त्तव्य है।

इस प्रकार का समभाव, करुणा से आता है। जिसके अन्त करण में करुणा की प्रबलता होगी, वह किसी से द्वेष नही करेगा, किसी के दोषो को नही देखेगा। वह सब के गुणो की ओर

दृष्टि रक्खेगा और सब का भला करेगा। अत आप अपने अन्त करण मे करुणा का विमल स्रोत बहाओ और श्रद्धा रक्खो कि दूसरे प्राणियो पर की हुई करुणा वस्तुतः अपनी ही करुणा है। ऐसा करने से आपका कल्याण होगा। आप गुणी बनेंगे। अवगुणो से बच जाएंगे। प्रभु के समीप पहुँचेंगे और भगवान् आदिनाथ को शरण मे पहुँच कर, अन्त मे स्वय ही भगवान् बन जाएंगे।

भविष्यदत्त चरित—

देखो, भविष्यदत्त ने और तिलकसुन्दरी ने पूर्व भव में तापस की सहायता की थी तो आज वह उन दोनो पर प्रसन्न है। दानव ने भविष्यदत्त को पूर्व जन्म का समस्त वृत्तान्त बतलाया। दोनों की अशान्ति मिटी। दोनों साथ-साथ तिलकसुन्दरी के महल मे आये। भविष्यदत्त दानव के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ था, तभी से तिलकसुन्दरी बुरी तरह घबरा रही थी। उसके दिल मे बडी उथलपुथल हो रही थी। भविष्यदत्त के अनिष्ट की आशकाओ से उसके हृदय मे शूल-सा चुभने लगता था। मगर अब दोनो को मित्र की तरह साथ-साथ आते देखा तो उसके आश्चर्य का पार न रहा।

भविष्यदत्त ने तिलकसुन्दरी को भी समस्त वृत्तान्त सुना दिया। तब वह भी सन्तुष्ट और प्रसन्न हुई।

मैंने पहले जो कथन किया है, उसी की पुष्टि इस कथानक से भी होती है। भविष्यदत्त और तिलकसुन्दरी ने अगर तापस

की सहायता न की होती तो आप ही विचार कीजिए की उनकी क्या दशा हुई होती ? इसीलिए समस्त ज्ञानी पुरुषो का कथन है कि करुणा करो, करुणा करो, प्रत्येक प्राणी पर करुणा भाव रक्खो। किसी के साथ वैर-विरोध मत करो। किसी से न उलझो। जितनी तुम्हारी शक्ति है, मन से, तन से और धन से नेकी करो, भलाई करो। नेकी करोगे तो नेक कहलाओगे, भलाई करने से भले बनोगे। दुर्गुणी के साथ भी नेकी का वर्त्ताव करोगे तो वह अपने दुर्गुण छोड देगा और गुणी बन जायगा। अपनी भलाई चाहते हो, ससार मे अपनी कीर्त्ति फैलाना चाहते हो, प्रशसा चाहते हो तो भलाई के रास्ते पर चलो। देखो और सोचो कि मनुष्य का यही कर्त्तव्य है कि वह दूसरो के काम आए। दिन-रात तीन सौ साठ दिन अपने ही स्वार्थ मे लगे रहना और दूसरो के दुःख की उपेक्षा करना मनुष्य का कर्त्तव्य नही है। उच्च श्रेणी के मनुष्य अपने स्वार्थ का त्याग करके भी दूसरो की भलाई करते है। दूर क्यो जाते हो, जवाहरलाल नेहरू को ही देख लो। ऐश्वर्य मे पले थे, राजकुमारो की तरह सुख मे रहे थे ! उन्हे किस चीज की कमी थी ? पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे भारत विख्यात और सम्पन्न पिता के वे पुत्र थे। इग्लेण्ड मे उन्होने शिक्षा पाई। वैरिस्टर होकर देश मे आये। परन्तु, जब उन्होने अनुभव किया कि हमारे देशवासी दुखी और पराधीन है तो समस्त सुखो को लात मार दी। विपुल सम्पत्ति को ठुकरा दिया। पिता और पुत्र दोनो ही देश की सेवा मे जुट गये। पिता का देहान्त हो गया। पत्नी भी देश सेवा करती-करती परलोक की ओर प्रयाण कर गई। पर इस वीर पुरुष की देशसेवा की भावना तनिक भी मन्द नही हुई। गाधीजी ने कहा कि गुलाम देश मे सन्तान उत्पन्न

करना गुलामो की सख्या बढाना है तो फिर उन्होंने विवाह ही नही किया। उन्होने अपने विषय मे सोचने की फुर्सत ही नही मिली ! कितनी ही बार जेलखाने गये न जाने कितने कष्ट सहन किये ! आखिर वही जवाहरलाल आज देश के सर्वेसर्वा बने हुए है। सर्वेसर्वा बनकर, अधिकार पाकर भी क्या वे चैन से बैठे है ? नही, आज वे पहले की अपेक्षा भी अधिक व्यस्त रहते है और देश के उ थान मे लगे हुए हैं।

नेहरूजी के इस त्याग की बदौलत ही लोग उनका आदर करते है। वे जहा कही पहुँच जाते हैं, लाखो आदमी उन्हे देखने और उनकी वाणी सुनने के लिए व्यग्र हो उठते हैं और जय-जयकार के नारे लगाते है। यह उनकी करनी का ही प्रत्यक्ष फल है ! आप प्रतिष्ठा और प्रशसा तो चाहते हैं, परन्तु उसे प्राप्त करने के लिए प्रयत्न नही करना चाहते। बीज बोये बिना फल कैसे मिल सकता है ? और नीम बोकर भी आम किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ?

भाइयो ! अगर भलाई चाहते हो तो भलाई करो, किसी के साथ बुराई मत करो। बुराई करोगे तो अपना ही बुरा कर बैठोगे।

एक फकीर पिछली रात को फेरी लगाता था और कहा करता था—भला कर भला होगा, बुरा कर बुरा होगा। फकीर की यह आवाज एक बुढिया ने सुनी। उसने विचार किया—मैं बुराई करके देखूँ तो सही कि मेरा क्या बुरा होता है ? यह सोच कर उस दिन उसने चार लड्डू बनाये। दो लड्डूओ मे सखिया मिला

दिया और दो यो ही रहने दिये। दूसरे दिन फकीर जब फेरी लगाने आया तो उसने चारो लड्डू उसे दे दिये। फकीर लड्डू लेकर अपने स्थान पर गया। भोजन का समय होने पर उसने दो लड्डू खाने का विचार किया। उसका भाग्य अच्छा था तो सयोगवश विना जहर के लड्डू ही उसके हाथ मे आये। उसने उन्हे खा लिया और रात्रि होने पर सो गया। उसने शेष लड्डू पडे रहने दिये।

अकस्मात् उसी रात्रि मे उसी वुढिया के दो लडके परदेश से लौटे। जब वे शहर के दरवाजे पर पहुचे तो दरवाजा बन्द हो चुका था। वे वापिस गये और उस फकीर के पास पहुँचे। बोले-हम दोनो रात भर यहा विश्राम करना चाहते हैं। फकीर ने उन्हे ठहरा लिया।

दोनो लडके भूखे थे। उन्होने फकीर से कहा—बाबा, हमे भूख लगी है। कुछ खाने को हो तो दो।

फकीर ने कहा—और तो कुछ नही है, दो लड्डू मेरे पास है। उन्हे खाकर काम चला लो।

फकीर ने दोनो लड्डू दोनो भाइयो को दे दिये। दोनो ने एक-एक खाया और सो गये। सखिया का प्रभाव पडा और दोनो सोते ही रह गये। पिछली रात हुई और फकीर फेरी लगाने के लिए जाने को तैयार हुआ तो उसने उन दोनो मुसाफिरो को जगा देना चाहा। मगर वह देख कर हैरान रह गया कि दोनो निर्जीव पड़े है! दोनों नीलाम बोल गये थे। फकीर ने सोचा—गजब हो गया। मगर वह करता क्या? फिर वह नित्य-नियम के

अनुसार फेरी लगाने के लिए चल दिया। आज उसने आवाज मे फर्क कर दिया था। वह कहता था 'भला कर भला हो। कर देखोरे भाई।' लड्डू दिये फकीर को, मर गये दो सिपाई। बुढिया ने आज भी फकीर की आवाज सुनी। उसकी आवाज सुन कर उसका दिल सन्न हो गया ! उसने फकीर को बुलाकर कहा—मेरे दो लडके परदेश गये थे। वे अभी तक लौटे नही है। कही वही तो नही है ?

घबराई हुई बुढिया फकीर के साथ जाकर देखती है और कहती है-हाय, यही मेरे दोनो लडके हैं ! बुढिया बहुत रोई, पश्चात्ताप करने लगी और कहने लगी—मैंने तो जाँचने के लिए ही ऐसा किया था, मगर प्रत्यक्ष मे ही फल मिल गया !

कहने का आशय यह है कि जैसा करोगे वैसा भरोगे। नेकी करोगे तो नेक फल पाओगे और बदी करोगे तो बदी तुम्हारे सामने आएगी। पूर्वभव मे किये हुए भले काम का बदला भविष्यदत्त और तिलकसुन्दरी को मिल गया। वह दानव दोनो पर प्रसन्न हुआ।

तिलकसुन्दरी के पास पहुच कर दानव ने कहा – तिलक-सुन्दरी ! मैंने तुम्हे क्यो बचने दिया और तुम्हारे सिवाय सबके प्राण क्यो ले लिये, यह रहस्य अब तुम समझ गई हो। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय मे किसी प्रकार की दुर्भावना नही है। तुमने मेरा उपकार किया है तो मैं भी तुम्हारा उपकार करना चाहता हूँ। मैं तुम दोनो की सेवा करने को तैयार हूँ। बोलो–मैं क्या करूँ ? मेरी पहली इच्छा यह है कि तुम दोनो का विवाह हो जाय तो

उत्तम होगा । दोनो विवाह के योग्य हो । उम्र के लिहाज से भी और गुणो के लिहाज से भी । दोनो एक दूसरे के लिए सुपात्र हो । विवाह कर लेने से दोनों का एकाकीपन दूर हो जायगा । एक दूसरे के धर्म पालन मे सहायक हो सकेगी । दोनो की अपूर्णता दूर हो जायगी ।

फिर दानव ने भविष्यदत्त की ओर उन्मुख होकर कहा—कुमार ! यह कन्या आपके लिए उपस्थित है मैं अपनी ओर से तुम्हे भेट करता हूँ । इसे स्वीकार करो । इसको अपनाने में आपको किसी प्रकार का सकोच नही होना चाहिए ।

तिलकसुन्दरी के साथ विवाह करने मे जो अडचन थी, वह दूर हो गई । कन्यादान करने वाला जब मौजूद है तो फिर दूसरी बाधा ही क्या थी ? भविष्यदत्त ने विवाह करना स्वीकार कर लिया । देवता ने अपनी विक्रिया से विवाह के लिए अत्यन्त मनोहर मण्डप की रचना की । उसमे मखमल का फर्श बनाया और मोतियो की झालरे लगाई । भला, जहा देवता स्वय सजावट करने वाला हो वहा किस वस्तु की कमी रह सकती है ? और उस दिव्य रचना का वर्णन भी पूरी तरह कैसे किया जा सकता है ?

वर और वधू दोनो को अत्यन्त सुन्दर और मूल्यवान् जरी के वस्त्र पहनाए गए । नाना प्रकार के आभूषणो से आभूषित कर दिया । दोनो का सौन्दर्य दमक उठा । आखिर हुलसते हृदय से तिलकसुन्दरी ने भविष्यदत्त के गले मे वरमाला डाली और भविष्यदत्त ने तिलकसुन्दरी का पाणिग्रहण किया । देवता

ने सारा तिलकपुर दहेज मे दे दिया और कहा—अब मैं जाता हूँ। जब कभी मुझे स्मरण करोगे, उसी समय मै उपस्थित हो जाऊँगा। तुम दोनो आनन्द मे रहना। एक दूसरे के सहायक और पूरक बनना। भविष्यदत्त ! तुम्हे आज एक नई 'शक्ति' प्राप्त हुई है और तिलकसुन्दरी ! तुम्हे नया 'जीवन' मिला है। दोनों अपनी-अपनी वस्तु का सदुपयोग करना। दाम्पत्य जीवन विषय-वासनाओ का पोषण करने के लिए नही है। वह गृहस्थधर्म का पालन करने के लिए है। इस बात को ध्यान मे रख कर अपने-अपने धर्म का पालन करना।

इतना कह कर देव चला गया। दोनो पति-पत्नी के रूप मे आनन्दपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगे। उन्हे देवलोक सरीखे सुख प्राप्त थे। किसी चीज की कमी नही थी।

भाइयो ! किसी कवि ने कहा है—'दुःखस्यानन्तरं सौख्यम्' अर्थात् कष्ट सहन करने के बाद सुख की प्राप्ति होती है। जो लोग बिना घबराहट के, धैर्यपूर्वक कष्ट सहन कर लेते है, उन्हे सुख अवश्य प्राप्त होता है। दुःख भोगने के बाद मिले हुए सुख मे स्वाद होता है। जो भूख से पीडित हो उसे भोजन मिल जाय तो उसके सुख की सीमा नही रहती इसके विपरीत जिसका पेट भरा हो जो भूख की व्याकुलता का अनुभव न कर रहा हो, उसके सामने उत्तम से उत्तम भोजन भी रख दिया जाय तो उसे अधिक आनन्द का अनुभव नही होगा। अतएव सुख का पूरा मजा लूटने के लिए पहले दुःख भोग लेना उपयोगी होता है। भविष्यदत्त भी कठिनाइयाँ झेल चुका था और तिलकसुन्दरी भी मुसीबत उठा चुकी थी, इस कारण नवीन परिस्थिति मे दोनो सन्तुष्ट और सुखी हुए।

उधर भविष्यदत्त की माता कमलश्री पुत्र वियोग की वेदना से व्याकुल हो रही थी। वह कभी रोने लगती है और कभी-कभी अपने मन को सन्तुष्ट करने के लिए मकान की छत पर जाकर वृक्ष पर बैठे हुए कौवे से कहती है—मेरा पुत्र आनन्द में हो तो उड जाना। कभी-कभी नीचे आकर राह चलते हुए पथिको से पूछने लगती है—कही मेरे भविष्यदत्त को तो नही देखा है ? इस प्रकार वह उन्मत्ता-सी होकर चिन्ता मे मग्न बनी रहती है। उसे खाना-पीना, सोना, बातें करना, कुछ भी नही सुहाता। ऐसा लगता है कि कौन-सा क्षण हो और मैं अपने बेटे को छाती से लगाऊँ और अपने कलेजे को ठंडा करूँ।

इस प्रकार की व्यग्र और विक्षिप्त-सी दशा देख कर कलमश्री की माता ने उसे बहुत समझाया। फिर भी उसके चित्त पर कुछ प्रभाव नही पडा। वह ज्यो की त्यो बेचैन बनी रही। तब उसकी माता ने कहा—यहाँ सुव्रता नाम की साध्वी पधारी हुई है। तू उनके पास जा और उनकी सेवा कर। उनकी सेवा करने से तुझे शान्ति मिलेगी।

कमलश्री साध्वीजी के समीप गई। उसने यथाविधि वन्दना करके अपने हृदय की समग्र व्यथा उनके समक्ष निवेदन की। साध्वीजी ने कहा—बाई ! चिन्ता करना व्यर्थ है। अगर तुम्हारे पुत्र के शुभ कर्मो का उदय है तो वह जहा कही भी होगा, सुख मे ही होगा तुम उससे दूर हो तो क्या हुआ, उसके कर्म तो उसके पास ही है। वे अपना फल देते होगे। कदाचित् तुम पास मे होओ तो भी क्या उसे कर्म-फल से बचा सकती हो ? जिसने तत्त्व के मर्म को समझ लिया हो, उसे इस प्रकार चिन्ता नही

करनी चाहिए । चिन्ता करने से कोई शुभ परिणाम नही निकलता । हा, यह एक प्रकार का आर्त्तध्यान है और आर्त्तध्यान पापमय ध्यान है । आर्त्तध्यान करके तुम व्यर्थ अशुभ कर्मो का वन्ध कर रही हो ।

बहिन ! तुम्हारी चिन्ता का आधार भी तो कुछ नही है । तुम्हारा पुत्र प्रसन्नता-पूर्वक व्यापार के लिए परदेश गया है । वैश्यो का यह कर्म ही है और बहुतो के पुत्र परदेश जाया करते हैं और सकुशल लौट भी आते है । फिर अकारण ही तुम क्यो चिन्ता कर रही हो ? तुम्हारी चिन्ता का एक ही कारण समझ मे आता है और वह यही कि तुम्हे अपने पुत्र के प्रति अत्यधिक मोह है ।

मोह का आधिक्य अपने प्रेम पात्र के पति नाना प्रकार की अनिष्ट कल्पनाओ को जन्म देता है । मोह की अधिकता के कारण चित्त मे सदैव अशान्ति रहती है । इसीलिए तो ज्ञानी पुरुषो का आदेश और उपदेश है कि मोह को जीतो । जितने-जितने अशो मे मोह-ममता क्षीण होती चली जायगी, उतने ही उतने अशों में जीवन शक्तिमय और सुखमय बनता जायगा । इस प्रकार न केवल पारलौकिक सुधार के लिए ही मोह को जीतना उपयोगी है, अपितु जीवन की सुख-शान्ति के लिए भी आवश्यक है ।

साध्वीजी ने कमलश्री से कहा-बहिन ! तुम्हारा मोह ही तुम्हे सता रहा है । अन्यथा इस बेचैनी और व्यग्रता का कोई कारण नही है । धैर्य धारण करो । परमात्मा का भजन करो । धर्म-पुण्य करो । जो कुछ लाभ होगा, इसी से होगा । मोहजन्य व्याकुलता से तुम्ही सोचो, क्या लाभ हो सकता है ?

कमलश्री ने विनम्र भाव से कहा—महासतीजी ! आपका सदुपदेश मुझे शिरोधार्य है । उसे सुन कर मैं धन्य हुई । जब भविष्यदत्त यहाँ मौजूद था, मैं अपना अधिकाश समय आपके उपदेश के अनुसार ही व्यतीत करती थी । पर जब से वह मुझसे बिछुड़ा है, मेरे चित्त मे बराबर अशान्ति बनी रहती है । क्षण भर भी मैं निश्चिन्त नही रह पाती । निस्सन्देह मोह दुःख का कारण है, परन्तु जान-बूझ कर भी मैं उसे दबा नही पाती । भविष्यदत्त मेरा इकलौता पुत्र है, और एक मात्र वही मेरे जीवन का आधार है । जब तक उसकी कुशल-क्षेम का समाचार न मिल जाय, हृदय मानता नही है । इस विवशता के लिए मैं क्या करूँ ? आप मुझे पथ प्रदर्शित कीजिए ।

साध्वी सुव्रता ने सोचा कमलश्री का आर्त्तध्यान मेरे गुरुजी ही मिटा सकते हैं । अतएव उन्होने कमलश्री से कहा—बहिन ! मुझे तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ही प्राप्त है, मैं तुम्हारी दुश्चिन्ता को दूर नही कर सकती । अलबत्ता, मेरे गुरुजी अवधि-ज्ञान के धारक है । उनके पास चलो । वे तुम्हे धैर्य बँधा सकेंगे ।

कमलश्री, सुव्रता साध्वीजी के साथ मुनिराज के पास पहुँची । मुनिराज को विनयपूर्वक वन्दना और नमस्कार करके उसने अपने हृदय की व्यथा निवेदन की । कहा--गुरुदेव ! आप समर्थ है । अनुग्रह करके मेरी वेदना दूर कीजिए ।

मुनिराज ने अवधिज्ञान का प्रयोग करके भविष्यदत्त सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त जान लिया । फिर उन्होने कहा—बहिन ! तू क्यों व्यर्थ चिन्ता करके व्यग्र हो रही है ? तेरा पुत्र भविष्यदत्त

सकुशल है, सानन्द है और वह एक नगर का राजा बन गया है। उसका विवाह हो गया है। वह अपनी पत्नी के साथ सुख मे समय व्यतीत कर रहा है। वह जल्दी ही अपनी पत्नी के साथ लौटेगा और इस हस्तिनापुर नगर का राजा बनेगा।'

बहिन! अपने विषय मे भी शोक मत कर। पूर्वकृत अशुभ कर्मो के उदय से तू अपने पति के द्वारा उपेक्षित हुई और त्यागी गई है। अब शीघ्र ही तेरे अशुभ कर्म का अन्त आने वाला है। तेरे पति पुन तुझसे प्रेम करेंगे और अपने किये पर पश्चात्ताप प्रकट करके आदर पूर्वक तुझे अपनाएँगे। अतएव तू धैर्य रखकर धर्म का आचरण कर।

गुरुजी के कथन को सुनकर कमलश्री को सान्त्वना मिली। उसकी समस्त चिन्ताएँ दूर हो गई। उसने उसी दिन से श्राविका के बारह व्रत अगीकार कर लिये और आयबिल की तपस्या करने लगी। गुरुजी को हर्षित हृदय से वन्दना करके सुव्रता साध्वी अपने स्थान पर और कमलश्री अपने स्थान पर चली गई। वह शान्तचित्त से फिर धर्मध्यान करने मे लीन हो गई। इस बार उसने और भी अधिक उदारता के साथ दान देना आरम्भ कर दिया, यहा तक कि अपने आभूषणो का भी दान देने मे सकोच नही करती थी।

उधर कमलश्री की सौत बन्धुमती भी अपने पुत्र बन्धुदत्त के लिए चिन्ताशील है। वह भी पुत्र के लिए रोती है और अपने पति धनसार से उसके विषय मे पूछती है। वह कहती है–जिस दिन मेरा पुत्र लौटकर आयगा, उस दिन को मैं धन्य समझूँगी।

भाइयों ! चरित इसी उद्देश्य से पढ़ा या सुनाया जाता है, जिससे आप अपने जीवन के मार्ग को तलाश करलें। पुण्य और पाप के फल को समझ सकें और पुण्य का आचरण करने की प्रेरणा प्राप्त कर सकें। आपने इस चरित को सुनकर पुण्य में प्रवृत्ति की और पाप का, बुराइयों का, अवगुणों का परित्याग कर दिया तो आपका कल्याण होगा ! आनन्द ही आनन्द होगा।

२०-१०-४८ }
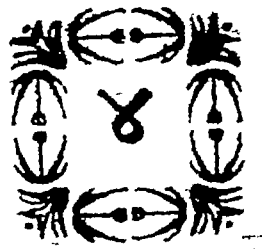
उत्थान की श्रेणियाँ

स्तुति :

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा—
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा—
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! भक्ति के वशीभूत होकर देवता आपको नमस्कार करते हैं । उनके मस्तक पर मुकुट होता है और उस मुकुट मे लगी

हुई मणियो मे चमक होती है। जब देवता प्रभु के चरणों पर अपना मस्तक झुकाते है तो भगवान् के चरणो के नाखूनों की कान्ति उन मणियो पर पडती है। नखो मे ऐसी प्रबल कान्ति है कि उससे देवताओ के मुकुट की वह मणिया भी चमक उठती हैं। इस प्रकार भगवान् का चरणयुगल अपनी अपूर्व कान्ति से देव-मुकुटो की मणियों को भी प्रकाशमान कर देता है।

भगवान् के चरणो की काति द्रव्य प्रकाशमय तो है ही उन मे भावप्रकाश भी है। प्रभु के पुनीत चरणो मे पापो के अन्धकार को भी नष्ट कर देने की शक्ति है। ससार के समस्त प्रकाशो से सिर्फ बाह्य अधकार का ही विनाश होता है, किन्तु जिनेन्द्र देव के चरणो मे आन्तरिक अन्धकार का अन्त कर देने का भी अनन्त बल है।

भगवान् के चरण संसार रूपी असीम सागर में पडे हुए जीवो के लिए एक मात्र आलम्बन रूप है, नौका के समान है। समुद्र मे गिरा हुआ पुरुष कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो, बिना आलम्बन के वह तट पर नही आ सकता। उसे नौका की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार जन्म-मरण रूप ससार के किनारे पहुचने के लिए जिनेन्द्र भगवान् के चरणो का आश्रय लेना भी अनिवार्य है। उनका आश्रय लिये बिना भव-सागर के पार पहुचना सम्भव नही है। ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं उनको ही हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! वीतराग जिनेन्द्र देव जगत् का उद्धार करने वाले हैं, जगत् को तारने वाले हैं। वे ही जगत् के आलम्बनभूत

है। आपने देखा होगा कि कई कूपों मे जजीरे लटकी रहती हैं। वह इसीलिए कि कदाचित् कोई कूप मे गिर पडे तो उसके लिए वह सहारे का काम दे। उनको पकड कर कोई भी अपनी रक्षा कर सकता है। वे जजीरे मृत्यु से बचाने वाली होती है।

इसी प्रकार जन्म-मरण रूप चतुर्गतिमय इस संसार में पड़े हुए प्राणियो के लिए भगवान् ही एक मात्र आधार है। उनकी शरण मे जो जाता है, उसका उद्धार हो जाता है। अतएव भगवान् को ही सर्वोपरि समझ कर उनकी ही शरण गहो। एकनिष्ठ भाव से भगवान् की शरण ग्रहण करने के लिए सासारिक पदार्थों से मोह हटा लेने की आवश्यकता होती है। जब ससार के समस्त पदार्थों को निस्सार समझ कर आप मोह हटा लेंगे, तभी परमात्मा के प्रति आपकी सच्ची प्रीति हो सकेगी। जैसे एक म्यान मे दो तलवारें नही रह सकतीं, उसी प्रकार भगवत्-प्रीति और सासारिक आसक्ति दोनो एक ही अन्त.करण मे नही रह सकती। जो मोह मे फँस जायगा, वह भगवान को भूल जायगा। मोह जीव को तो मोह के प्रभाव से करने योग्य कार्य का विचार ही नही होता। किसी का मोह कुछ अशो मे कम हुआ तो वह विचार करता है, मगर अग्रसर नही हो पाता। कोई अग्रसर होता है तो चार कदम आगे बढ कर रुक जाता है और कोई-कोई और आगे बढ कर फिर पीछे लौट आता है। एक बार अग्रसर होकर निरन्तर आगे ही आगे बढ़ने वाले भाग्यशाली विरले ही होते हैं।

इन नाना प्रकार के जीवो को शास्त्रीय भाषा मे अलग-

अलग नाम दिये गये हैं। मोह की प्रबलता के प्रभाव से जो कर्त्तव्य का विचार ही नही करता, वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। जो विचार करता है किन्तु अग्रसर नही हो पाता, उसे अविरत सम्यग्दृष्टि कहते है। जो चार कदम चल कर ही रुक जाता है, उसे देशविरत श्रावक कहा जा सकता है। जो आगे बढ कर लौट पड़ता है उसे 'पडिवाई' या 'पच्छाकड' कहना चाहिए। और जो आगे बढ़ कर अग्रसर ही होता चला जाता है, वह साधनानिरत भाग्यशाली पुरुष साधु कहलाता है।

साधु-अवस्था की भी नौ श्रेणियाँ हैं। छठी श्रेणी से लेकर चौदहवी श्रेणी तक साधु अवस्था कही जा सकती है। तेरहवी और चौदहवी श्रेणी साधुत्व के परिपाक की श्रेणियाँ है। बारहवी श्रेणी के अन्तिम समय मे साधुता की चरम स्थिति आ जाती है और तेरहवी श्रेणी मे देव-अवस्था अथवा भगवत्दशा प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार कुल चौदह श्रेणियाँ है। इन्हे गुण-स्थान कहते है। चौदह गुणस्थानो से अतीत होने पर अशरीर मुक्त दशा की प्राप्ति होती है। साधारणतया ग्यारहवी श्रेणी तक से नीचे गिर जाने की सम्भावना बनी रहती है। बारहवी श्रेणी मे कदम रखने पर आत्मा मे इतनी शक्ति आ जाती है कि फिर नीचे गिरने की कतई सम्भावना नही रह जाती। बस, यही अवस्था प्राप्त करना जीवन का चरम लक्ष्य है।

जैसे वर्त्तमान कालीन शिक्षा पद्धति के अनुसार पांचवी कक्षा तक प्राथमिक शिक्षा (प्राइमरी एज्यूकेशन) समझी जाती है। इसके बाद पाच वर्ष तक की अर्थात् दसवी कक्षा तक की शिक्षा माध्यमिक शिक्षा मानी जाती है। माध्यमिक शिक्षा के

पश्चात् चार वर्ष तक की शिक्षा प्राप्त कर दो श्रेणियाँ उत्तीर्ण कर लेने पर विद्यार्थी को स्नातक की पदवी प्राप्त होती है। तब वह 'ग्रेज्यूएट' कहलाता है। ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास का खयाल करके श्रेणियो का यह वर्गीकरण किया गया है। इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् ने आध्यात्मिक शक्तियो के विकास की भूमिका पर शास्त्रो मे चौदह श्रेणियाँ गुणस्थान—बतलाये हैं। प्रारम्भ के पाँच गुणस्थान—देशविरति नामक पाचवे गुणस्थान पर्यन्त—प्राथमिक या प्राइमरी विकास होता है। छठे गुणस्थान से दसवे गुणस्थान तक मध्यम श्रेणी का आत्मिक विकास होता है। यहा तक पहुँच जाने पर भी आत्मा स्नातक नही बन पाता। जब वह इण्टर और बी. ए. की तरह दो श्रेणियो को और उत्तीर्ण करता है अर्थात् बारहवे गुणस्थान मे आता है। तो स्नातक बन जाता है। चौदहवे गुणस्थान मे आत्मिक विकास की परिपूर्णता हो जाती है।

बी ए हो जाने के पश्चात् एम ए बनने के लिए एक श्रेणी और उत्तीर्ण करना अपेक्षित होता है। इसी प्रकार परमात्म-दशा प्राप्त करने के लिए यहा भी एक गुणस्थान और चढना आवश्यक होता है। फिर जैसे विद्यार्थी 'पोस्ट ग्रेज्यूएट' बन जाता है, उसी प्रकार आत्मा अर्हन्त बन जाता है। एम. ए करने के बाद जैसे किसी विषय का डाक्टर बनने के लिए और अधिक अभ्यास करके विशेष ज्ञान प्राप्त करना पडता है, उसी प्रकार सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए चार अघातिक कर्मो का नाश करके आध्यात्मिक विकास करना होता है।

जैसे कॉलेज के अन्तिम शिक्षण तक बहुत कम विद्यार्थी

पहुँच पाते हैं, अधिकाश प्राइमरी शिक्षा और कोई माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करके रह जाते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी विरले ही महात्मा अन्तिम श्रेणी तक पहुंच पाते हैं।

भाइयो! आपने स्कूल मे तो नाम लिखाया होगा, पर भगवान् महावीर के इस स्कूल मे भी नाम लिखाओ। इसमें नाम लिखाये बिना निस्तार नही होगा। अरे, अधिक नही तो कम से कम प्राइमरी शिक्षा तो ले लो! पाँचवी श्रेणी तक का अभ्यास तो कर ही लो! श्रावक दर्जा तो हासिल कर लो! भगवान् ने श्रावको के लिए देशचारित्र का उपदेश दिया है। अधिक न बन सके तो इतना तो प्राप्त करके जीवन को उत्तम बना लो!

ससार के अधिकाश प्राणी अभी तक प्रथम श्रेणी मे पड़े हुए हैं। सत्य को सत्य समझना और सत्य के रूप में ही उस पर विश्वास लाना, प्रथम श्रेणी से आगे बढना है। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य समझने के कारण प्रथम श्रेणी बनी हुई है। मुक्ति प्राप्त करने तक की चौदह श्रेणियाँ है। उनके नाम है-(१) मिथ्यात्व (२ सास्वादन (३) मिश्र (४) अविरत सम्यग्दृष्टि (५) देशविरति (६) प्रमत्तसयत (७) अप्रमत्तसंयत (८) अपूर्व करण (९) अनिवृत्तिबादर (१०) सूक्ष्मसम्पराय (११) उपशान्तमोह (१२) क्षीणमोह (१३) सयोग केवली (१४) अयोग केवली।

जैनशास्त्रो मे इन चौदह गुणस्थानो या पंक्तियो का विशद और सूक्ष्म विवेचन है। इस विषय को लेकर न जाने कितने विशाल ग्रन्थ लिखे गये हैं। महान् आचार्यों ने इनकी विवेचना की है। गुणस्थानो का ज्ञान परम आध्यात्मिक ज्ञान है। गम्भीरता

और रहस्य के साथ जो इस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, उसे इसी जीवन मे अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है।

इन पर विवेचन करने का अभी अवकाश नही है, तथापि आपको जब समय हो तो थोडा-थोडा ही सही, इनका ज्ञान अवश्य प्राप्त करो। अभी तो सिर्फ इतना ही कहना है कि जब आत्मा इन चौदह पंक्तियों को पार कर जाता है जब संसार से अर्थात् जन्म-मरण से अतीत हो जाता है। फिर उसे आवागमन नही करना पडता है!

सब जीवों मे आत्मा समान रूप से विद्यमान है। मगर जैसा कि अभी कहा गया है, कोई प्राथमिक कोई माध्यमिक और कोई उच्च श्रेणी की शिक्षा प्राप्त करता है, उसी प्रकार कोई कितनी और कोई कितनी श्रेणियो को पार करता है।

प्रथम श्रेणी मे भी तीन भेद होते है—(१) अणाइया अपज्जवसिया (२) अणाइया सपज्जवसिया और (३) साइया सपज्जवसिया।

इनमे से जो जीव पहले भेद के अन्तर्गत हैं, अर्थात् जिनका मिथ्यात्व अनादि और अनन्त है, उनकी पहली श्रेणी न कभी छूटी है, न छूटती है और न छूटेगी। इस श्रेणी के जीव को वन्ध्या स्त्री के समान समझना चाहिए, जिसके पुत्र न हुआ है, न होता है और न होगा ही। वन्ध्या स्त्री मर कर कदाचित् अवन्ध्या अवस्था प्राप्त कर सकती है और करती भी है, मगर अनादि-अनन्त मिथ्यात्व वाला प्रथमश्रेणी से कदापि छुटकारा नही पाता। वह अनन्त भविष्य मे भी छुटकारा नही पाएगा। ऐसे जीवो की

सख्या कम नही है। अनन्त जीव इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं।

दूसरा भेद अणाइया सपज्जवसिया है। अर्थात् कोई-कोई जीव ऐसे हैं जो अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि है, किन्तु कभी न कभी उनके मिथ्यात्व का अन्त अवश्य आ जायगा। मान लीजिए, कोई दो वर्ष की बालिका है। उसके अभी बालक नही हुआ है, किन्तु जब योग्य उम्र की होगी तो उसके बालक होगा। उसे वन्ध्या नही कह सकते। इसी प्रकार काललब्धि न आने के कारण जिन्हे सम्यक्त्व की प्राप्ति नही हुई है, किन्तु भविष्य मे होने वाली है, वे अणाइया सपज्जवसिया कहलाते हैं।

तीसरा भेद साइया सपज्जवसिया है। इसका आशय यह है कि किन्ही जीवो का मिथ्यात्व सादि और सान्त है। अर्थात् वे जीव पहले कभी मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्त्व प्राप्त कर चुके थे, किन्तु मोहनीय कर्म ने जोर मारा और सम्यक्त्व उत्पन्न होकर नष्ट हो गया। कुछ काल के बाद उन्हे फिर सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी और मिथ्यात्व का अन्त आ जायगा। इस प्रकार उनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अन्त भी है।

यहाँ प्रासंगिक रूप से यह बतला देना आवश्यक है कि सम्यक्त्व के विभिन्न अपेक्षाओ से अनेक भेद होते हैं। मुख्य रूप से तीन भेद हैं। उनमे से मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों के—मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, समकित मोहनीय तथा अनंतानुबन्धी क्रोध मान, माया, लोभ—के क्षय से जो समकित प्राप्त है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते है। यह सादि अनत होता है। अर्थात् एक बार उत्पन्न होकर कभी नष्ट नही होता और अत्यन्त निर्मल

होता है। इसके विपरीत मोहनीय कर्म की इन्ही सातों प्रकृतियों के उपशम से उत्पन्न होने वाला सम्यक्त्व औपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह सम्यक्त्व जरा-सी देर-अन्तर्मुहूर्त्त तक ही ठहरता है। मगर इसके होने पर भी जीव परीतससारी हो जाता है और अर्द्धपुद्‌गल परावर्त्तन के भीतर-भीतर फिर सम्यक्त्व प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य यह है कि पहली श्रेणी बडी कठिनाई से पार करनी पड़ती है। बहुत-से जीव तो उसे पार कर ही नही पाते। वे अनादिकाल से अब तक कभी सत्य बात को समझे नही हैं, समझते भी नही है और समझेंगे भी नही। ऐसे जीवो की प्रकृति ऐसी होती है कि गवेड़े की पूंछ पकड ली सो बस पकड़ ली। पकडने के बाद फिर उसे छोडेंगे नही। जिस एकान्त बात को पकड कर बैठ गया सो बैठ गया। चाहे दुनिया उथलपुथल हो जाय, मगर वह अपनी बात को नही छोडेगा। चाहे जितने तीर्थङ्कर और चाहे जितने साधु उसे ज्ञान सुनावे, उस पर कोई असर नही होता, वह अपनी श्रद्धा को बदलने के लिए तैयार नही होता। उसकी श्रद्धा सदाकाल विपरीत ही रहती है।

आप जानते होंगे, एक प्रकार के मूंग होते है, जिन्हे कोरडा मूंग कहते हैं। उन्हे बो दिया जाय तो वे उग आते है, मगर उन्हे सिझोना चाहे—पकाना चाहोगे—तो ऐसा होना सम्भव नही है। आपके घर मे जितनी लकड़ियाँ मौजूद है, सबको क्रमश. चूल्हे मे फूंक दीजिए, टाल का टाल खरीद कर आग मे झोक दीजिए और उस मूंग को उबालने का प्रयत्न कीजिए, मगर वह नही उबलेगा, नही पकेगा, ज्यो का त्यो रहेगा।

किसी जगह एक बूढा मरने को हुआ। उसके लड़के ने पूछा—आप क्यो तडफ रहे है ? आपका दिल किसमे अटका हुआ है ?

बूढा बोला—बेटा ! मेरी यह सिखावन है कि सुबह-सुबह दुकान पर जो ग्राहक आ जाय, उसे महगा या सस्ता जैसा भी हो, माल अवश्य बेच देना।

लड़के ने कहा—पिताजी ! स्वीकार है।

आखिर बाप मर गया। उसका अन्तिम सस्कार कर दिया गया। उसके यहाँ अनाज की दुकान थी। एक दिन लड़का सुबह ही सुबह टोकरे भर कर अनाज घर मे से बाहर दुकान में लाया। वह यह काम कर ही रहा था कि इतने में एक गधा आ गया। वह अनाज मे मुँह डालने को ही था कि वह लडका भीतर से बाहर निकला। गधा गधा कहलाता है, फिर भी अक्ल तो उसमें भी होती है। अपनी भलाई-बुराई को एक हद तक वह भी समझ लेता है। तो जब लड़का बाहर निकला तो गधे ने समझा कि यह मुझे मारने को आया है, अतएव वह अनाज खाना छोड कर चला जाने लगा।

लडके को अपने पिता का अन्तिम उपदेश याद आ गया। सबसे पहले आने वाले ग्राहक को मँहगा-सस्ता जैसा भी हो बेच ही देना चाहिए। यह याद आते ही लड़के ने कहा—अजी, आप जाते क्यो है ? ठहरिये। आपको जो भाव चाहिए, उसी भाव दे दूंगा।

मगर गधे ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया । वह चला ही जाता रहा । तब उस लड़के ने गधे की पूंछ पकड ली । कहा- भाईजान ! जाते कहाँ हो ? जाना ही था तो आये क्यों ? आए हो तो जाते हो क्यो ?

पूंछ पकडी जाने के कारण गधा घबराया और भागने लगा और लाते मारने लगा । मगर उस लडके ने लातो की भी परवाह नही की । कई लोग हँसने लगे, कई आश्चर्य करने लगे, कई देखते ही रह गए और किसी-किसी ने पूछा कि भाई, बात क्या है ?

लड़के ने कहा मेरे पिताजी कह गये है कि पहले ग्राहक को खाली मत जाने देना !

लोगों ने समझाया—भलेमानुस ! यह कौन-सा ग्राहक है ? अरे, तेरा सिर फूट जायगा, आँखे फूट जाएंगी न !

मगर उस लडके ने किसी की नही सुनी । आखिर लोगो ने जबर्दस्ती पकड़ कर उसे छुडाया और घर पर लाये । उसे समझाया गया—मूर्ख कही के ! तेरे बाप ने जो बात कही थी, वह तो मनुष्य के सम्बन्ध मे कही थी, खरीददार के लिए थी । गधा क्या अनाज खरीदने आया था ?

मगर लडका उन पकड कर लाने वालो पर लाल-पीला हो रहा था । कहता था—तुम सब मेरा अनिष्ट चाहते हो मेरी भलाई नही देखना चाहते । तुम्हे बीच मे पड़ने की क्या जरूरत थी ?

तो भाइयो ! संसार में ऐसे भी अनन्त जीव हैं जो सत्य और हितकर बात को किसी भी अवस्था मे स्वीकार नही करते हैं और कदाचित् करते है तो उलटी ही समझ के साथ करते हैं । जैसे इस लडके ने अपने बाप के आशय को अन्यथा ही समझा और सही समझाने वालो की बात नही सुनी, नही समझी और नही मानी, इसी प्रकार अनादि-अनन्त मिथ्या दृष्टि ज्ञानी जनो की सत्य बात को स्वीकार नही करता, उस पर श्रद्धा नही करता ।

बहुत-से लोग ऐसे मिलेंगे जो कहते है-कोई कुछ भी कहे, हम तो अपने बाप-दादाओ से चली आ रही मर्यादा को नहीं छोड सकते ! यह परम्परा तो हमारे बडेरों से चली आ रही है ! हमारे पुरखा जो करते आ रहे हैं, वही हम भी करेंगे। ऐसे लोगो को विवेकहीन समझना चाहिए। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह जब कोई काम करने लगे तो उसके गुण-अवगुण की समीक्षा कर ले उसे अपने विवेक की कसौटी पर कस कर परख ले । हितकारी हो तो करे और अहितकारी हो तो न करे। पहले से चली आ रही प्रत्येक परम्परा अच्छी ही होती है, ऐसा एकान्त निश्चय कर लेना उचित नही है और बुरी ही होती है, ऐसा भी नही कहा जा सकता। इस विषय मे बहुत-सी बाते विचारने योग्य होती हैं ।

आपके पूर्वजो ने जो परम्पराएं चालू की थी, उनसे पहले भी तो कोई न कोई परम्पराएं चली आ रही होगी। आखिर आपके पूर्वजो के भी तो पूर्वज थे ही। यह तो नही है कि आपके पूर्वज तो थे, मगर आपके पूर्वजों के पूर्वज नही रहे हो ! फिर भी आपके पूर्वजो ने अपने पूर्वजो के द्वारा

चलाई हुई परम्पराओ मे आवश्यकता के अनुसार फेरफार किया है। कोई भी परम्परा आपका रीतिरिवाज-अनादि काल से नही चला आ रहा है। वह किसी न किसी समय आरम्भ हुआ है। तो जब कभी वह आरम्भ हुआ, पहले के रिवाज को मिटा कर ही तो आरम्भ हुआ है! ऐसी अवस्था में आप कोई नयी परम्परा आज क्यो नही आरम्भ कर सकते ? आपके पूर्वजो ने अपने विवेक का सदुपयोग करके, उस समय के अनुरूप परम्परा चलाई, और आप अपने पूर्वजों का ही अनुकरण करना चाहते हैं, फिर आप अपने समय के अनुरूप हितकर परम्परा कायम करने मे क्यो उनका अनुकरण नही करते ?

आप सोचते है कि हमारे पूर्वज बहुत बुद्धिमान् और विवेकशाली थे, अत उनकी परम्परा मे परिवर्त्तन करना उचित नही है। पर यह विचार करते समय आप दो बाते भूल जाते हैं। पहली यह कि जब कोई परम्परा चालू होती है तब तो वह अकसर हितकर होती है, मगर चालू होने पर धीरे-धीरे उसमे विकृति आने लगती है। विकृति आते-आते बहुत समय बीत जाने पर एकदम दूषित बन जाती है। दूसरी बात है विभिन्न समयो की विभिन्न परिस्थितियाँ। पूर्वकाल मे जो परिस्थितियाँ थी वे दूसरे प्रकार की थी और आज दूसरे प्रकार की हैं। पहले की परम्परा उस जमाने के अनुकूल और हितकारी थी, अतएव वह इस जमाने मे भी अनुकूल और हितकर है, ऐसा एकान्त रूप से नही कहा जा सकता। परिस्थितियाँ बदलती हैं तो परम्पराओ को भी बदलना पडता है। अनादिकाल से परिवर्त्तन का यह चक्र चल रहा है और चलता रहेगा। इसे कोई रोक नही सकता। किसी के रोके वह रुकता नही है।

तात्पर्य यह है कि जब किसी प्रकार के परिवर्त्तन का प्रश्न सामने खड़ा हो तो उसके गुण-अवगुण का ही विचार करना चाहिए। अगर उससे आत्मा का, समाज का, देश का उपकार होता है तो उसको अंगीकार करने मे झिझकने की कोई आवश्यकता नही है। इसके विपरीत अगर उससे किसी को लाभ न हो और हानि होती हो तो अंगीकार नही करना चाहिए। मगर सोचना चाहिए उसकी अच्छाई और बुराई के आधार पर ही। नवीनता और प्राचीनता के आधार पर सोचने से आपको हानि ही उठानी पड़ेगी। ऐसा करने से आप अपने पूर्वजों का कोई अपमान नही करेंगे, क्यो कि आपके पूर्वज भी ऐसी ही करते आये हैं। उन्होंने नवीन परम्पराओ को चालू न किया होता तो आज आपके सामने और भी भीषण परिस्थिति होती। मगर उन्होंने जो परंपराएँ चलाई है, उनमे आज विकृति आ गई है, और सामयिक परिस्थिति भी बदल गई है, अतएव जिससे आपकी धर्म भावना की रक्षा हो, आपकी नैतिकता का विकास हो, समाज को सुख-शान्ति की प्राप्ति हो, लोगो का आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान कम हो, ऐसी परम्परा को ही अपनाओ। अनीति अधर्म को बढ़ाने वाली रूढियो को छोड़ो।

जो लोग आंखे मीच कर परम्परा का ही अनुसरण करने के लिए हठ पकडे बैठे हैं, जिनके पास विवेक की तराजू नही है, उन्हे समझाना कठिन है। फिर भी उन्हे समझना चाहिए कि कोई बात अच्छी भी चली आती है और कोई बात बुरी भी चली आती है। बाप-दादा की अच्छाई को लो और बुराई को छोड़ दो। किसी के बाप दिवा-

लिया थे तो क्या वह दस लाख की पूंजी पास में होने पर भी दिवालिया बनेगा ? किसी के बाप जेलखाने गये थे तो क्या उसे भी जेलखाने जाना चाहिए ?

मेरे बाप साधुजी के पास नही गये अतः मैं भी नही जाऊँगा, मेरे पिता तपस्या नही करते थे तो मैं भी नही करूँगा ! अरे भाई ! गधे की पूंछ पकड कर क्यो लाते खाता है ।

कई लोग कहते हैं—अजी, रहने दीजिए आपकी शिक्षा । हम सब समझते है ! वास्तव मे ऐसा कहने वाला समझता कुछ भी नही है और लालबुझक्कड की तरह टाँग सभी जगह अडाता है ।

किसी गाव मे एक चतुर समझा जाने वाला आदमी था । लोग उसे लालबुझक्कड कहते थे । गाँव के लोग हर बात मे उसकी सलाह लिया करते थे और उसकी बात मानते थे । एक वार रात्रि के समय उस गाँव के किनारे से हाथी निकल गया । सवेरे लोगो ने उसके पैरो के निशान देखे । उन लोगो ने कभी हाथी नही देखा था । अतएव वे सोच-विचार में पड गये कि यह किस चीज के निशान हैं ? इस गाव के लिए कोई अप-शकुन तो नही हुआ है ?

सब लोग इकट्ठे होकर उन्ही लालबुझक्कड के पास पहुँचे । उन्हे लाये और निशान दिखलाये । लालबुझक्कड ने भी कभी हाथी नही देखा था, अतएव वह उसके पैरो के निशान की कल्पना नही कर सकता था । उसकी समझ मे ठीक तरह कुछ नही आया, मगर उसने कह दिया—अरे, तुम लोग समझे नही ! रात्रि मे

कोई हिरण अपने पैर मे घट्टी (चक्की) बांध कर निकला है। यह निशान उसी के है।

लोगो ने लालबुझक्कड़ की बुद्धिमत्ता की सराहना करते हुए कहा— वाह—वाह ! क्या पते की बात कही है ! घट्टी के सिवाय और किस चीज के यह निशान हो सकते है !

ऐसे-ऐसे मूर्ख भी होते हैं। अज्ञानी लोगो को समझाना उतना कठिन नही है जितना कि ज्ञान का अभिमान रखने वाले, अपने आपको ज्ञानवान् समझने वाले लोगो को समझाना कठिन होता है। नीतिकार कहते हैं—

अज्ञः सुखमाराध्यः, सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं, ब्रह्माऽपि त जनं न रञ्जयति ॥

अज्ञानी को सरलता से समझाया जा सकता है और ज्ञानवान् को समझाना और भी सरल है। मगर थोडा-सा ज्ञान पाकर जो अपने आपको महापण्डित समझ बैठा हो, उसे तो ब्रह्मा भी नही समझा सकता !

भाइयो ! जो अनादि-अनन्त मिथ्यात्व के पाश मे फँसे हुए हैं,वे समझाने पर भी नही समझते। कोई कितना ही बुद्धिमान् आकर उन्हे समझावे तब भी वे उसकी सत्य बात को स्वीकार नही करते और उलटे उसे ही झुठला देते हैं। वे तो लालबुझक्कडजी की ही बात सही मानते हैं। वे सत्य को झूठ बनाने का प्रयत्न करते रहते है और सत्य को काटने की ही फिराक मे रहते है।

आत्मा का कल्याण करने वाली दो चीजे हैं—ज्ञान और क्रिया। समझना है ज्ञान और चलना है क्रिया। दोनो समझने की चीजे हैं और अलग-अलग हैं। ज्ञान का सम्बन्ध ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम और क्षय के साथ है तथा क्रिया का सम्बन्ध चरित्रमोहनीय कर्म के क्षय, या उपशम के साथ है। ज्ञानावरण दर्शनावरण का क्षयोपशम हो जाने से ज्ञान-दर्शन तो हो जाता है, मगर दर्शनमोहनीय कर्म का अगर उदय हुआ तो वह दर्शन और ज्ञान सच्चा नही, झूठा होता है। मिथ्यादृष्टि जान कर भी मिथ्या ही जानता है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के साथ दर्शनमोह कर्म का भी क्षय, उपशम या क्षयोपशम होना चाहिए। सौभाग्य से इतना सब हो जाने पर भी अगर चरित्रमोहनीय का उदय हो तो चरित्र की प्राप्ति नही होती। मनुष्य यथार्थ रूप से तत्त्व को जानता बूझता हुआ भी और अपने कर्त्तव्य को ठीक रूप से समझता हुआ भी उसके अनुसार चल नही सकता है।

भाइयो! यह मिथ्यात्व जीव का घोर शत्रु है। इसकी बराबरी का और कोई शत्रु नही है। यह शत्रु ऐसा विलक्षण है कि इसके प्रभाव से जीव आप ही अपना शत्रु बन जाता है, स्वय अपना अहित करने मे प्रवृत्त हो जाता है। अतएव सर्वप्रथम इस शत्रु पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जगत् मे नाना प्रकार के खयाल और तरह-तरह के जो दृष्टिकोण हैं, वह सब इसी मोह कर्म की महिमा है।

एक बीमार लाठी लेकर, उसके सहारे अपने घर से बाहर निकला। उसे देख कर अलग-अलग लोगो ने अलग-अलग

तरह की कल्पनाएँ की। उन्हे कवि ने एक श्लोक मे कहा—

वैद्या वदन्ति कफमारुतपित्तकोप,
ज्योतिर्विदो ग्रहगणस्य फलं वदन्ति।
भूताभिषङ्ग इति भूतविदो वदन्ति,
प्राचीनकर्म वलवन्मुनयो वदन्ति ॥

बीमार को वैद्यराज मिले। उन्होने उसकी हालत देख कर कहा—तुम्हारा वात, पित्त या कफ कुपित हो गया! औपध का सेवन करो तो नीरोग हो जाओगे। बीमार कुछ आगे चला तो ललाट पर लम्बा तिलक लगाए और हाथ मे पत्रा लिये ज्योतिषीजी मिल गये। उन्होने बीमार को देख कर कहा—तुम्हे तो शनिजी की दशा है! बीमार और आगे बढा तो देवीजी का पण्डा—भोपा मिल गया। उसने कहा—अजी किस चक्कर मे पडे हो? तुम्हे तो भूत लग गया है—चुड़ैल लगी है। इतवार या बुधवार को मेरे पास आना। मै तुम्हारा कष्ट काट दूगा, किन्तु छत्र और ध्वजा लेते आना! बीमार सोच-विचार मे पडा हुआ और आगे चला तो एक मत्र-तत्र जानने वाला मिल गया। वह बोला—तुम तो समझते नही हो। एक पुतला समुद्र के किनारे गाड रक्खा है और वही दु ख दे रहा है। इच्छा हो तो मैं चुटकियो मे सब ठीक कर सकता हूँ।

रोगी नाना प्रकार के संकल्पों-विकल्पों मे डूबता कुछ और आगे बढा तो उसे एक साधुजी मिल गये। रोगी को देख कर उन्होने कहा—श्रावकजी! क्या हाल है? उसने उत्तर दिया—महाराज, क्या करूँ? बीमारी ने घेर रक्खा है।

मुनि—बोले—इसके लिए चिन्ता या शोक मत करो। पहले किये हुए कर्म जब उदय मे आते है तो फल भोगना ही पड़ता है। कर्म बड़े बलवान् है।

श्रावक—तो महाराज, इसका कुछ इलाज न कराऊँ ?

मुनि—एक पचोला कर लेना!

भाइयो! यहाँ एक नारियल की भी आवश्यकता नही है। साधुओ को क्या चाहिए ? रही कर्मोदय को शान्त करने की बात, सो कर्म अपना फल दिये बिना मानते नही है। चौसठ इन्द्र मिल कर भी अगर कर्मों को निष्फल बना देने का प्रयत्न करे तो भी सफलता नही पा सकते। औरो की तो बात ही क्या है, साक्षात् जगन्नाथ तीर्थङ्कर देव भी कर्मों को फलहीन नही बना सकते। तीर्थङ्करो को भी कर्मों का फल भोगना पड़ता है और तपस्या के द्वारा उन कर्मो का क्षय करना पड़ता है।

महावीर स्वामी से गौतम स्वामी ने पूछा—प्रभो! मुझे केवलज्ञान क्यो नही होता ? अब आप ही सोच देखो कि यदि केवलज्ञान देना भगवान् के हाथ मे होता तो वे गौतम स्वामी के लिलाट पर हाथ रख कर कह देते कि यह ले केवल ज्ञान! मगर ऐसा होना सम्भव नही है। सबको अपने किये कर्म भोगने पड़ते हैं।

कई मिथ्यात्वी वैद्य को भगवान् समझते है तो कई ज्योतिषी को भगवान् माने बैठे है, कोई भोपा को भगवान् का प्रतिनिधि समझते और चौकियाँ चढा रहे हैं और कोई तन्त्र-यन्त्र मन्त्र देने वाले

को ही ! मगर यहां तो यही ज्ञान है कि जिसने जैसे कर्म कमाये है जो पुण्य या पाप बाधा है, उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। अगर अपना-अपना पुण्य और पाप न भोगना पड़ता होता तो ससार मे कोई सुखी और कोई दुखी क्यों होता ? मनुष्य मात्र के हाथ-पैर आदि अंगोपाग बरावर हैं । फिर भी कोई रोगों से घिरा रहता है, कोई नीरोग रह कर मौज उड़ाता है, कोई भीख माग कर भी पेट नही भर पाता और कोई करोडपति है, कोई काना-अधा है और कोई सभी इन्द्रियों की परिपूर्ण शक्ति से सम्पन्न है, किसी की बुद्धि एकदम कु ठित होती है और कोई-कोई कुशाग्रबुद्धि से विभूषित है, कोई सुन्दर और सौम्य मुख वाला है और कोई बदसूरत है, यह सव भेद क्यों हुआ ? कर्म नही तो कोई कूवडा क्यों हुआ ? कर्मों के अभाव मे नर और नारी में अन्तर क्यो है ? कोई पुरुष और कोई स्त्री क्यो वनता है ? वही माता, वही पिता, वही रज, वही वीर्य, वही भोजन-पान, वही स्थान, सव कुछ समान होने पर भी कोई वालिका के रूप मे एव कोई वालक के रूप में क्यो जन्म लेता है ? यह सब पूर्वकृत कर्मों का ही फल है।

गुलाव-सागर का पानी देख कर नही समझते कि वर्षा हुई है तभी तो तालाव भरा हुआ है। जिसके गले मे हीरो का कटा है, समझ लो कि वह धनवान् है। जो मोतियो जडे गोखरू पहन कर दर्शन करने आती है, समझ लेना चाहिए कि वह मालदार घर की महिला है । यह अनुमान प्रमाण है । जव किसी एक चीज को देख कर, उससे दूसरी चीज का अनुमान लगा लिया जाता है, कार्य को देख कर कारण की कल्पना की जाती है। यह

अनुमान प्रमाण कहलाता है । अगर आप अनुमान प्रमाण से काम ले तो ससार मे नाना प्रकार के प्राणियो को देख कर और एक ही प्रकार के प्राणियो की भी नाना अवस्थाएँ देख कर इनके कारण भूत कर्म की कल्पना कर सकते है ।

भाइयो ! कर्म सदैव एक से नही रहते । कुछ दिन पहले मैंने बतलाया था कि प्रत्येक कर्म की आत्मा के साथ बँधे रहने की एक निश्चित अवधि होती है । उस अवधि तक ही कर्म आत्मा के साथ रहते हैं । अवधि पूर्ण होने पर उनका उदय होकर फल देकर वे अलग हो जाते हैं । अतएव जिनके शुभ कर्मो का उदय है, उन्हे भी निश्चिन्त होकर बैठना नही चाहिए । मोतियो के गोखरू पहन कर आने वाली बहिन को भी हम इसीलिए उपदेश देते हैं कि दया पालो और धर्म करो । अगर वह घर मे ही बैठी-बैठी मौज करे और सोचे कि साधु तो यो ही कहते रहते है । मेरे पास समस्त सुख के साधन मौजूद हैं । मुझे धर्म-पुण्य का आचरण करके क्या करना है ? तो जब तक उसके पूर्वकृत पुण्य का उदय रहेगा तब तक तो कुछ नही, आगे चल कर-आगामी भव मे-उसकी ऐसी स्थिति हो जायगी कि उसे चिरमियो के भी गोखरू नसीब नही होंगे ।

भाई ! क्यो असावधान होकर बैठे हो ? निश्चिन्त होकर बैठे रहने से कैसे काम चलेगा ? जो तैयारी करनी हो सो जल्दी कर लो । टिकिट कटने ही वाला है । कब कट जायगा, कोई भरोसा नही है । पहले गुणस्थान वाला, तीव्र मिथ्यात्वोदय वाला तो कभी मानने वाला नही है । उसे धर्म की वार्त्ता रुचिकर नही होती ! वह शास्त्र की बात सुन कर भी विपरीत समझता और विपरीत

ही परिणमाता है। कर्मों की गति अति गहन है।

अगर आप तीर्थङ्कर भगवान् के उपदेश को सुन कर उस पर श्रद्धा रखते है, भगवान् की वाणी के अनुसार चलते है या कम से कम चलने की भावना रखते है तो समझा जायगा कि आप सम्यग्दृष्टि है और आपने पहली श्रेणी को पार कर लिया है। पहली श्रेणी जिन्होंने उत्तीर्ण कर ली हैं, उन्हे भी आगे बढना है। भगवान् के द्वारा प्ररूपित मार्ग पर और अग्रसर होना है। इसीलिए हम उपदेश करते हैं:—

आजा, आजा ये मारग अच्छा है "टेर॥
भगवान् नें भाषा गणधर गूंथा,
जो जो भाव सब सच्चा है ।

देखो त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान् ने जो फर्माया है और जो गणधर महाराज ने शब्द रूप मे गूंथा है, वह आगम सच्चा है। उसका शब्द-शब्द सच्चा है। ऐसे परमज्ञानी, परहित के अभिलाषी लोकोत्तर महापुरुष कदापि मिथ्या कथन नही कर सकते। शास्त्रो में दया, दान, क्षमा, शील, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, सत्य आदि का उपदेश दिया गया है। यह सब पवित्र भावनाएं हैं। उपकारी सद्‌गुण हैं। सभी अच्छी बाते है। अतएव भगवान् की वाणी पर श्रद्धा करो, अनुरक्ति रक्खो, तदनुसार चलने की शक्ति प्राप्त करके चलो।

पापी मनुष्य, जिसके मिथ्यात्व का उदय है, सच्ची बात को विपरीत ही मानता है। वह अपनी मान्यता के अनुसार ही

चलता है। जिनकी मान्यता ही दूषित होती है, उनका आचार भी दूषित होता है। ऐसे लोग किसी भी दुर्व्यसन मे फँस जाते हैं। मांस खाना और मदिरा का पान करना उनके लिए कोई बडी बात नही है! झूठी गवाही देना, बात-बात में झूठ बोलना, चोरी करना, परस्त्री की ओर ताकना घोर से घोर दुष्कर्म कर डालना उनके बाये हाथ का खेल है। ऐसे लोग नरक मे जाने वाले हैं। जो लुच्चाई पर उतरा है,उसे पाताल मे उतरना पडेगा।

अरे जीव, क्यो इधर-उधर भटकता है? क्यों अपनी आत्मा को कष्टो का पात्र बनाता है? सद्गुरु की शरण में क्यो नही जाता? सद्गुरु की सीख सुन और मान। पहली श्रेणी को लाघ जा।

परन्तु यह उपदेश उन्ही को लगता है, जो ऊँची श्रेणी पर चढ़ने वाला है।

> वीतराग के वचन में, कूड़ नही लवलेश।
> जिनकी भवस्थिति पक गई, उनको यह उपदेश॥

भाइयो! जिन महापुरुषों ने राग और द्वेष का पूर्ण रूप से, समूल नाश कर दिया है, उन्हे निश्चय ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। राग और द्वेष मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं। जिनके मोहनीय कर्म का क्षय हो गया है, उन्हे अन्तर्मुहूर्त्त मे ही केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जो राग-द्वेष को जीतकर पूर्ण वीतरागदशा को प्राप्त कर चुके हैं और, अज्ञान का निवारण करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अवस्था प्राप्त कर

चुके हैं, उन्हे सम्पूर्ण सत्य की उपलब्धि हो गई है। वे पूरी तरह निष्काम और निस्वार्थ हो गये हैं। वे कृतकृत्य परमात्मा है। उनकी वाणी मे असत्य का लेश मात्र भी नही हो सकता। यह बात आप अपने अनुभव से भी समझ सकते हैं और शास्त्रो के शब्दो से भी समझ सकते है। कहा भी है

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं, नान्यथावादिनो जिनाः॥

जिनेन्द्र भगवान् ने जिस सूक्ष्म तत्त्व की प्ररूपणा की है, उसमे तर्क या किसी भी हेतु अथवा युक्ति से बाधा आ ही नही सकती। अतएव भगवान् के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण ही उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। आचार्य अन्त मे कहते हैं—सौ बातो की एक बात यही है कि 'नान्यथावादिनो जिना,' अर्थात्, जिनेन्द्र देव कदापि अन्यथा भाषी नही होते। उनकी वाणी मे, तीन काल में भी, कोई बाधा नही आ सकती। शास्त्र मे भी कहा है:—

तमेव सच्चं नीसकं, जं जिणेहिं पवेइयं॥

—श्रीमदाचारांग सूत्र।

हे भव्य! वही सत्य और असदिग्ध है, जिनो ने जो फर्माया है।

इस प्रकार की सुदृढ श्रद्धा प्रत्येक विचारशील व्यक्ति मे होनी चाहिए। जिसे ऐसी श्रद्धा प्राप्त है, वह धन्य है, वह पुण्यशाली है और उसका कल्याण होना निश्चित है। मगर 'सद्धा

परमदुल्लहा' अर्थात् सत्य तत्त्व पर श्रद्धा होना अत्यन्त कठिन है। ससार मे अधिकाश प्राणी ऐसे ही है, जो सच्ची श्रद्धा से रहित हैं। कई ऐसे है जिन्हे अनादि काल से आज तक श्रद्धा प्राप्त ही नही हुई और कई ऐसे भी हैं जो एक वार सच्ची श्रद्धा प्राप्त करके, मोहनीय कर्म की प्रवलता के कारण उसका वमन कर चुके हैं। कहा भी है—

जो समदृष्टि, मिथ्यात्व ग्रहे, वह सादि मिथ्यात्वी कहाता है।
जिसने सम्यक्त्व न पाया कभी, अनादि मिथ्यात्वी कहाता है॥

भाइयो! जो जीव पहले सच्चे मार्ग पर आ जाय, खूब धर्म ध्यान करे, ईश्वर का भजन करे और फिर बुरी सोहवत में पड कर एवं मिथ्यात्वमोहनीय के उदय आ जाने पर, गलत मार्ग मे चला जाय, ईश्वर और धर्म का नाम न लेवे वह सम्यग्दृष्टि से मिथ्यादृष्टि हो जाता है। वह सादि मिथ्यादृष्टि कहलाता है, क्यों कि उसके मिथ्यात्व की आदि है। ऐसा जीव सत्य मार्ग को त्याग कर और असत्य मार्ग पर आरूढ होकर भी परीत ससारी ही है, निश्चित-रूप से उसे मोक्ष की कभी न कभी प्राप्ति होगी। उसके ससार भ्रमण की अधिक से अधिक मर्यादा अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्तन की है। फिर भी वह प्रथम गुण स्थान मे ही है।

जो खीर पान कर वमन करे, शेष स्वाद रह जाता है।
त्यो समकित से गिर एक समय छह आवली जो रह जाता है।
मिश्र सतासत भाव रूप, श्रीखण्ड समान जो रहते है।
तृतीय गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कहते है॥

उक्त विवेचन से आप पहले गुणस्थान का स्वरूप समझ गये होंगे। दूसरा गुणस्थान सास्वादन कहलाता है। दर्शनमोहनीय की तीन और चरित्रमोहनीय की अनन्तनुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन सात प्रकृतियों का उपशम होने पर औपशमिकसम्यक्त्व प्राप्त होता है। यह सम्यक्त्व अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहता है। इसके बाद वह नष्ट हो जाता है। सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर जीव चौथे गुणस्थान में पहुच जाता है और जब सम्यक्त्व का नाश हो चुकता है तो प्रथम गुणस्थान में गिर जाता है। परन्तु चौथे गुणस्थान से प्रथम गुणस्थान की ओर जाता हुआ जीव दूसरे गुणस्थान में होकर जाता है। सम्यक्त्व से च्युत हो जाने पर और मिथ्यात्व की भूमिका पर स्थिर होने से पहले--बीच की जो अवस्था होती है, उस अवस्था को सास्वादन गुणस्थान कहा गया है। जैसे खीर खाकर किसी ने वमन कर दी हो तो कुछ--कुछ मिठास उसकी जीभ पर रह जाती है और वह थोड़ी देर ही रहती है, उसी प्रकार वमन किये हुए सम्यक्त्व का कुछ आस्वाद थोडी देर रहता है, उसे सास्वादन गुणस्थान समझना चाहिए।

दूसरा सास्वादन गुणस्थान गिरने का गुणस्थान है। अर्थात् चौथे गुणस्थान से पहले गुणस्थान मे गिरते समय ही यह गुणस्थान आता है। जब कोई जीव पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान पर चढ़ता है, उस समय सास्वादन गुणस्थान मे होकर नही चढ़ता।

तीसरा गुणस्थान मिश्र गुणस्थान कहलाता है। मिश्र का अर्थ है--मिलाजुला। अर्थात् जिस अवस्था मे सम्यक्त्व मिथ्यात्व

मिलेजुले रहते हैं, कुछ अंशो में मिथ्यात्व और कुछ अंशों में सम्यक्त्व रूप परिणाम होते है और दोनो मिल कर एक विलक्षण प्रकार की परिणामधारा को जन्म देते है, वह अवस्था मिश्रगुण-स्थान कहलाती है। कहा है:—

दहिगुडमिव वामिस्सं, पुहभावंणेव कारिदुं सक्कं।
एव मिस्सयभावो, सम्मामिच्छत्ति णायव्वो ॥

दही और गुड़ को मिला कर एकमेक कर दिया जाय और उन्हे पृथक न किया जा सकता हो तो उनका आस्वादन करने पर न दही का स्वाद आता है और न गुड़ का ही। दोनो से भिन्न एक तीसरे प्रकार के स्वाद की अनुभूति होती है। इसी प्रकार मिश्रमोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व मिथ्यात्व रूप का जात्य-न्तर परिणाम की उत्पत्ति होती है। वही तीसरा गुणस्थान है।

भाइयो! कई लोग पहले बड़े धर्मात्मा होते हैं और फिर बडे पापी हो जाते हैं। मैंने एक आदमी को देखा है। वह बडा धर्मात्मा था। फिर लालच मे आकर उसने एक बच्चे को मार डाला। पकडा गया और जेलखाने गया। सजा काट कर आया तो ऐसा मिथ्यात्वी बन गया कि गायें खरीद--खरीद कर कसाइयो को बेचने का धन्धा करने लगा।

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपात शतमुख:।

ठीक ही कहा है कि एक वार जो विवेक से भ्रष्ट हो जाता है, फिर उसका सँभलना वडा कठिन है। गिरने वाला गिरता ही चला जाता है और उसका सौमुखी पतन होता है। कोई बड़ा ही

भाग्यवान् हो तो भले बीच में रुक जाय, नही तो गिरने वाला अन्तिम छोर तक गिरता है।

शास्त्रो मे वर्णन है कि जीव चौथे गुणस्थान से ही नहीं गिरता, वरन् ग्यारहवे गुणस्थान तक पहुँच कर भी गिरता है और कोई-कोई तो ऐसा गिरता है कि ठेठ पहले गुणस्थान में आ पहुँचता है। तो दूसरा और तीसरा गुणस्थान पतनोन्मुख जीवो के होते है। दूसरे गुणस्थान वाला निश्चित रूप से पहले गुणस्थान में जाता है, जबकि तीसरे गुणस्थान वाला ऊपर भी चढ सकता है।

चौथा गुणस्थान अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहलाता है। अनन्तानुबधी कषाय के नष्ट हो जाने पर और दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियो का क्षय क्षयोपशम या उपशम होने पर इस गुणस्थान की प्राप्ति होती है। इसके प्राप्त होने पर जीव की श्रद्धा-रुचि एक दम निर्मल हो जाती है। सत्य और असत्य का विवेक प्राप्त हो जाता है। सत्य को उपादेय असत्य को हेय समझने लगता है। वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दयामय धर्म पर उसकी श्रद्धा हो जाती है। वह सम्यक्चारित्र को उपादेय समझने लगता है। इतना हो जाने पर भी अप्रत्याख्यानावरण चारित्र मोहनीय कर्म का उदय होने के कारण वह चारित्र को व्रत-प्रत्याख्यान को, अगीकार नही कर सकता, पाल नही सकता।

जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय हट जाता है, तब कहीं देशविरति अर्थात् श्रावकधर्म का पालन करने की योग्यता आती है। यह योग्यता आने पर जीव पाँचवे गुणस्थान में या पांचवीं

पंक्ति मे प्रवेश करता है। इस अवस्था मे अप्रत्याख्यानावरण कषाय न होने के कारण देशचारित्र का तो पालन होता है, मगर प्रत्या--ख्यानावरण चारित्र मोहनीय का उदय होने के कारण सर्वविरति को स्वीकार नही कर सकता।

अलबत्ता जब आत्मा की शक्ति और अधिक प्रबल हो जाती है और वह प्रत्याख्यानावरण कषाय को भी हटा देता है, तब सर्वविरति रूप चारित्र की, सम्पूर्ण सयम की योग्यता प्राप्त होती है। यही छठा गुणस्थान कहलाता है। छठे गुणस्थान का नाम प्रमत्तसयत गुणस्थान है। इस गुणस्थान मे प्रमाद का अस्तित्व बना रहता है।

सातवें गुणस्थान से लगा कर दसवे गुणस्थान तक मोह–नीय कर्म की सज्वलन कषाय तथा नौ नोकषायो का उपशम या क्षय हो जाता है। बारहवे गुणस्थान के अन्त में तीन घातिया कर्मो का भी क्षय हो जाता है। तेरहवे गुणस्थान मे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अवस्था प्राप्त हो जाती है। इस गुणस्थान वाले अरिहन्त परमात्मा के परम पुनीत पद को प्राप्त कर लेते है। उनमे से कोई-कोई तीर्थंकर केवली होते हैं और अधिकांश सामान्य केवली होते है। यही अरिहन्त प्रभु जगत् का धर्म का उपदेश देते है।

तेरहवे गुणस्थान के पश्चात् तीनो योगो का क्रमश निरोध हो जाने पर अयोग केवली अवस्था अर्थात् चौदहवी श्रेणी प्राप्त होती है। इस अवस्था में भगवान् थोडी ही देर ठहरते है। पाँच ह्रस्व स्वरों को मध्यम रूप से बोलने मे जितना समय लगता है, उतनी देर चौदहवे गुणस्थान मे रह कर, चार अघातिया कर्मो का

समूल क्षय करके शाश्वत अवस्था-नित्य निरंजन सिद्ध पदवी प्राप्त कर लेते हैं।

भाइयो ! आत्मा का उत्थान किस प्रकार होता है, उसके उत्कर्ष का क्रम क्या है, यह बतलाने के लिए ही मैंने गुण स्थानो की चर्चा की है। यह चर्चा सक्षेप मे है। व्याख्यान के समय तो इतनी ही चर्चा हो सकती है। यह विषय गहन है, साधारण लोगों को रूखा भी मालूम पडता है। मगर जिन्हे इसकी चर्चा समझ मे आ जाती है, उन्हे खूब रस भी आने लगता है। इस चर्चा का आत्मा के साथ बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। आपको चाहिए कि इसे समझने का प्रयत्न करे और समझ कर आत्मा का कल्याण करे।

इस असीम संसार-सागर में भगवान् के चरण-कमल नौका के समान हैं। अगर आपने भगवान् के चरण-कमलों का आश्रय लिया तो धीरे-धीरे आप अन्तिम स्थिति भी प्राप्त कर लेंगे। अतएव आपको सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेवजी की शरण में जाना चाहिए। जब आपकी अन्तरात्मा पूर्ण रूप से भ० ऋषभदेवजी पर निर्भर हो जायगी, उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर चलने को उद्यत हो जायगी तो अवश्य ही आपका निस्तार होगा।

भगवद्भक्ति का फल अनुपम है। उससे इहलोक और पर-लोक मे सर्वत्र सुख और शान्ति प्राप्त होती है। यद्यपि भगवद्-भक्त को भी अपने किये कर्मों का फल भोगना पड़ता है, मगर सच्चा भक्त अशुभ कर्मों को भोगते समय भी व्याकुल और विक्षिप्त नही होता। वह समभाव से कर्मों का फल भोगता है।

भविष्यदत्त चरित –

देखो, भविष्यदत्त को, तिलकसुन्दरी को और पूर्वजन्म के तापस को भी अपने किये कर्मों का फल भोगना पड़ा। तापस के जीव ने तिलकपुर पाटन के निवासियो से जो बदला लिया, वह भी उनके कर्मो का फल था। इसी प्रकार प्रत्येक ससारी प्राणी अपने-अपने पुण्य-पाप को भोगता है और भोगते समय जैसी भावनाएँ करता है वैसे ही कर्म आगे के लिए बाँध लेता है।

हम साधुओ का काम घूमना है। देश-देशान्तर मे घूमते-घूमते मैंने स्वय कई प्रकार के मनुष्यो को देखा है। एक स्त्री किसी समय कमर से ऊपर सोने से लदी थी और फिर कुछ दिनो बाद उसे देखा कि वह फकीरनी हो गई है ; भीख माँग-माँग कर खा रही है ! पिछले दिनों आपने भारतवर्ष मे अनेक उथलपुथल देखे हैं। महायुद्ध के कारण कई लोग माला-माल हो गये और कई भिखारी बन गये ! कितने ही राजाओ के राज्य चले गये। कई साधारण आदमी बडे आदमी बन गये !

भविष्यदत्त को ही देखो ! जब उसका भाई उसे अकेला छोड कर, जहाज को लेकर चल दिया तो उसकी क्या स्थिति थी ? मगर पाप कर्म का उदय होने के पश्चात् उसके पुण्यकर्म का ऐसा उदय आया कि वह राजा बन गया, उसका विवाह हो गया और संसार के सभी सुख उसे प्राप्त हो गये ! वह अब तिलकसुन्दरी के साथ मौज मे रहता है ! ऐसा सुख भोग रहा है कि राजाओ को भी नसीब होना कठिन है।

उसे इस प्रकार रहते कई दिन हो गये। एक बार तिलक-

सुन्दरी ने सहजभाव मे भविष्यदत्त से कहा—प्रियतम ! मै नम्रता के साथ आपका पूरा परिचय जानना चाहती हूँ ! आप अपने माता–पिता, परिवार आदि की बात बतलाइए।

भविष्यदत्त तिलकसुन्दरी की बात सुन कर रोने लगा। यह देख तिलकसुन्दरी ने पूछा-नाथ ! आपकी आँखों मे आँसू क्यो आ गये ? क्या मेरे प्रश्न से आपके हृदय को कोई चोट पहुची है ?

भविष्यदत्त-नही, ऐसी कोई बात नही है।

तिलकसुन्दरी--क्या इससे पहले आपका कोई और विवाह हो चुका है ? और आपको पहली पत्नी का स्मरण हो आया है ?

भविष्यदत्त—ऐसी बात होती तो मैंने तुम्हे पहले ही साफ-साफ बतला दी होती। मैं छल–कपट से कभी काम नही लेता।

तिलक०—तो फिर आपकी व्याकुलता का कारण क्या है ? आपकी यह स्थिति देखकर मुझे भी चिन्ता हो गई है। आपके हृदय मे अगर किसी प्रकार का दुःख है तो उसमे मै भी भागीदार होना चाहूगी। मै आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। आपके सुख को अपना सुख और आपके दुःख को अपना दुःख समझती हूँ। पतिव्रता स्त्री का यही कर्त्तव्य और आदर्श है। मैं ऐसी स्वार्थ-परायणा नही कि आपके दुःख की परवाह न करके सुख मे मस्त बनी रहूँ ! ऐसी नारी के जीवन को धिक्कार है जो अपने सुख से मतलब रखती है और अपने पति के सुख–दुःख का विचार नही करती।

भविष्यदत्त प्रिये ! मैं तुम्हे पाकर भाग्यशाली हूँ। तुम्हारी कर्त्तव्यपरायणता प्रशंसनीय है। पर मेरे दुःख का कोई गभीर

कारण नही है। तुम्हारे प्रश्न से अतीत जीवन की स्मृतियाँ मेरे चित्त मे उभर आइ है! इन सब को कहने से कोई लाभ नही है। तुम्हे भी दु ख होगा और मुझे भी अधिक दु.ख होगा।

तिलक०—पतिदेव! अपनी अर्धाङ्गिनी से कोई भी बात छिपाना उचित नही है। आप मुझ पर पूर्ण विश्वास कीजिए। आपकी आज्ञा मेरी सिर आँखो पर है। आप दिल खोल कर सारी बात बतला देगे तो इसके लिए आपको तनिक भी पश्चात्ताप नही करना पडेगा।

तिलकसुन्दरी का अतिशय आग्रह देख कर और यह सोच कर कि मैं इसे सच्ची बात न बतलाऊँगा तो न जाने इसके चित्त मे कैसी-कैसी कल्पनाएँ उत्पन्न होगी और यह अशान्ति का अनुभव करेगी, भविष्यदत्त ने आदि से लेकर अन्त तक का समस्त वृत्तात सुना दिया।

तिलकसुन्दरी बोली—प्राणनाथ! वे दिन चले गये! अब आपको सभी प्रकार का आनन्द प्राप्त है। यह सारा नगर आपको दहेज मे मिला है। अब तो भगवान् का स्मरण कीजिए और पिछली स्मृतियो को दूर कर दीजिए। भगवान् का भजन, स्तवन और कीर्त्तन करने से सभी सुख प्राप्त होते है। आप जैसे पुण्यशील पुरुष की माताजी भी दु.खी नही रह सकती। आपका उनसे भी मिलन होगा। मैं भी उनके दर्शन करके अपने नेत्रो को सार्थक और सुखी करुँगी। धर्म के प्रताप से सब प्रकार आनन्द ही आनन्द होगा।

२०-१०-४८ }

सम्यग्दर्शन--दिग्दर्शन

स्तुति :

भक्तामरप्रणतमौलिमणि प्रभाणा—
　　मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुग युगादा—
　　वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

प्रभो ! आपके चरणो के अनुग्रह से भव-भव मे सचित पाप-कर्मों का नाश हो जाता है । आप ही जगत् के जीवो के

लिए एक मात्र आश्रय रूप हैं कोई मनुष्य समुद्र में डूब रहा हो और अनुभव कर रहा हो कि बस, अब जीवन समाप्त होने ही वाला है, मृत्यु की भीषण परछाई उसके सामने मौजूद हो, वह जीवन की आशाएं त्याग चुका हो और जिंदा रहने की इच्छा होते हुए भी जिन्दा रहने का कोई मार्ग, कोई उपाय उसे न मिल रहा हो, बचा लेने के लिए देवी-देवताओ को मना रहा हो और अपने पुरखाओं का स्मरण कर रहा हो, ऐसे भीषण और नाजुक समय मे कदाचित् कोई जहाज उसे अचानक दिखलाई पड जाय तो उसे कितनी प्रसन्नता होगी ? और जब जहाज उसके समीप आ जाय, जहाज वाले भी उसे देख ले और दया करके उसे समुद्र की तूफानी लहर से निकल कर अपने जहाज पर चढा ले तो क्या उसकी प्रसन्नता का पार रहेगा ? तो जिस प्रकार समुद्र मे डूबते हुए प्राणी के लिए जहाज एक मात्र आधार है, उसी प्रकार इस अनादि-अनन्त ससार-सागर मे फँसे हुए जीव के लिए भगवान् ऋषभदेवजी का चरणयुगल आधार है।

भगवान् के चरणयुगल को जहाज की जो उपमा दी जाती है, वह यद्यपि पूरी सही उपमा नही है। क्योकि जहाज स्वयं विनाशशील है। वह एक बार किसी को आश्रय देकर और उसके प्राणो की रक्षा करके, आगे बढने पर फिर कभी तूफान मे फँस सकता है, उलट सकता है और अपने आश्रित जनो को फिर निराश्रित बना सकता है। वह आप भी डूब सकता है और दूसरों को भी डुबा सकता है। मगर भगवान् के चरणयुगल का आश्रय लेने पर ऐसा कोई खतरा नही रहता। भगवान् के चरण एकान्त आश्रयभूत है, उन पावन चरणो का जिसे सहारा मिल गया,

समझ लो कि वह तिर गया। जिसने स्वच्छ हृदय से एक बार भगवान् के प्रति परिपूर्ण आस्था धारण कर ली, ससार-सागर से उसका निस्तार हो गया।

कहा जा सकता है कि कल यह बतलाया गया था कि कोई-कोई जीव एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लेने पर भी गिर जाते हैं। चौथे गुणस्थान से च्युत होकर पहले गुणस्थान मे पहुँच जाते है। ऐसी स्थिति मे यह कैसे कहा जा सकता है कि एक बार भगवान् के प्रति आस्था उत्पन्न हो जाने से जीव का निस्तार हो ही जाता है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि सम्यक्त्व प्राप्त करके भी कई जीव पतित हो जाते हैं, मगर उनका वह पतन स्थायी नही होता। जैसे भवर मे पडा हुआ मनुष्य उतराता है और डूबता है और फिर उतराता है, इसी प्रकार कोई-कोई जीव सम्यक्त्व पाकर फिर मिथ्यादृष्टि बन जाता है फिर भी एक बार सम्यक्त्व का रसास्वाद करने पर उसकी आत्मा मे कुछ ऐसे अव्यक्त सस्कार रह जाते है, जिनके कारण वह अनन्त काल तक मिथ्यादृष्टि नही रह सकता। समय आने पर वह निश्चित ही फिर सम्यक्त्व प्राप्त करता है और अपनी आत्मा का उद्धार कर लेता है। अतएव भगवान् के चरणो का आश्रय लेने से एकान्त उद्धार होता है, इस कथन मे कोई अतिशयोक्ति नही है।

वास्तविक बात यह है कि सम्यक्त्व और मिथ्यात्व आदि का कथन गहन है। उसे भलीभाँति समझने की आवश्यकता है।

भाइयो! जो जीव अनादि काल से मिथ्यात्व मे फँसे हुए

है, उन्हे सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याय, आर्य क्षेत्र मे जन्म, सद्गुरु का समागम आदि वाह्य निमित्त मिलने पर सम्यक्त्व प्राप्त करने की योग्यता आती है । जिसकी भवस्थिति परिपक्व हुई होती है सामान्यतया उसमे कुछ-कुछ समभाव आने लगता है । उसके हृदय मे स्वाभाविक तौर पर करुणा का सचार होने लगता है । उसमे धर्म के प्रति प्रीति और ससार के प्रति उद्वेग का भाव उत्पन्न होने लगता है । फिर काललब्धि आने पर वह जीव तीन करण करता है । जब उसे समकित रूप महामूल्यवान् रत्न हाथ लगता है ।

काललब्धि क्या चीज है, इसे भी थोडे मे सुन लीजिए । आपने कभी कोई बडी नदी देखी होगी तो यह भी देखा होगा कि उस नदी के प्रवाह मे टक्करे खाते-खाते बहुत-से पत्थर एकदम गोलमटोल और चिकने हो जाते है । वे ऐसे गोलकार हो जाते हैं, मानो किसी कुशल कारीगर ने उनमे गोलाई उत्पन्न कर दी हो और साथ ही चिकनापन भी ला दिया हो मगर उन पत्थरो को कोई कारीगर नदी मे बैठकर गोलाकार नही बनाता । वे तो पानी के प्रवल प्रवाह मे टक्करे झेलते-झेलते और न जाने कहाँ से बहते-बहते गोलाकार हो जाते है । इसी प्रकार ससारी जीव अनादि काल से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि नाना पर्यायो और यौनियो मे परिभ्रमण करता--करता और अकाम-निर्जरा करता--करता कभी पुण्योदय से समनस्क पचेन्द्रिय पर्याय प्राप्त करता है । बस, इसी को काललब्धि कहते है । काललब्धि भी सम्यक्त्व की प्राप्ति मे वाह्य कारण है ।

जब काललब्धि प्राप्त हो चुकती है तो आत्मा मे तीन

प्रकार के करण अर्थात् परिणाम उत्पन्न होते हैं। उनके नाम हैं—(१) यथाप्रवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण और (३) अनिवृत्तिकरण।

जिस करण के प्रभाव से आयुकर्म को छोड़ कर शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि सात कर्मों की स्थिति एक कोडा-कोडी सागरोपम से भी कुछ कम रह जाती है, वह यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है।

यथाप्रवृत्तिकरण करने पर आत्मा की शक्ति कुछ बढती है। इसके पश्चात् जब पहले बतलाई हुई कुछ कम कोडाकोड़ी सागरोपम की स्थिति मे से भी एक मुहूर्त्त की स्थिति और भी कम हो जाती है और जब मिथ्यात्व के प्रति हेयता और सम्यक्त्व के प्रति उपादेयता का भाव उत्पन्न हो जाता है, सम्यग्ज्ञान को जीव ग्राह्य और मिथ्याज्ञान को अग्राह्य समझने लगता है, तब जीव का वह परिणाम अपूर्वकरण कहलाता है। ऐसा परिणाम उस जीव मे पहले कभी नही हुआ था, यह एकदम निराला और अभूतपूर्व परिणाम होता है। इस कारण शास्त्र मे इसे अपूर्व-करण नाम दिया गया है।

अपूर्वकरण प्राप्त कर लेने पर भी जीव को सम्यक्त्व प्राप्त नही हो जाता। सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए उसे अनिवृत्तिकरण नामक तीसरा करण करना पडता है। कर्मों की अपूर्वकरण करते समय जो स्थिति शेष रही थी, उसमें से भी जब एक मुहुर्त्त और कम हो जाती है, तब अनिवृत्तिकरण होता है। अनिवृत्तिकरण की प्राप्ति हो जाना ही ग्रंथिभेद कहलाता है। ग्रंथिभेद का मत-लब यह है कि आत्मा मे राग और द्वेष की जो मजबूत गाठ

अनादिकाल से बंधी हुई होती है, वह इस करण के प्राप्त होते ही खुल जाती है। अर्थात् राग-द्वेष मे शिथिलता आ जाती है। बस, यह अनिवृत्तिकरण करना या ग्रन्थिभेद करना ही सम्यक्त्व को प्राप्त करना है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर आत्मा में एक विलक्षण प्रकार की निर्मलता आ जाती है। सम्यग्दृष्टि जीवन की ज्योति दिव्य हो जाती है। वह हेय और उपादेय भावो का भलीभांति पृथक्-करण कर लेता है।

भाइयो ! इस कथन से आप समझ गये होगे कि जैसे पिता से पुत्र को विरासत मे धन-सम्पत्ति बिना कमाये ही मिल जाती है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नही मिल सकता। चाहे कोई सम्यग्-दृष्टि का पुत्र हो, चाहे देशविरति वाले श्रावक का पुत्र हो, वह विरासत मे सम्यग्दर्शन नही पा सकता। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए अपने आपको ही पुरुषार्थ करना पडता है।

सम्यग्दर्शन के अनेक प्रकार से अनेक--अनेक भेद किये गये हैं। उन सब का वर्णन मैं अभी नही करूंगा। मगर विषय चल पडा है तो थोड़े मे कुछ कहता हूँ। सम्यक्त्व के प्रधान दो भेद हैं-निश्चय सम्यक्त्व और व्यवहार सम्यक्त्व। निश्चय सम्य--क्त्व लेने और देने की वस्तु नहीं है। न उसे कोई किसी को दे सकता है और न कोई किसी से ले ही सकता है। निश्चय सम्यग्-दर्शन अखण्ड और अविकल्प आत्मा की एक आन्तरिक अनु--भूति है। वह पूर्णरूप से आत्माश्रित है, निरपेक्ष है। व्यवहार सम्यग्दर्शन पराश्रित है और सविकल्प है। अठारह

दोषो से रहित, सर्वज्ञ, वीतराग अरिहन्त भगवन्त पर, पंच-महाव्रतो के तथा समितियो और गुप्तियो का समीचीन रूप से पालन करने वाले निर्ग्रन्थ गुरुओ पर और वीतरागप्ररूपित धर्म पर पक्की श्रद्धा होना व्यवहार सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व के विषय मे कुछ दिनो पहले भी एक वार कुछ वाते वतलाई जा चुकी हैं और कल भी सक्षेप मे, गुणस्थानो की चर्चा करते हुए कहा गया था। मगर यह विषय ही ऐसा है कि इस पर जितना भी कहा जाय, थोडा है।

भाइयो ! ससार के वहुत से मनुष्य असत्य को ही सत्य समझे वैठे है। कोई सत्य और असत्य दोनो को समान समझते हैं। उनमे इतना विवेक नही है कि वे सत्य और असत्य में भेद कर सके। उनके लिए गुड और गोवर समान है। उन्हे ईश्वर का नाम जपना है तो जपेंगे, भले ही वह रागी हो तो भला और वीतराग हो तो भी भला। उन्हे साधु की सेवा करनी है, फिर भले ही कोई गाजा पीने वाला हो, चरस पीने वाला हो, अभक्ष्य-भक्षण करने वाला हो अथवा महाव्रत धारी हो, निर्ग्रन्थ हो ! उनके लिए सव वरावर है। उसे धर्म का नाम चाहिए, फिर भले ही वह कैसा भी क्यो न हो ! जीवहिसा मे भी वह धर्म मानता है ! ऐसी श्रेणी के लोगो को, कल वतलाया गया था कि, शास्त्र मे मिश्रदृष्टि कहते है। असत्य धर्म को ही सत्य समझने वाले मिथ्या-दृष्टि हैं और सत्य-असत्यमय, विवेक शून्य दृष्टि मिश्रदृष्टि है। सत्य को ही सत्य समझने वाले सम्यग्दृष्टि कहलाते है। इसमें से आप अपना पद स्वय चुन लीजिए।

सम्यग्दर्शन दूसरे दृष्टिकोण से तीन प्रकार का है—क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक । क्षायिकसम्यग्दर्शन सात प्रकृतियो के क्षय से होता है और औपशमिक सात प्रकृतियो के उपशम से । जब उदय प्राप्त मिथ्यात्वमोहनीय का और अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि का क्षय हो जाता है, आगे उदय मे आने वाली यही प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती हैं और देशघाती सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होता है, तब क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का एक भेद वेदक सम्यक्त्व है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाला जीव सम्यक्त्वमोहनीय नामक प्रकृति के अन्तिम पुद्गल के रस का भोग कर रहा होता है, उस समय का उसका सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्व कहलाता है ।

क्षय और उपशम होना क्या चीज है, इनको भी समझ लेना चाहिए । क्षय का अर्थ है कर्मप्रकृति में से फल देने की शक्ति का सर्वथा नष्ट हो जाना । कल्पना कीजिए कि आपने किसी बरतन मे पानी भरा । वह पानी मैला और गन्दला है । पानी भर कर आपने बरतन जमीन पर रख दिया । कुछ देर मे पानी का मैल नीचे बैठ गया । तब आपने उसे धीरे से उठाया और ऊपर-ऊपर का स्वच्छ पानी किसी दूसरे बरतन मे उंडेल लिया । दूसरे बरतन मे जो पानी उँडेला गया है,उसमे वह मैल फिर कभी नही आएगा । इसी प्रकार जो कर्म आत्मप्रदेशो से बिलकुल दूर हो गया है, उसका क्षय होना कहलाता है ।

उपशम का मतलब शान्त होना है । पूर्वोक्त उदाहरण मे

गदले पानी का मैल नीचे जमा हुआ है और ऊपर साफ-स्वच्छ पानी है। यह उपशम अवस्था है। इस अवस्था मे भी पानी मे स्वच्छता तो आ जाती है, मगर दवी हुई मलीनता भी रहती है। उस बरतन मे जरा-सी ठोकर लग जाय और वह हिल जाय तो फिर वह मैल सारे पानी में फैल जायगा और पानी फिर ज्यो का त्यो गदला हो जायगा। इसी प्रकार कभी-कभी मिथ्यात्वमोहनीय आदि सात प्रकृतियो को जीव उपशान्त कर देता है--दवा देता है, किन्तु अन्तमुहूर्त्त के वाद वे फिर उभर आती है,। जव उन प्रकृतियो का उपशम हो जाता है तो सम्यक्त्व उत्पन्न हो जाता है और जब उन प्रकृतियों का उदय होता है तो सम्यक्त्व चला जाता है। इसी कारण औपशमिक सम्यक्त्व सिर्फ अन्तमुहुर्त्त काल तक ही ठहरता है। क्षायिकसम्यक्त्व प्राप्त होने पर यह खतरा नही रहता। क्षायिक सम्यक्त्व एक वार उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नही हो सकता, क्योकि वह सम्यक्त्व की वाघक प्रकृतियो के समूल नष्ट होने पर उत्पन्न होता है। ऐसा जीव, जिसने क्षायिकसम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है, तीन-चार भव करके ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कल्पना कीजिए, किसी जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त होने से पहले युगलिया की आयु बांध ली। फिर उसे क्षायिकसमकित प्राप्त हो गया। एक बार वँधा हुआ आयुकर्म छूटता नही है। अतएव जीव युगलिया के रूप मे उत्पन्न होगा। इस प्रकार दो जन्म हो गये। तीसरे भव मे वह देवलोक मे उत्पन्न होगा और फिर चौथा भव मनुष्य का धारण करके मोक्ष प्राप्त कर लेगा। ऐसी अवस्था कभी-कभी ही होती है। आम तौर पर तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि तीसरे भव मे मोक्ष पा लेता है। यह क्षायिक सम्यक्त्व की विशेष महिमा है!

सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर यो तो ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो ही जाता है, किन्तु सम्यग्दृष्टि को चाहिए कि वह अपने ज्ञान की वृद्धि करता रहे। बिना विशेष ज्ञान प्राप्त किये प्रयोजन की पूरी सिद्धि नही होती, क्योकि ससार मे नाना मत- मतान्तर हैं, जुदा-जुदा दृष्टिकोण हैं। अतएव विशेष बोध के बिना वे समझ मे नही आते।

आषाढ का महीना लगने मे पहले तो गाँव मे जाने की पगडडी जल्दी मिल जाती है, किन्तु श्रावण और भाद्रपद महीनो मे, जबकि वर्षा हो जाती है और घास उग आता है, पगडडी के निशान मिट जाते है और रास्ता पाना कठिन हो जाता है। इसी तरह ससार मे बेशुमार मत-पंथ उग पडे हैं और उन सबके शास्त्र भी तरह-तरह के तथा परस्पर विरोधी हैं। अतएव साधारण आदमी को यह समझना कठिन हो जाता है कि सच्चा रास्ता यह है या वह है? या कौनसा है?

ऐसे भी ग्रथ मौजूद हैं जो बतलाते हैं कि मास और मदिरा का सेवन करने मे धर्म नही है और ऐसे भी ग्रंथ मिल सकते हैं जो इनके सेवन मे धर्म बतलाते हैं। कई लोग मास को महाप्रसाद मानते हैं। कही-कही देवीजी का महाप्रसाद बडी श्रद्धा-भक्ति के साथ खाया जाता है! यही सब घास का उगना है। यह घास बहुत उग गया है पगडन्डी बिगड गई है। सत् शास्त्र समझ मे आना बहुत मुश्किल है। जिधर जाओ उधर ही ग्रहों में चक्कर है।

उन ग्रंथो मे कुछ बाते तो अच्छी लिख दी गई है, जैसे

झूठ न बोलना, चोरी न करना, परस्त्री को माता समझना आदि और गेहुओ मे ककर भर दिये हैं कि देवीजी को भेंट चढाने के लिए जानवरो का घात किया जाय तो कोई हानि नहीं है ! कोई पाप नही है ! कोई जानवरो को मार-काट रहा है या आग मे जला रहा है तो वह भी धर्म समझा जाता है ! लोग समझते हैं कि मारा हुआ बकरा हमे बहिश्त मे पहुँचा देगा ! जैसे गेहुओ मे ककर मिला दिये हो, इसी प्रकार ग्र थो मे अच्छी-अच्छी बातो के साथ बुरी बाते ठूस दी गई हैं। साधारण ज्ञान वाला आदमी उन्हे कैसी समझ सकता है !

एक साहूकार की लडकी का विवाह हुआ। वर्ष, दो वर्ष व्यतीत होने पर वह गर्भवती हुई। लडकी जब गर्भवती होती है तो कही-कही सासरे मे और पीहर मे भी गीत गाये जाते हैं। कुछ दिनो बाद लडकी के पिता ने उसके सासरे वालो को, भेंट देने के लिए सामान तैयार किया। पिता ने विचार किया-आज मैं जीवित हूँ तो अपनी बेटी को मन चाही भेंट दे रहा हूँ। मगर मौत का क्या भरोसा है ? वह किसी समय भी आ सकता है। अगर मैं जल्दी मर गया तो मेरे पीछे कौन उसे भेंट देगा ? और लडकी के पति की भी जिन्दगी का क्या ठिकाना है ! वह भी कभी न कभी विधवा तो होगी ही। तो इन वस्त्रो के साथ विधवा की भी एक पोशाक क्यो न भेज दूँ ? आगे-पीछे कभी न कभी तो भेजनी ही पडेगी ! तो फिर अपनी मौजूदगी मे, अपनी पसन्दगी का वेष भेज देने मे ही दूरदर्शिता है !

इस प्रकार सोच कर उस सेठ ने लगभग पचास हजार के वस्त्रो और आभूषणो के साथ विधवा के योग्य एक पोशाक

भी रख दी । उसने लम्बी कॉचली, काला ओढना और काला लँहगा–घाघरा भेज दिया ।

सामान लडकी के सासरे पहुँचाने के लिए साहूकार स्वयं गया । उस सामान को देखने के लिए पञ्च इकट्ठे हुए । उन्होने सब थाल देखते-देखते अन्त मे काले कपडे वाला थाल देखा तो साहूकार से पूछा—आपने यह वेष क्यों रक्खा है ? साहूकार ने कहा—सुनिये साहव ! आज तो मैं जिन्दा हूँ और कल शायद नही रहूँ । फिर कौन क्या करेगा ? यह तो जानते ही है कि वेटी कभी न कभी विधवा होगी । फिर दूरदर्शिता से ही काम क्यो न लिया जाय ? यह सोच कर एक वेष यह भी रख दिया है !

भाइयो ! उस सेठ ने वह वेष रख कर पचास हजार पर पानी फेर दिया ! सब पञ्च उसकी वात सुन कर उसकी मूर्खता पर आश्चर्य करने लगे । सब ने उसे बुरी तरह धिक्कारा !

भाइयो ! कई शास्त्र ऐसे ही वने हुए है । वे उपदेश करते है कि सत्य ही वोलना चाहिए और झूठ नही वोलना चाहिए, मगर कभी ब्राह्मण को लाभ होता हो तो झूठ वोल देने मे भी हानि नही है :—

ब्राह्मणार्थेऽनृतं ब्रूयात् ।

ब्राह्मण के फायदे के लिए झूठ वोल दे ।

यह सब पचास हजार के माल के साथ लम्बी काचली है ! अठारह बाते अच्छी हो और एक वात बुरी हो तो सभी वाते विगड़ जाती हैं ! इन बुरी और अच्छी वातो का विवेक करने के

लिए शास्त्रो को पढने की आवश्यकता है। विशेष ज्ञान करने की आवश्यकता है। इसके बिना सम्यक्त्व की निर्मलता टिकना भी कठिन हो जाता है।

अनादि काल से जीव नरक और निगोद आदि पर्यायो में भटक रहा है। नाना प्रकार के दु:खो को सहन कर रहा है। असीम पुण्य का उदय हुआ और किसी प्रकार सामग्री जुटी तो अनमोल रत्न पाया। मगर कुसगति के फेर मे पड कर या मिथ्या ग्र थो का पठन करके उसे फिर गँवा दिया। ऐसे जीवो को उस मूर्ख के समान समझना चाहिए जो पाये हुए चिन्तामणि को समुद्र मे फेंक देता है!

भाइयो! यह संसार मोह रूपी महामहिम महीपति का कारागार है! अधिकाश प्राणी इसी कारागार मे आबद्ध होकर कराल कष्ट भुगत रहे है! इस कारागार का पहरेदार अज्ञान है. यह राग और द्वेप के दो मजबूत किवाडों से युक्त है। मिथ्यात्व का ताला लगा हुआ है। इसमे से सम्यक्त्व रूपी रत्न को निकाल कर लाना है! कितना कठिन है यह काम? मगर जिन्होने इस कठिन काम को भी कर डाला है--सम्यक्त्व जिन्हे प्राप्त हो गया है, उनके पुण्य की कोई सीमा नही है। ऐसा पुण्यशाली बनकर फिर पुण्यहीन मत बनना। फिर ज्यों के त्यो दीन हीन बनोगे तो फिर चौरासी के चक्कर मे पड़ोगे।

आचारांग मे एक दृष्यन्त है। किसी जगह एक सरोवर था और उसमे कच्छ-मच्छ रहते थे। वह सरोवर कमल के पत्तो से और दूसरे प्रकार की वनस्पतियों से आच्छादित हो रहा था।

सर्वत्र काई छाई हुई थी। उसमे का कोई जलचर जीव आकाश की ओर नही देख सकता था।

एक वार शरदपूर्णिमा आई। उस दिन अचानक खूब तेजी से आधी चली। एक जगह पानी पर से पत्ते हटे और काई भी दूर हुई। छेद सा हो गया। घूमता-घूमता एक कछुवा उस छेद के पास पहुँचा। उसने अपनी गर्दन वाहर निकाली। जिन्दगी मे पहली वार उसे चन्द्रमा दिखाई दिया। चन्द्रमा तो हम लोग कहते है। कछुवा वेचारा क्या जाने कि यह चन्द्रमा है, इसे सुधा-कर कहते हैं और यह कवियो की भावना मे अमृत-रस भर देता है, काव्यकारो की कल्पना को जगा देता है। उसे नक्षत्रो के वीच चमकते हुए चन्द्रमा को देख कर प्रसन्नता हुई और आश्चर्य भी हुआ। उसका मन प्रफुल्लित हो गया। आप सदा चन्द्रमा को देखते हैं और इस कारण आपको उसके प्रति इतना आकर्षण नही है, परन्तु कल्पना कीजिए कि जिस प्राणी ने जीवन मे पहली वार चन्द्रमा को देखा हो, उसे वह कितना आमोदजनक, कितना मनोहर, सुन्दर और प्रिय न लगा होगा? कछुवे ने चन्द्रमा की अनुपम छटा देख कर सोचा यह अनोखी और अद्भुत सुन्दर चीज मैं अपने कुटुम्बियो को भी तो दिखला दू!

कछुवा अपने कुटुम्बियो के पास दौडा। उनसे कहा—चलो मेरे साथ, तुम्हे आज का अपूर्व दृश्य दिखलाता हू। सब कुटुम्बी उसके साथ आये। परन्तु उस समय तक वह छेद वन्द हो चुका था, काई फिर छा गई थी, पत्तो ने पानी को पहले की तरह ही ढँक लिया था।

कुटुम्बी बोले—गपोडी शख कही के ! कहाँ है तुम्हारा अपूर्व दृश्य ! झूठ बोल कर धोखा देते हो ?

कछुवे ने बहुत सफाई दी, मगर उन्हे विश्वास नही आया। उसने कहा—मैने इतनी सुन्दर छटा देखी थी कि कह नही सकता ! मगर अब वह छेद ही बन्द हो गया है तो मैं क्या करूँ।

यही बात सम्यक्त्व के विषय मे भी कही जा सकती है। सम्यक्त्व, चन्द्रमा के समान शीतलता देने वाला है, अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाला है, आत्मा मे अपूर्व आह्लाद उत्पन्न करने वाला है और अमृत-रस से परिपूर्ण है। उसे पाकर खोना मत। मोह-माया मे उलझोगे तो उसे खो बैठोगे। धर्म को छोड कर अधर्म के पथ पर चला जाना हितकर नही है।

सम्यक्त्व की महिमा अपार है। संसार-सागर मे डूबने वालो के लिए यही महान् अवलम्बन है। सम्यक्त्व प्राप्त होने पर ही भगवान् के चरणो का आश्रय प्राप्त होता है। आज सम्यक्त्व के सम्बन्ध मे थोड़ा-सा जो विवेचन किया है, उस पर विचार करो और उसके वास्तविक स्वरूप को समझने का यत्न करो।

इस विवेचन से उस शका का समाधान हो जाना चाहिए कि जो एक बार भगवान् के चरणो का अवलम्बन ले लेता है, उसका निस्तार कैसे हो जाता है। उपशमसमकित प्राप्त होने पर यद्यपि वह अन्तर्मुहूर्त्त तक ठहर कर ही चला जाता है, मगर आत्मा में कुछ ऐसे विलक्षण सस्कार छोड जाता है कि उस आत्मा का, एक नियत काल मर्यादा मे, अवश्य ही कल्याण होता है। इसी अपेक्षा से यह कहा गया था कि भगवान् ऋषभदेवजी

के चरणो का सहारा लेने वाले का निस्तार हुए विना नहीं रह सकता ।

भविष्यदत्त–चरित—

भविष्यदत्त के भाग्य के आडे आने वाले कुछ पत्ते हट गये तो उसे सुख की प्राप्ति हो गई । अचानक आई हुई समस्त कठिनाइयाँ उसी प्रकार दूर हो गई जैसे आधी आने पर मेघ हट जाते हैं ।

तिलक सुन्दरी कहती है—नाथ ! आपके सुख मे सहायक बनने मे ही मेरी कृतार्थता है । कदाचित् सुख मे सहायक न वनूं तो कम से कम बाधक तो वनना ही नही चाहती । अतएव जिस प्रकार आपके चित्त को सुख और सन्तोष हो, वैसा ही कीजिए अगर आप माताजी से मिलना चाहते हैं तो इसमें हानि ही क्या है ? बल्कि यह तो उचित और आवश्यक भी है । माता का पुत्र के प्रति और उसमें भी इकलौते पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है, उसकी समता नहीं हो सकती । वह अनुपम है । उस स्नेह का समुचित प्रतिदान देना, योग्य पुत्र का कर्त्तव्य है ।

प्रियतम ! मुझे आप अपनी इच्छापूर्त्ति मे बाधक मत समझिए । बल्कि आपकी माता अब मेरी भी माता ही है । जिन्होंने आपको जन्म देकर मुझको महान् सौभाग्य प्रदान किया है, उनका मुझ पर भी कम उपकार नहीं है । उनकी सेवा करना मेरा परम कर्त्तव्य है । मैं अपनी माता के प्यार से वचित होकर उन माता का प्यार पाना चाहती हूँ । यह सारा शहर अनुपम है और आपको दहेज मे मिला है । यह भडार भरे पडे हैं । इसमे से

जो आप लेना चाहे ले लीजिए। फिर अपने माता-पिता से मिलिये। मैं भी उनके दर्शन करके भाग्य को धन्य समझूंगी।

यह कह कर तिलकसुन्दरी ने भंडार खोल दिया। भंडार ऐसी बहुमूल्य वस्तुओं से भरा हुआ था कि न पूछिए बात! ऐसा जान पड़ता था कि स्वर्ग का सारा वैभव किसी ने लाकर इसी भंडार में भर दिया है। रत्नों के सुन्दर-सुन्दर पलंग, सोने की थालियाँ, रत्न जड़ित सिंहासन, हीरे-पन्ने जड़े हुए जरी के चिलकते हुए वस्त्र और मोतियों के वन्दनवार! विविध प्रकार के अनमोल आभूषण! सभी कुछ दिखलाती हुई तिलकसुन्दरी कहने लगी-यह सब आपके सामने पड़ा है। सभी कुछ आपका है। इसमें से जो जो आपको अच्छा लगे, ले लीजिए।

भविष्यदत्त ने कहा--मैं अपनी पसन्दगी की चीजें ले लूं और तुम अपनी पसन्दगी की चीजें यहीं छोड़ चलोगी?

तिलकसुन्दरी ने मुस्किरा कर कहा-मेरी पसन्दगी की अनूठी चीज एक ही थी और वह मैं पहले ही ले चुकी हूँ।

भविष्यदत्त—वह अनूठी चीज कौन सी थी?

तिलक०—वह चीज थी इस विशाल भण्डार का स्वामी। मैंने भंडार के स्वामी को ही ले लिया है। मुझे उसी में सन्तोष है। उससे अधिक सुखद मेरे लिए और कोई वस्तु नहीं हो सकती। उसे पाकर मैं सभी कुछ पा चुकी हूँ।

भविष्यदत्त, तिलकसुन्दरी के स्नेहपूर्ण आशय को समझ गया। उसके चेहरे पर प्रसन्नता की मुस्कराहट दौड़ गई।

वहिनो ! तिलकसुन्दरी के कथन मे वहुत गूढ भाव छिपा है और उसे यदि तुम भलीभाति समझ जाओ और अपनी वृत्ति को भी वैसा ही वना लो तो तुम्हारी जिंदगी वहुत सुखमय वन जायगी।

महिला-समाज की आभूषण--प्रियता को कौन नही जानता ? वहिनो को गहनो से इतना प्रेम है कि कई बहिनें गहनो के लोभ मे पड कर अपने जीवन को भी वेच देती हैं और कई अपने जीवन को कटकमय बना लेती हैं ! सासू-बहू और देवरानी-जिठानी मे अकसर गहनो के लिए ही क्लेश होता है और जहाँ क्लेश बना रहता है वहाँ परिवारिक जीवन अत्यन्त अशान्त और व्याकुल हो जाता है ! मगर विवेकशालिनी महिला जेवर या वस्त्र आदि किसी भी वस्तु के लिए अपने परिवार मे रार-तकरार नही उत्पन्न करती। वह समझती है कि मेरा असली सौभाग्य मेरे पति ही हैं। पति का स्नेह प्राप्त है तो उससे वढ कर प्राप्त करने योग्य और कौन-सी चीज हो सकती है ? पतिव्रता स्त्री पति को ही अपना आभूषण और श्रृंगार समझती है। उससे अपने गृहस्थिक सुख की सीमा मानती हैं। तिलसुन्दरी ऐसी ही विवेकवती स्त्री थी। उसने चतुराई के साथ यह प्रकट कर दिया कि उसके लिए सवसे ज्यादा प्रिय वस्तु पति है। पति के सामने ससार का सारा वैभव नगण्य है, तुच्छ है !

यह भावना कितनी ऊँची है ! बहिनो, इसे समझो और गहनो के प्रति तुम्हारे हृदय मे जो आकर्षण है, उसे कम करो। गहनो के बदले सद्गुणो को अपनाओ। सद्गुणो से अपने आपको विभूपित करो। ये जड आभूपण तुम्हारे सौन्दर्य को कभी विकृत

करने वाले भी है और सद्गुणो के आभूषण बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य को विकसित करने वाले हैं। सद्गुण रूपी आभूषणो से तुम्हारी आत्मा भी उद्भासित हो उठेगी। परलोक तो सुधरेगा ही, पर इहलोक भी स्वर्ग बन जायगा ! सद्गुणो की बदौलत तुम्हारे परिवार मे आनन्द ही आनन्द व्याप्त हो जायगा । ऐसा आनन्द आभूषणो से कदापि नसीब नही हो सकता। अतएव बहिनो ! समझो, सोचो, विचारो और गहनो की अत्यधिक ममता को कम करके सद्गुणों की ओर ध्यान दो।

भविष्यदत्त को उस भंडार की जो-जो वस्तुएँ अच्छी लगी वह सब उसने छाँट ली। उनमे हजारो वस्तुएँ थी और सभी मूल्यवान् एव सारयुक्त थी। दोनो ने मिल कर हस्तिनापुर के लिए रवाना होने की तैयारी की। सामान लेकर वे दोनो समुद्र के किनारे गये । वहाँ एक तम्बू तान लिया और किसी जहाज के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

भाइयो ! ससार मे ऐसे लोगो की कमी नही है जो वम्बूल वोकर आम खाना चाहते है। भला ऐसा कभी हो सकता है? विषपान करके चिरंजीवन की अभिलाषा करना घोर मूर्खता नही तो क्या है ? इसी प्रकार पाप करके सुखी वनने की अभिलाषा भी मूर्खतापूर्ण ही कही जा सकती है । जो लोग पापाचार करके सुख पाने की इच्छा रखते हैं, वे अपनी आत्मा को ही धोखा दे रहे है। जानबूझ कर अपने भविष्य को विगाडना दूरदर्शी और विवेकवान् पुरुषो का काम नही है। किन्तु कभी-कभी मनुष्य ऐसा क्षुद्रदृष्टि बन जाता है कि वह सिर्फ वर्त्तमान को देखता है और आने वाले विराट भविष्य की उपेक्षा कर देता है। इसका परिणाम

कभी-कभी वहुत जल्दी मिल जाता है, कभी-कभी देर से परन्तु इसी जीवन मे भोगना पड़ता है और कभी आगामी जीवन में भी भुगतना पडता है।

इस कथन की साक्षी वन्धुदत्त है । वन्धुदत्त ने द्वेष और लोभ से प्रेरित होकर अपने भाई के साथ अनीतिपूर्ण व्यवहार किया। इससे उसके भाई का तो कोई विगाड नही हुआ, पर उसे अपने कर्म का फल आप ही भोगना पडा ।

वन्धुदत्त भविष्यदत्त को अकेला छोड कर चलता वना था। वह अपनी सफलता से प्रसन्न होता हुआ आगे वढा । चलते-चलते, अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचा। वहाँ उसने वडे परिमाण मे व्यापार किया और खूब मुनाफा पाया । उसके साथ गये हुए दूसरे व्यापारियो ने भी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्योपार्जन किया।

व्यापार कर चुकने पर वन्धुदत्त अपने साथियो के साथ हस्तिनापुर की ओर रवाना हुआ । चलते--चलते, जहाज चलाने वालो के नायक को समुद्र में कुछ डाकू आते दिखाई दिये । उन्हे देखकर नायक ने सब को चेतावनी दे दी–आप सब लोग सावधान हो जाइए । समुद्री डाकू इधर आ रहे है और अपने जहाज पर हमला करने वाले हैं।' इसके बाद खतरे की घण्टी वजा दी गई और सब लुटने के लिए तैयार हो गए ।

यह विपत्तिमय स्थिति देख कर वन्धुदत्त के साथी व्यापारी साहसहीन हो गये, घवरा उठे और कहने लगे–हे भगवान् हम कैसी आफत मे पड गये ! यहाँ से कही भाग कर भी तो नही

जा सकते ! हाय, हमारा धन भी जायगा और प्राण भी जाएँगे ! अरे, किसी तरह प्राण बच जाएँ तो भी गनीमत ! समझ लेंगे कि यही बहुत कुछ पा लिया । न जाने किस बुरी टेम मे परदेश के लिए रवाना हुए थे ! हाय, दुर्बुद्धि सूझी और घर का धन्धा छोड कर परदेश चल पडे । अब वह भी गया और यह भी गया । धोबी का कुत्ता घर का रहा न घाट का !

भाइयो ! आपने एक कुत्ते की कहानी सुनी है ? नदी के पुल पर होकर एक कुत्ता जा रहा था । उसके मुँह मे आधी रोटी थी । कही से मिल गई थी और उसे मुँह मे दबाये वह पुल को पार कर रहा था । अचानक उसकी दृष्टि पुल के नीचे भरे हुए पानी की ओर गई । उसे अपनी परछाई दिखाई दी । मूर्ख कुत्ते ने यह तो समझा नही कि यह मेरी परछाई है, वह समझा कि नीचे कोई दूसरा कुत्ता है और उसके मुँह मे भी रोटी है । कुत्तो का पारस्परिक द्वेष तो प्रसिद्ध ही है । वह अपने सजातीय को कभी सहन नही करता । फिर यहाँ तो रोटी का प्रलोभन भी था । कुत्ते ने सोचा-अगर मैं उसकी आधी रोटी छीन लूँगा तो मेरे पास पूरी रोटी हो जायगी ! यह सोचकर कुत्ता जोर से भौंक कर पानी मे कूद पडा । भौंकते ही उसके मुँह की रोटी पानी में जा गिरी और वह स्वय पानी मे गिरकर पछताने लगा । किसी ने कहा है –

आधी छोड़ एक को धावे,
आधी रहे न पूरी पावे,

हाँ, तो वे व्यापारी सोचने लगे कि हमने अपने घर रहकर

थोडे में ही सन्तोप कर लिया होता तो आज प्राण गँवाने का प्रसग उपस्थित न होता ।

व्यापारियो की यह स्थिति देखकर बन्धुदत्त ने कहा—साथियो ! घबराओ मत और हल्ला गुल्ला भी बन्द करो । जो होना होगा सो होगा ।

इतने मे डाकू समीप आगये और बन्धुदत्त के जहाज में कूद पडे । उन्होने सब को लूट लिया । सब के कपडे उतरवा लिये, यहाँ तक सब को नगा कर दिया ! डाकू फुर्ती के साथ आये लूट-मार करके फुर्ती के साथ ही चलते बने ।

उनके चले जाने पर सब व्यापारी कहने लगे—कवर साहब हम तो बुरी तरह मारे गये । आपकी बदौलत हम कङ्गाल हो गये! इस प्रकार कह कर कई व्यापारी रोने लगे । कइयो ने कहा—इस पापी के साथ आने का नतीजा भोगना पडा ! कोई बोला-जब इसने अपने भाई भविष्यदत्त के साथ धोखा किया तभी हमने समझ लिया था कि इसने अपने भविष्य के लिए काँटे बो लिये हैं । इस प्रकार सभी लोग बन्धुदत्त को जली—कटी सुनाने लगे । हालाकि इस घटना मे बन्धुदत्त का कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं था, फिर भी लोग समझते थे कि यह सब इसी के पाप का फल है । कहावत है—एक पापी नाव को मँझधार मे ले डूबता है ! बन्धु-दत्त के व्यापारी उसे बुरी तरह कोसने लगे ।

आखिर जहाज चला और चलते-चलते वही आ पहुँचा, जहाँ भविष्यदत्त अपनी जहाज की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा था । जहाज के पांच सौ वणिक् भूखे प्यासे नीचे उतरे । जगल मे इधर

उधर फलो की तलाश करने चल पडे। कोई किधर और कोई किधर निकल पड़ा।

भाइयो ! वास्तव मे यह सब पाप का फल है। जब आप दूसरे का बुरा चाहेगे और बुरा करेंगे तो आपका भला कैसे हो सकता है ? अतएव अगर अपना भला चाहते हो तो दूसरो का भला चाहो। हराम का माल खाने की इच्छा मत करो और धर्मादे की सम्पत्ति भी हडपने की इच्छा न रक्खो। गरीवो को मत सताओ क्योकि:—

गरीब को मत सता, गरीब रो देगा।
गरीब की आह लगी तो जड़ मूल से खो देगा ॥

भाइयो ! गरीवो पर अत्याचार मत करो। निरपराध को कभी न सताओ। अभी तुम समझते हो कि हम शक्तिशाली हैं, साधन सम्पन्न हैं और इसी घमण्ड में आकर गरीव को कुचलते हो, किन्तु गरीब का दांव लगेगा तो क्या करोगे ?

मिट्टी कहे कुंभार से, तू मत खोदे मोय।
एक दिन ऐसा आयगा, दबोच लूंगी तोय ॥
लकड़ी कहे सुथार से, तू मत काटे मोय।
एक दिन ऐसा होयगा, फूंक चलूंगी तोय ॥

इसलिए किसी को असहाय और गरीब समझकर सताना उचित नही है।

जो सताएगा किसी को, वह सताया जायगा।
जो बीज जैसा बोयगा, वह फल भी वैसा पायगा ॥

अगर इतिहास की ओर दृष्टि डालोगे तो इस कथन की सचाई के लिए अनगिनत प्रमाण आपको अनायास ही मिल जाएंगे। रूस की जारशाही का इतिहास देखो, यूरोप के किसी राष्ट्र का इतिहास देखो। जब किसी ने गरीबो को सताया तो उसे बुरी तरह बदला चुकाना पड़ा। भारत मे भी गरीबो के दु:ख बढ रहे हैं। अमीर लोग अन्न की और वस्त्र की कमी के कारण अनुचित लाभ उठा रहे हैं और गरीब बेचारे बुरी तरह पिसे जा रहे हैं। आज वे साधनहीन हैं और अमीर उन पर मन चाहा अत्याचार कर सकते है। मगर हे अमीरो! कान खोल कर सुन लो। तुम्हे अत्याचार का फल भोगना पडेगा, भोगे बिना छुटकारा नही होगा। भारत मे क्रान्ति आई है। वह ऊपरी सिरे से आई है। अपने स्वार्थ मे मस्त रहने वाले और गरीब प्रजा के घोर परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाने वाले-प्रजा को दुखी देखकर भी उसकी उपेक्षा करने वाले राजाओ का राज्य चला गया! जमीदार और जागीरदार-जो प्रजा को चूसते आ रहे थे, खत्म हो रहे है! इस स्थिति को देख कर श्रीमन्तो को शीघ्र ही सबक सीख लेना चाहिए। समय अधिक नही है। अगर उन्होने प्रजा की गरीबी से अनुचित लाभ उठाना न छोड़ा, अनाज और वस्त्र को दबा-दबा कर, काले बाजार मे बेचना न त्यागा और गरीबो की सुख--सुविधा का विचार न किया तो अब की बार श्रीमन्तो की ही बारी है!

लोग कहते हैं कि भारतवर्ष में भी कम्यूनिस्टों का बल

बढता चला जाता है। परन्तु मैं समझता हूँ कि पूंजीपति अपनी अदूरदर्शिता के कारण साम्यवाद को न्यौता देकर बुला रहे हैं। गनीमत यही है कि साम्यवादी लोग हिंसक तरीको से काम लेने के कारण इस अहिंसा की भावना वाले देश मे पनप नही पा रहे हैं, नही तो पूंजीपति तो उसे बुलाने के लिए कमर कसे बैठे हैं। इस प्रकार उलटा चक्र चल रहा है। जिन्हे साम्यवाद से सबसे बडा खतरा है वही लोग अपने नासमझी भरे व्यवहार से उसे उत्तेजना दे रहे हैं! राजनीति पर भाषण करना हमारा काम नही है। मगर राजनीति का जीवन के दूसरे अगो के साथ आज इतना सम्बन्ध बढ गया है कि उसे सर्वथा छोड कर चला भी नही जा सकता। मेरे कहने का आशय यही है कि अगर आप धनी लोग, निर्धनो को सताना न छोडेंगे तो जल्दी ही उनका भी दाव आवेगा और फिर आपका सँभलना भी कठिन हो जायगा।

भाइयो! अगर आपने सम्यग्दृष्टि प्राप्त करली है तो आपके व्यवहार मे अनुकम्पा आनी ही चाहिए। अनुकम्पा के पात्र दुखिया प्राणी हैं। अतएव आप दीन--दुखी पर दया करो, उसके दु.ख को दूर करने का प्रयत्न करो, लोभ-लालच मे पड़कर उसके दु.ख को बढाओ मत। ऐसा करने पर आपका सम्यक्त्व स्थिर रहेगा और सुशोभित होगा। इससे धर्म की भी प्रतिष्ठा होगी और आपका भी कल्याण होगा। दूसरो को आनन्द देने का प्रयत्न करोगे तो आप भी आनन्द पाओगे।

२२-१०-४८ }

सम्यग्दृष्टि के लक्षण

स्तुति :

य: संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा—
दुद्‌भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे भगवान् ! सम्पूर्ण श्रुत के तत्त्व को जानने के कारण जिन्हे विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न हो गया है ऐसे स्वर्ग के नाथ इन्द्रो ने

भी आपकी स्तुति की है। उनके द्वारा की स्तुति तीनों लोकों के भव्य जीवो के चित्त को हरण करने वाली है ! उन्ही प्रथम जिनेन्द भगवान् ऋषभदेव की मैं भी स्तुति करूँगा !

भाइयो ! आचार्य महाराज ने यहाँ एक प्रकार से अपने ऊपर ही व्यंग किया है। जिन जिनेन्द्रदेव की स्तुति स्वर्ग लोक के नाथ, श्रेष्ठ अवधिज्ञान के धारक, सम्पूर्ण शास्त्रो के रहस्य को जानने वाले, अतिशय बुद्धिशाली, देवो के स्वामी इन्द्र महाराज अतिशय मनोहर और उदार शब्दो मे स्तुति कर चुके हैं, अब उनकी स्तुति मैं करूँगा ! आशय यह है कि मुझ जैसे अल्पज्ञानी के लिए जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति कर सकना सभव नही है, फिर भी मैं स्तुति करने का साहस कर रहा हूँ। ऐसा प्रकट करके स्तुतिकार ने जहा अपनी लघुता जाहिर की है वहीं भगवान् ऋषभदेव की महिमा भी प्रकट कर दी है। ऐसी महा महिमा वाले भगवान् ऋषभदेवजी को ही मेरा वार-वार नमस्कार हो।

भगवान् ऋषभदेव को यहाँ प्रथम जिनेन्द्र कहा है। इसका आशय यह नही समझना चाहिए कि उनसे पहले कभी कोई तीर्थङ्कर हुए ही नही है अथवा किसी को मुक्ति मिली ही नही है ! यह जगत अनादिकाल से है और अनादिकाल से ही इसमे तीर्थङ्कर होते आये हैं। मगर काल दो प्रकार का है-उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल। उत्सर्पिणीकाल को विकास का युग और अवसर्पिणीकाल को ह्रास का का युग कहा जा सकता है। उत्सर्पिणीकाल मे जीवो का शरीर, आयु, बल आदि क्रमश. बढता जाता है और, अवसर्पिणीकाल मे घटता जाता है। दोनो युगो के तीसरे और चौथे आरे मे तीर्थकरो की उत्पत्ति होती है

और वे पहले तपस्या करके केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त करते हैं। जब अरिहन्त अवस्था प्राप्त हो जाती है तो तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से और जगत् के भव्य जीवो के पुण्य प्रताप से धर्म का उपदेश देते हैं। प्रत्येक उत्सर्पिणी और प्रत्येक अवसर्पिणी काल मे यही रचना होती है। इस प्रकार क्रम से आज तक अनन्तानन्त उत्सर्पिणी के युग आये हैं अनन्तानन्त ही अवसर्पिणी के भी युग आये हैं। अतएव भगवान् ऋषभदेव से पहले भी अनन्तानन्त तीर्थंकर हो चुके हैं। किन्तु ऋषभदेव भगवान् इस मौजूदा अवसर्पिणीकाल के तीसरे आरे मे प्रथम तीर्थंकर के रूप में इस भूतल पर अवतरित हुए थे। इसी कारण वे आदिनाथ, आदिदेव, प्रथम तीर्थंकर या युगादिदेव कहलाते है।

उपयोग अर्थात् चेतना या ज्ञान और दर्शन आत्मा का स्वाभाविक गुण है। अपने स्वरूप से आत्मा परिपूर्ण ज्ञानमय प्रकाश से युक्त है। किन्तु जैसे सूर्य को मेघपटल आच्छादित कर लेते है, उसी प्रकार यह प्रकाशपुञ्ज आत्मा कर्मो से आच्छादित हो रहा है। जैसे बुद्धिमान् से बुद्धिमान् पुरुष भी मदिरापान करके विवेक विकल वन जाता है, उसी प्रकार आत्मा मोहनीयकर्म के नशे से प्रभावित होकर विवेकशून्य हो जाता है। मगर जैसे सूर्य मेघपटल के हटने पर अपने असली स्वरूप मे चमकने लगता है और मदिरा का असर मिटने पर मनुष्य अपने असली रूप में आ जाता है, उसी प्रकार मोहनीय आदि कर्मों के हट जाने पर आत्मा का असली स्वरूप भी प्रकट हो जाता है और विकृति सब दूर हो जाती है। तीर्थंकर भगवान् मोहनीय आदि कर्मों को नष्ट करके सर्वज्ञ, सर्वदर्शी स्थिति प्राप्त करते हैं और फिर ही धर्म का उपदेश देते है।

यों तो सभी कर्म आत्मा में किसी न किसी प्रकार का विकार उत्पन्न करते हैं, मगर मोहनीय कर्म उन सब में प्रबल है। वह कर्म रूपी सेना का सेनापति या राजा है। जब तक वह बना रहता है, सभी कर्म बने रहते हैं और उसका नाश होने के बाद ही दूसरे कर्मों का नाश होता है।

मोहनीय कर्म मे दोहरी शक्ति है। वह आत्मा के विवेक या सम्यगदर्शन का भी घातक होता है और सम्यक्प्रवृत्ति या चारित्र का भी हनन करता है। विवेक को नष्ट करने वाला दर्शन मोहनीय और चारित्र मे रुकावट करने वाला चारित्र मोहनीय कर्म कहलाता है। जब तक आत्मा दर्शन मोहनीय का उदय बना हुआ है तब तक उसे धर्म रुचिकर नही होता। जिसे एक सौ पांच डिग्री बुखार चढा हो, उसे भोजन की रुचि नही होती। इसी प्रकार मोहजन्य मिथ्यात्व वाले जीव को धर्म की रुचि नही होती।

पित्तज्वरवतः क्षीरं तिक्तमेव हि भासते।

जिसे पित्तज्वर का प्रकोप हो रहा हो, उसे दूध जैसा मधुर पेय भी कटुक मालूम होता है। ज्वर के कारण उसकी रुचि विकृत हो जाती है। दूध तो दूध ही है, उसमे जो मधुरता है वह कही चली नहीं जाती, ज्वर के रोगी के लिए दूध अपने आपमें कटुकता नही भर लेता, लेकिन ज्वर के प्रभाव से रोगी की रुचि ही बदल जाती है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म के प्रभाव से धर्म जैसा मधुर, उपकारक तत्त्व भी मिथ्यादृष्टि को रुचिकर नही होता है। मगर धीरे-धीरे, जब कारण मिलते हैं तब, मोहनीय कर्म शिथिल होता है, दूर होता है और तब जीव मे धर्म की रुचि उत्पन्न होती है,

ठीक उसी प्रकार जैसे बुखार हट जाने पर दूध मीठा मालूम होने लगता है और भोजन के प्रति रुचि जागृत हो जाती है।

किसी ज्वर-ग्रस्त के सामने आप बादाम का हलुवा ले जाइए और उसे खाने के लिए कहिए तो वह कहेगा-दूर रक्खो, इसे देखते ही मुझे तो कै होने आती है, मेरा जी मिचलाता है। क्यो, क्या हलुवा खराब है? अरे हलुवा खराब नही, रोगी की रुचि ही खराब हो गई है । इसी प्रकार मिथ्यात्व से ग्रस्त जीव की भी रुचि खराब हो जाती है और उसे बादाम के हलुवे की अपेक्षा भी अधिक आनन्ददायक, शाश्वत हितकारी, परमकल्याणमय धर्म भी अरुचिकर प्रतीत होता है।

मिथ्यात्व आदि कारणों से संसारी जीव को निरन्तर आस्रव और बन्ध होता रहता है। बन्ध के मुख्य पाँच कारण है- (१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) प्रमाद (४) कषाय और (५) योग । पहले गुणस्थान मे यह पाँचो ही बन्ध के कारक विद्यमान रहते हैं। चौथे गुणस्थान मे मिथ्यात्व नही रह जाता, अतएव शेष चार कारणो से बन्ध होता है। पाँचवे गुणस्थान मे देशविरति हो जाती है और आँशिक रूप मे अविरति हट जाती है, अतएव वहाँ पूर्ण रूप से तीन कारण और देश रूप से अविरति जन्य कर्मों का बन्ध होता है। छठे गुणस्थान मे अविरति पूर्ण रूप से हट जाती है, अत· प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से ही बन्ध होता है। सातवे गुणस्थान मे प्रमाद भी नही रहता। अत सातवें से लगा कर दसवे गुणस्थान तक सिर्फ कषाय और योगो के ही कारण बन्ध होता है। दसवे गुणस्थान के अन्त मे कषाय का भी क्षय या उपशम हो जाने पर आगे के तेरहवे गुणस्थान

तक सिर्फ योग ही कर्मबन्ध का कारण रह जाता है। केवल योग की प्रवृत्ति के कारण, कषाय की निवृत्ति हो जाने पर सिर्फ प्रकृति और प्रदेशबन्ध होते हैं। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध रुक जाते है। चौदहवे गुणस्थान मे योग का भी निरोध हो जाता है, अतएव योगजन्य कर्मबन्ध भी नही होता। वहा पूर्ण अबन्धक दशा प्राप्त हो जाती है।

इस कथन का तात्पर्य यह निकला कि ज्यो ज्यो विकार हटते जाते है, विभाव परिणमन कम होता है, त्यो-त्यो कर्म-बन्ध भी कम होता चला जाता है। आस्रव और बन्ध के कारणों की प्रबलता पाकर आत्मा अधिक कर्मों का सचय करता है और उनके विरोधी संवर और निर्जरा की प्रबलता होने पर नया कर्म-बन्ध रुकता जाता है और पहले बन्धे हुए कर्मो का क्षय होता जाता है। इस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों का विकास होता है और विकास की अन्तिम सीमा मुक्ति कहलाती है।

इस कथन से यह भी समझ में आ जाना चाहिए कि बन्ध के अभाव (संवर) का प्रारम्भ सम्यक्त्व से होता है और जैसा कि कहा जा चुका है, सम्यक्त्व चतुर्थगुणस्थान मे होता है अतएव कहना चाहिए कि मोक्षमार्ग का आरम्भ ही चौथे गुणस्थान से होता है। यद्यपि चौथे गुणस्थान वाला अविरति सम्यग्दृष्टि व्रतो का आचारण नही करता, फिर भी उसके अनेक बुरे काम छूट जाते है। शराब पीना, मास खाना आदि दुर्व्यसन, जो धार्मिक नैतिक एव लौकिक दृष्टि से भी गर्हित है, सम्यग्दृष्टि छोड देता है। सम्यग्दृष्टि हिंसा, झूठ, चोरी कुशील आदि पापो को हेय समझने लगता है और इन पापो का आचरण करने मे उसकी रुचि नही

रहती । हाला कि व्रत के रूप मे वह अहिंसा आदि को अगीकार नही करता है, मगर मिथ्यादृष्टि की तरह पापो को भला भी नही समझता और कदाचित् पाप का आचरण करना पड़े तो वह अपने आपको धिक्कारता है ।

सम्यग्दृष्टि चारित्रमोहनीयकर्म की अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय या उपशम कर देता है, अतएव उसमे कषाय की मात्रा भी अपेक्षाकृत कम हो जाती है । उसे तीव्रतम क्रोध, जिससे प्रेरित होकर मनुष्य आत्महत्या जैसे घोर दुष्कर्म मे प्रवृत्त हो जाता है, उसमे नही रह जाता । इसी प्रकार तीव्रतम मान, कपट और लालच भी हट जाता है । सम्यग्दृष्टि जीव सोचता है कि—अरे जीव ! यह कषाय ही भव-भव मे भटकाने वाले और नाना योनियो मे नाना प्रकार के कष्ट देने वाले हैं ! यह आत्मा मे मलीनता उत्पन्न करके उसे विकृत करने वाले हैं । कषाय ही जन्म-मरण रूप प्रासाद के प्रधान स्तभ हैं । अतएव क्यो इस कचरे को अपने भीतर भरता है ! इस कचरे से तेरा अकल्याण ही होगा ।

भाइयो ! तीव्रतम क्रोध मिथ्यात्व का सहचर है । जिसे बार-बार ऐसा कषाय आता हो, समझना चाहिए कि उसे अभी तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नही हुई है । अतएव आप कभी क्रोध मे आकर ऐसा मत कहो कि साले का खून पी जाऊँगा, कच्चा खा जाऊँगा ! जब तुम मांस नही खाते हो तो फिर क्रोध में आकर ऐसा क्यो बोलते हो ? देखो, सम्यग्दृष्टि के मुँह से ऐसी बाते नही निकलती । सम्यग्दृष्टि प्रत्येक बात को सीधी लेता है और मिथ्या-दृष्टि उलटी लेता है ! कदाचित् उसे कोई साले की गाली दे भी दे तो वह सोचता है कि जगत् की परस्त्रियाँ मेरे लिए बहिन के

समान हैं। इस नाते अगर यह मेरा वहिनोई वनता है तो क्या हर्ज है! हे प्रभो! मुझे ऐसी ही सद्‌बुद्धि दीजिए कि ससार की स्त्रियों को मैं वहिन के समान ही समझता रहूँ और सव का साला वन जाऊँ! सच्चा मर्द वही है जो इस प्रकार सबका साला वनता है। जो ऐसा नहीं, वह सच्चा मर्द नही। उसमे और कुत्ते मे क्या अन्तर है? मैं जव साला बनूँगा तभी मुझमें वास्तविक मनुष्यता आएगी। इस प्रकार विचार कर सम्यग्दृष्टि गाली देने वाले से कहता है—भाई, धन्यवाद! तुमने मुझे वहुत ही सुन्दर उपाधि दी है। मैं न केवल तुम्हारा ही, वरन् सभी का साला वनना चाहता हू और समस्त परस्त्रियों को बहिन के रूप में मानना चाहता हूँ।

इसके विपरीत मिथ्यात्वी एक गाली देने वाले को पचास गालियाँ सुनाता है और हित की वात कहने वाले के सामने भी अकडता है। कहता है—तुम्हे मुझसे क्या सरोकार है! तुम कौन होते हो मुझे सिखाने वाले! तुम जैसे पचासो को मै अपने जेब मे रखता हूँ। अपनी अक्ल अपने पास रहने दो! ऐसा कहने वाले को—अपनी भलाई को भी बुराई समझने वाले को—विपरीत वुद्धि समझना चाहिए। उसके पेट में जहर मौजूद है।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि की कपाय मन्द हो जाती है इस कारण उसके अन्त करण मे समभाव विद्यमान रहता है।

पुराणो मे एक कथा आती है। उस कथा के अनुसार भृगुजी ने श्रीकृष्ण की छाती मे लात मारी थी। लात खाकर कृष्णजी को क्रोध नहीं आया। उन्होने भृगुजी से कहा-महाराज!

आपके चरण-कमल अत्यन्त कोमल हैं और मेरा शरीर कठोर है। आपके चरणों को कष्ट तो नही पहुँचा ?

भृगुजी ने चाहे लात मारी हो या न मारी हो और यह एक आलंकारिक कथन ही क्यो न हो, परन्तु इसका निष्कर्ष यह है कि सम्यग्दृष्टि मे इस प्रकार की सहिष्णुता और क्षमाशीलता होनी है। मिथ्यादृष्टि ऐसे प्रसग पर एक लात की जगह सौ जूते मारने को तैयार हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि का कोई अपराध करता है तो सम्यग्दृष्टि उसे क्षमा कर देता है। इसके विपरीत, किसी का कोई अपराध उससे बन जाय तो वह पश्चात्ताप प्रकट करता है और क्षमायाचना कर लेता है। बिना अपराध किये ही उसे कोई दण्ड दे तो वह शान्ति के साथ उसे सहन कर लेता है और सोचता है कि दण्ड देने वाला तो निमित्त मात्र है, असल मे इस दण्ड का उपादन तो मैं स्वय हूँ। मैंने ही अशुभ कर्मों का उपार्जन किया है और मैं ही उनका फल भोगने वाला हू। अशुभ कर्मों के उदय के अभाव में मेरा कोई कुछ भी नही बिगाड सकता !

आज हजारो-लाखो सम्यग्दृष्टि नरक मे पडे हुए हैं और असख्यात मिथ्यादृष्टि भी पडे हुए हैं। दु.ख दोनो को ही होता है। नरक की भूमि ही बड़ी वेदनाकारी है। उसका स्पर्श करते ही ऐसी घोर वेदना होती है मानो हजार बिच्छुओ ने एक साथ डक मार दिया हो! उसके लिए सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि सभी समान हैं। वह किसी का लिहाज नही करती। नरक मे दूसरी वेदना परमाधामी असुरो के द्वारा उत्पन्न की जाती है। तीसरे नरक तक

पहुच कर यह असुर नाना प्रकार से छेदन-भेदन आदि करके नारक जीवो को दारुण दु.ख देते है वे भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्या-दृष्टि का विचार नही करते। तीसरी वेदना नारक आपस में ही एक दूसरे को देते हैं। यह वेदना भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकार के नारको को होती है। तात्पर्य यह है कि दोनो तरह के नारको को नरक मे समान रूप से कष्ट पडते हैं। मगर सम्यग्-दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की भावना मे भारी अन्तर रहता है। सम्यग्दृष्टि नारक जीव समझता है कि मैंने पूर्वजन्म मे जो महान् पाप किये थे, उनका फल आज मुझे भोगना पड़ रहा है! मैंने अपने सिर पर जो ऋण चढ़ा रक्खा है, उसे उतार रहा हूँ। एक प्रकार से यह दु.ख मेरे लिए हितकारी हैं, क्यो कि इनको भाग लेने से मेरी आत्मा पापकर्मो से हल्की हो जायगी। ऐसी भावना करके वह अपने कर्मो को खपाता है। मगर मिथ्यादृष्टि उन्ही कष्टों को भोगते समय आकुल व्याकुल होता है, आर्त्तध्यान और रौद्र-ध्यान करता है, कष्ट देने वालो के प्रति तीव्र द्वेष भाव धारण करता है और ऐसा करके वह फिर नये अशुभ कर्म बांध लेता है। दोनो समान गति मे हैं, समान दु.खमय परिस्थिति मे हैं, फिर भी भावना के भेद से कितना अन्तर पड जाता है!

सम्यग्दृष्टि मे समभाव होता है और मिथ्यादृष्टि विषमभावी होता है। यह बात सभी सम्यग्दृष्टियो और मिथ्यादृष्टियो पर लागू होती है, चाहे वे पशु हो, चाहे मनुष्य हो! कई ऐसे देखे जाते हैं कि वे अपमान को समभाव से सह लेते हैं और सोचते हैं कि यह मेरा अपमान नही है, बलिक मेरी वर्त्तमान स्थिति का सही सही चित्रण है। मिथ्यादृष्टि उसी बात को सुन कर माथा फोडने को

तैयार हो जाता है। मतलब यह है कि सम्यग्दृष्टि मन्दकषायी होता है। कषाय की मन्दता होना सम्यक्त्व का एक चिह्न है।

यहाँ यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि कषाय की मंदता को सम्यक्त्व का जो लक्षण बतलाया गया है, वह इसी आशय से कि जो सम्यग्दृष्टि होगा वह मन्द कषाय वाला अवश्य होगा। यह नियम है। मगर यह नियम नही है कि जो मन्द कषाय वाला होगा, वह सम्यग्दृष्टि अवश्य ही होगा। क्योकि कभी-कभी मिथ्यादृष्टि के क्रोध, माया और लोभ रूप कषाय भी पतले हो जाते हैं और वे भी देवलोक मे जाते हैं। यद्यपि मिथ्यादृष्टि में अनन्तानुबन्धी कषाय विद्यमान रहता है, फिर भी कभी उसका उद्रेक होता है और कभी नही भी होता। कभी सज्वलन चौकड़ी का उदय हो और आयु-कर्म का बन्ध पड़ जाय तो देवायु बँध जाती है।

सम्यग्दृष्टि का दूसरा लक्षण सवेग है। उसकी भावना रहती है कि-अरे जीव! तू कब इन विषय भोगो से विरत होगा, कब आत्मा के शुद्ध स्वरूप मे रमण करने का अद्भुत, अनिर्वचनीय और वचनागोचर आनन्द प्राप्त करेगा और कब जन्म-जरा-मरण से अतीत होकर मुक्ति प्राप्त करेगा? सम्यग्दृष्टि ससार को हम समझता है, भोग-विलास की ओर उसकी अरुचि हो जाती है। जैसे कमल जल मे रहता हुआ भी जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ससार और गृहस्थी में रहता हुआ भी उनमे अलिप्त होकर रहता है। उसे ससार-व्यवहार से नफरत सी हो जाती है।

कदाचित् वह किसी की निन्दा या बुराई कर देता है तो उसे पश्चात्ताप होता है और वह विचारने लगता है-हे आत्मन् ! तू दूसरो के अवगुणो को देख-देख कर क्यो अवगुणी बन रहा है ? क्या तुझे जन्म-मरण को और भी बढ़ाना है ? अनादि काल से भटकते-भटकते तेरा पेट नही भरा ! अरे, यही समय तो तिरने का है और तू डूबने का काम क्यो करता है ?

भाइयों ! जिसके अन्त:करण में सहज रूप से ऐसी भावनाएँ उद्भूत होती रहती है, जो भव्य एव पुनीत भावनाओ से ही अपनी आत्मा को भावित करता रहता है, उसका कषाय-भाव तीव्र नही होता। सम्यग्दृष्टि सच्चा मुमुक्षु होता है। वह मुक्ति की इच्छा रखता है और ससार से अपनी आत्मा का निस्तार चाहता है। भोगो मे डूबे रहने पर भी उसकी आत्मा भीतर से अलिप्त रहती है। ऊपर से देखने वालो को भले ही समझ मे न आवे, मगर ज्ञानी उसकी निर्लेप दशा को जानते हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि सम्यग्दृष्टि जीव यदि मोक्ष की इच्छा करता है तो उसे मोक्ष नही प्राप्त हो सकता। क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने के लिए इच्छा का नष्ट हो जाना आवश्यक है। इच्छा मोहनीय कर्म के उदय से होती है। जब तक इच्छा है तब तक मोहनीय कर्म का उदय है और जब तक मोहनीय कर्म का उदय है तब तक मोक्ष नही मिल सकता ?

इस प्रश्न के समाधान मे कहना है कि यद्यपि इच्छा मोह का ही एक कार्य, तथापि मोक्ष की इच्छा प्रशस्त इच्छा है। इस इच्छा से प्रेरित होकर जीव ससार सम्बन्धी विषयभोगो से

एवं आरम्भ-समारम्भ आदि पापमय प्रवृत्ति से निवृत्त होता है। जिस इच्छा के कारण पाप मे प्रवृत्ति होती है, वह इच्छा कर्मवन्ध का कारण है। मगर मोक्ष की इच्छा इससे विपरीत होती है, अतएव उससे कर्मवन्ध नही होता। मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला तप, सयम, प्रत्याख्यान आदि का आचरण करता है। अतएव वह मोक्ष में वाधक नही होती; पर मुमुक्षु पुरुष जव उच्च कोटि पर पहुँच जाता है और उसका मोहनीय कर्म सर्वथा नष्ट हो जाता है, तव इच्छा मात्र भी नष्ट हो जाती है। उस समय वह अपने आत्मस्वरूप मे ही तन्मय हो जाता है। उस समय उसमें मोक्ष की भी इच्छा नही रह जाती। उसी ऊँची स्थिति के प्राप्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसी अपेक्षा से कहा है—

यस्य मोक्षेऽप्यनाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।

अर्थात्—जिसके अन्तःकरण मे मोक्ष की भी इच्छा नही रह जाती, वही महापुरुष मोक्ष प्राप्त कर सकता है। और:—

मोक्षे भवे च सर्वत्र, निस्पृहः मुनिसत्तमः।

अर्थात्—परमोच्च श्रेणी पर पहुचा हुआ मुनि क्या मोक्ष मे और क्या ससार मे, सर्वत्र निरीह—अभिलाषा रहित हो जाता है।

इन दृष्टियों को सामने रखते हुए यह कहा जा सकता है कि कथचित् मोक्ष की इच्छा मोक्ष मे साधक भी है और कथंचित् वाधक भी है। इस प्रकार अनेकान्त का आश्रय लेने से ही सर्वत्र

सत्य की आराधना होती है। अतएव जैन शासन मे किसी भी प्रकार के मिथ्या एकान्त को जगह नही है। अनेकान्त दृष्टि को सामने रख कर ही तत्त्व का निष्पक्ष विचार करना उचित है। इसी से सत्य का ज्ञान होता है और इसी से कल्याण होता है।

तो सम्यग्दृष्टि निरन्तर मोक्ष की अभिलाषा करता हुआ, ससार व्यवहार से उदासीन-सा बना रहता है। यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि सासारिक काम करता है परन्तु उनमें अनुरक्त नही होता।

सम्यग्दृष्टि का तीसरा लक्षण यह है कि वह अपने आपको ससार का कैदी समझता है। वह जानता है कि माता, पिता, पुत्र आदि कुटुम्ब-परिवार, मकान, धन, सम्पत्ति आदि कुछ भी वास्तव मे मेरा नही है और मे इनका नही हूँ। मैं कर्मोदय के कारण ही इनके बन्धन में पडा हुआ हूँ।

सम्यग्दृष्टि विवाह करता है तो भी यही समझता है कि मैं जेलखाने में फंस रहा हूं। सारा संसार एक प्रकार का विशाल जेलखाने के समान है। शेख सादी ने कहा है:—

करीमा बेबख्शाए बर हालमा,
कि हस्तम असीरे कमन्दे हवा।

हे करीम! हे स्वामिन्! मुझ पर रहम कर। मैं दुनियां के कैदखाने मे फसा हुआ हूँ।

भाइयो! अंधेरी रात है और बिजली चमक रही है और

बादल छाये हुए हैं। वर्षा हो रही है। वर्षा के कारण जेलखाने की दीवार टूट कर पडी है। पहरेदार लम्बी टाँगे किये खर्राटे ले रहे हैं। तब वन्दीजन कहते हैं—दीवार टूट गई है और जेलखाने से निकल भागने का यही अच्छा अवसर है। जो इस अवसर पर निकल भागे वे अपने-अपने घर जा पहुँचे। और जो यह कहने में रह गये कि जरा वर्षा थमने दे, थोडी नीद और ले ले, वे उसी मे फसे रहे। पहरेदार जाग उठे और उन्होने उन्हे नही जाने दिया। इसी प्रकार ससार जेलखाना है और अज्ञान का अन्धेरा छाया हुआ है। कभी-कभी ज्ञानी गुरु ज्ञान का थोडा-सा प्रकाश फैलाते हैं। वही विजली का प्रकाश है। अनादि काल से चले आ रहे मिथ्यात्व की दीवार टूटी है अतएव सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दर्शन पाकर सोचता है कि भाई! अब यहा से भागने का मौका है! कोई-कोई निकल कर भागे और साधु वनने को चले। वहा कुटु-म्बियो ने आकर घेर लिया। कोई रो-रो कर कोई-कोई भय दिखला कर और कोई डाट फटकार बतला कर उसे फिर से कैदखाने मे वन्द करना चाहते हैं! इस विषय का विस्तृत और सुन्दर वर्णन श्री सूत्रकृतागसूत्र मे किया गया है। वहाँ बतलाया है कि.—

जइ कालुणियाणि कासिया, जइ रोयति य पुत्तकारणा।
दवियं भिक्खु समुट्ठिय, णो लब्भंति ण संठवित्तए॥

अर्थात्—गृह त्याग कर नवीन बने हुए साधु के माता-पिता आदि सम्बन्धी जन साधु के समीप आकर यदि करुणाजनक वचन कहे, करुणाजनक कार्य करे या अपने पुत्र के लिए रोदन

करें तो भी सयम-पालन मे उद्यत, और मुक्तिगमन के योग्य उस साधु को वे सयम से भ्रष्ट नही कर सकते और वे उसे फिर गृहस्थलिंग मे नही ला सकते ।

कुटुम्बीजन मानो समझते हैं कि यह हमारा साथ छोड कर कही मोक्ष मे चला जायगा तो नरक मे हमारा साथ कौन देगा ?

एक नदी पूर जा रही है। उसमे एक काली-काली सी दिखलाई देने वाली चीज वहती चली जा रही है। किनारे पर खडे लोगो की उस पर दृष्टि पड़ी । उन्हे जान पडा कि या तो यह कम्बल है या माल की कोई पेटी है। एक आदमी हिम्मत करके नदी में कूद गया और उसके पास पहुँचा । देखा काली चीज तो रीछ है । रीछ ने उस आदमी का सहारा लेना चाहा, अतएव वह उस पर लपका । कभी आदमी नीचे और कभी रीछ नीचे आता--जाता है। किनारे खडे लोगो ने उसे पुकारा-अरे छोड दे उसे और तैर कर आजा ! किन्तु वह कहता है—मैं छूट नही सकता । आना चाहता हू परन्तु आ नही सकता ।

यही हाल इस ससार का है। इसमें धन-दौलत, कुटुम्ब-परिवार आदि का जब तक सच्चा स्वरूप मालूम नहीं होता, तब तक वे लुभावने मालूम पडते है और जब उनकी असलियत का पता चल जाता है तब वे रीछ के समान भयानक जान पडते हैं। जो लोग ससार मे फँस जाते हैं वे निकलना चाहते हुए भी निकल नही पाते और ऐसे फँसे रहते हैं कि दो घडी सामायिक करना भी छूट जाता है ! मुनिराज कहते हैं कि छोड दे, मगर वह कहता

है छूटना ही नही है ! लेकिन कम्बल लेने को चले और रीछ से पाला पडा ! ससारी जीव अज्ञान के वशीभूत होकर सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करते है और दु:ख पल्ले पडता है ! वे जिन वस्तुओ में सुख की कल्पना करते हैं, वही आखिर दु:ख देने वाली साबित होती है ।

एक सँकडे मुँह के मटके मे लड्डू भरे थे । एक बन्दर वहाँ पहुँचा और लड्डू निकालने के लिए उसने हाथ डाला । हाथ में लड्डू ले लिया और मुट्ठी बाध ली । अब वह मुट्ठी बँधा हाथ निकालना चाहता है, पर मुह सकडा होने के कारण मुट्ठी निकल नही सकती । मुट्ठी खोलता है तो लड्डू जाता है । वह हाथ भी निकालना चाहता है और लड्डू भी नही छोडना चाहता ! इसी प्रकार तुम भी चाहते हो कि हमे ससार के भोगोपभोग भी न छोडने पडे और मोक्ष का सुख भी मिल जाय ! मगर ऐसा नही हो सकता । या तो मोक्ष ले लो या विषय-सुख ले लो । या तो हाथ छुड़ा लो और लड्डू छोडो या फसे रहो । बुद्धिमान बन्दर यही पसन्द करेगा कि लड्डू भले जाय मगर हाथ छूट जाय ! आप क्या पसन्द करते है, यह आपको सोचना है । नर होकर वानर से गये-बीते तो नही होओगे ? अगर सच्चा सुख चाहते हो तो मोह-माया को छोडो । परमार्थ का विचार करके अपने कर्त्तव्य का निर्णय करो और उसमे प्रवृत होओ ।

सम्यग्दृष्टि जीव तत्त्व को पहचान लेता है और इस संसार को कारागार समझ कर, अपने आपको बन्दी मान कर, इसमे अनुरक्त नही होता । वह ससार से छूटने की ही भावना भाता रहता है । यह सम्यक्त्व का तीसरा लक्षण है और इसे निर्वेद

कहते हैं। निर्वेद का अर्थ यही है कि ससार से उदासीन रहे, दुनियाँ की मोह-ममता से हाथ हटा लेने की भावना रक्खे। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव साधु नही बना है, फिर भी सम्यक्त्व प्राप्त कर चुका है। वह कुटुम्ब-परिवार मे रहता है, धन-सम्पत्ति भी रखता है, मगर अन्तस मे एक प्रकार की विरक्ति बनी रहती है। भीतर वह समझता है कि यह सब वस्तुएँ मेरी नही हैं और मैं इनका नही हूँ। कहा भी है:—

सम्यग्दृष्टि जीवड़ा करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तरगत न्यारा रहे ज्यों धाय खिलावे बाल॥

सम्यग्दृष्टि जीव परमार्थ का बहाना करके अपने लौकिक कर्त्तव्य का पालन करने मे जी नही चुराता, धर्म के नाम पर अकर्मण्यता को प्रश्रय नही देता, और अपने उत्तरदायित्व से किनारा नही काटता। मगर भीतर से वह उदासीन रहता है। अलिप्त-अनासक्त रहता है। जैसे धाय बालक को खिलाती है, उसकी सार-समाल करती है, उसे लाड़-प्यार भी करती है, उसके प्रति अपने कर्त्तव्य का प्रामाणिकता के साथ पालन करती है, फिर भी अन्तरग में इस बात को भलीभाँति समझती है कि यह बालक मेरा नहीं है, मैं इसकी माता नही हूँ, यह अलग है और मैं अलग हूँ। इसी प्रकार की वृत्ति सम्यग्दृष्टि मे होती है। वह ससार के किसी भी पदार्थ मे आसक्त नही होता।

सम्यक्त्व का चौथा लक्षण अनुकम्पा है। सम्यग्दृष्टि जीव के हृदय सरोवर मे अनुकम्पा की उत्ताल तरङ्गे उठती रहती है। वह स्वदया भी करता है और परदया भी करता है। स्वदया

क्या चीज है यह सोचना कि अब मुझे अपनी आत्मा को नरक-निगोद मे नही जाने देना है, चौरासी के चक्कर से निकलना है। इस प्रकार सोच कर आत्मा को बुरे मार्ग से बचाना दु खों की राह से हटाना, और सच्चे सुख की ओर ले जाने का प्रयत्न करना, यह सब स्वदया है। परन्तु परदया के अभाव मे स्वदया नही हो सकती। अतएव सम्यग्दृष्टि जीव परदया भी अवश्य करता है। दु खियां जीव को देख कर वह राम--राम करके निकल नही जाता, वल्कि उसके दु.ख को दूर करने का प्रयत्न करता है। वह स्वय दुःख सहन कर लेता है, किन्तु पर के दु.ख की उपेक्षा नही करता। शास्त्रो में वहुत-से ऐसे दृष्टान्त मौजूद हैं। राजा मेघरथ का ज्वलंत उदाहरण प्रसिद्ध ही है। भय से काँपता हुआ कबूतर उसकी शरण मे आता है। राजा उसे दुखी देखकर द्रवित हो जाता है। उसके अन्त.करण मे अनुकम्पा का भाव उमड़ पडता है। वह कबूतर को पुचकारता है और सान्त्वना देता है। उसी समय शिकारी आ पहुँचता है और अपने भक्ष्य की माँग करता है। वह कहता है कि मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। राजा मेघरथ उस पर भी क्रोध न करके अनुकम्पा ही करता है। कोई और होता तो अपने सेवक को आज्ञा देकर उसे पिटवाता धक्के देकर बाहर निकलवा देता। और शायद इतना करने का भी उसे अवसर न आता। जरा भौह टेढी करते ही शिकारी के छक्के छूट जाते! मगर राजा को कबूतर से राग नही था और शिकारी से द्वेष नही था। दोनो पर उसका अनुकम्पा भाव था। अतएव राजा ने उसे शान्ति के साथ दूसरी भोजन सामग्री लेने को कहा। जब वह नही माना तो अपना शरीर ही देने को तैयार हो गया है! इसे कहते हैं अनुकम्पा! दयावान् वही है जो दूसरे का

दुःख दूर करने के लिए अपने दुःख की परवाह नही करता । ऐसे सैकडों उदाहरण शास्त्रो मे भरे पडे हैं । धर्मरुचिजी अनगार ने अनुकम्पा से प्रेरित होकर अपने प्राणों की भी ममता त्याग दी और मेतार्य मुनि ने अनुकम्पा के कारण अपने प्राणो की चिन्ता नही की ।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव का अन्तःकरण अत्यन्त कोमल हो जाता है । परपीडा देना तो दूर रहा, वह पीडित को देख कर स्वय पीड़ित हो जाता है और यथाशक्ति उस पीड़ा को दूर करने का प्रयत्न करता है ।

आज बहुत से ऐसे लोग हैं और महिलाए भी हैं, जो अपनी प्रतिष्ठा जाने के विचार से बहुत कठिनाई मे होते हुए भी किसी के आगे मु ह नही खोल सकते । उनके घर में बाल-बच्चे भी हैं । खास तौर से ऐसो का ध्यान रखना सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य है । ऐसे लोगों के घर पर गुप्त रूप से सहायता पहुचाना सच्ची दया का एक अग है । भाइयो ! अपने नाम के लिए, अपनी कीर्त्ति के लिए बहुत देते हो, देकर अखबारो मे विज्ञापन करते हो और वाह--वाह पाकर प्रसन्न होते हो, मगर गुप्त रूप से भी कुछ दो । वह सच्ची दया होगी, सच्चा दान होगा । उसके फल की आकाक्षा मत करो । फल कही जाने वाला नही है । गुप्त दान देने वाले को अचानक गडा हुआ गुप्त धन मिल जाता है । प्रत्येक कार्य का फल जब अनिवार्य है तो फल की इच्छा करके उसे कम कर लेने से क्या लाभ है ? अतएव निष्काम भाव से अनुकम्पा करो ।

सम्यक्त्व का पाचवा लक्षण आस्था या आस्तिक्य है ।

पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, आत्मा, धर्म, देव, गुरु पर पक्की श्रद्धा रखने वाला आस्तिक कहलाता है। सम्यग्दृष्टि जीव पाप और पुण्य तथा उनके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले नरक और स्वर्ग पर विश्वास रखता है और जब इन पर विश्वास रखता है तो इनको भोगने वाले आत्मा पर कैसे अविश्वास कर सकता है? इसी प्रकार देव, गुरु और धर्म पर भी सम्यग्दृष्टि विवेकपूर्ण श्रद्धा रखता है।

संसार मे एक मत ऐसा भी है, जिसके अनुसार आत्मा का अस्तित्व नही है। उस मत के अनुयायी नास्तिक कहलाते हैं। वे जब आत्मा को ही नही मानते तो स्वर्ग और नरक को कैसे मानेंगे? क्योकि आत्मा हो तो वह परलोक मे जावे और स्वर्ग-नरक का अस्तित्व हो। आत्मा ही नही तो परलोक में जायगा ही कौन? आज भी बहुत-से लोग इसी विचारधारा से प्रभावित देखे जाते हैं। मगर ज्ञानी जनो को उस पर तरस आता है। वे बेचारे ऐसे गाढ अज्ञानान्धकार मे डूबे है कि अपने आपको भी नही देख सकते और स्वय अपने ही अस्तित्व से इन्कार करते हैं। उन्हे यह भी नही सूझता कि अगर आत्मा नही है तो आत्मा का निषेध करने वाला कौन है? 'आत्मा नहीं है' ऐसा कहने वाला स्वय ही तो आत्मा है! परन्तु अज्ञान की अधिकता ने उन्हे बेभान बना दिया है।

आत्मा का अस्तित्व किस प्रकार जाना जा सकता है और इसको सिद्ध करने वाले प्रमाण क्या हैं, इस बात का विचार मैं अपने पिछले एक व्याख्यान मे कर चुका हूँ। अतएव उसे फिर दोहराने की आवश्यकता नही है। यहां तो सम्यग्दृष्टि की

भावनाओ का ही विवेचन चल रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव आत्मा या परलोक आदि के अस्तित्व मे कभी सन्देह नही करता।

देव, गुरु और धर्म के प्रति उसका गहरा अनुराग होता है। वह इनमे, से किसी की बुराई तो करता ही नही है, दूसरे के द्वारा की जाने वाली बुराई को सुनना भी नही चाहता।

खेद है कि पश्चिम के लोगो के ससर्ग और प्रभाव के कारण आज भारतवर्ष के निवासियो मे भी धर्म के प्रति उपेक्षा या विरोध की भावना उत्पन्न होती जा रही है। लोग धर्म के नाम पर चलने वाले नाना प्रकार के पाखण्डो को ही धर्म का स्वरूप समझ कर और उनमे ऊब कर धर्म से विमुख होते जाते है। कई लोग तो यहा तक कहते है कि धर्म दुनिया के लिए एक मुसीबत है, अभिशाप है और उसका खात्मा हो जाना ही अच्छा है!

ऐसा कहने वालो ने कभी गहराई मे उतर कर धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझने का प्रयत्न नही किया है। धर्म की महत्ता और उपयोगिता पर विचार नही किया है। अगर धर्म की वास्तविकता को उन्होने सोचा-समझा होता तो उन्हे मालूम हुए बिना न रहता कि धर्म ससार के लिए अभिशाप नही वरन् दिव्य वरदान है, मुसीबत नही वरन् महान् मगल है, उसका खात्मा ससार के लिए कल्याणकारी नही होगा वरन् घोर अकल्याण का कारण होगा। धर्म का खात्मा करना मनुष्यता का विनाश करना है।

वास्तव मे जगत् धर्म के सहारे ही टिका हुआ है। अहिसा सत्य, दया, क्षमा, परोपकार, सहानुभूति, सेवा आदि की कोमल

और पवित्र भावनाएँ धर्म रूपी कल्पवृक्ष की ही तो शाखाएँ है, जिनका आश्रय पाकर सन्ताप से जलने वाले पथिक यत्किंचित् शान्ति का अनुभव करते है। धर्म को उठा देने का मतलब है इन सब दिव्य भावनाओ का बहिष्कार कर देना ! क्या इन सब को छोड कर ससार क्षण भर भी सुख-शान्ति का अनुभव कर सकता है ? शास्त्र कहते हैं.—

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिसा संजमो तवो ।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मगल है और वह अहिसा, सयम और तप रूप है ।

अब जरा विचार कीजिए कि अहिसा क्या अभिशाप है ? और हिसा वरदान है ? दुनियाँ का काम अहिसा से चल सकता है या हिसा से ? शान्ति देने की शक्ति किसमे है ? अहिंसा जीवन है, अमृत है और हिंसा मृत्यु है, जहर है। अहिसा का त्याग करना जीवन का ही खात्मा करना है । ऐसी स्थिति मे यह स्पष्ट है और कहने की भी आवश्यकता नही कि अहिसा ही मनुष्य-समाज का त्राण कर सकती है, उसी के सहारे विश्व सुखी बन सकता है ।

धर्म का दूसरा रूप सयम बतलाया गया है । सयम का सीधी सादी भाषा मे अर्थ है-अपनी इन्द्रियो पर काबू रखना और अपने दिमाग पर काबू रखना । अपनी देह को, दिल को और दिमाग को उच्छृङ्खल न होने देना, समझ-बूझकर विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करना और प्रवृत्ति करते समय अहिसा का पूरा खयाल रखना, यही सयम है । चित्त मे कभी क्रोध की लहर पैदा हो जाय,

कभी लोभ-लालच या अहंकार आदि की तरङ्ग उठ खड़ी हो, जिससे अपना और दूसरे के हित मे वाधा उत्पन्न होती हो तो उसे फौरन दबा देना संयम है। यह सयम धर्म का दूसरा लक्षण है। इसकी उपयोगिता को कौन अस्वीकार कर सकता है ?

तीसरा लक्षण तप है। बिना किसी की जोर जबर्दस्ती के, अपनी, आन्तरिक इच्छा से, अपनी आध्यात्मिक शक्तियो का विकास करने के लिए जो कष्ट सहन किया जाता है, वह तप है। व्यक्ति अर्थात् आत्मा और समाज के उत्थान के लिए तप की अनिवार्य आवश्यकता है। इसे अगर कोई अभिशाप बतलाता है तो समझना चाहिए कि उसका विवेक ही अभिशाप से ग्रसित हो रहा है।

अहिंसा, संयम और तप ही धर्म का स्वरूप है। जितना भी धार्मिक क्रियाकाण्ड और विधिविधान है, सबका इन्ही मे समावेश हो जाता है। इतना समय नही है कि विस्तारपूर्वक इनकी विवेचना की जाय, परन्तु विवेचना के मार्ग और दिशा की सूचना मैने की है। ऐसा समझ कर प्रत्येक विवेकशील पुरुष को धर्म की उपयोगिता और आवश्यकता समझनी चाहिए। जिसे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गई है, वह धर्म पर पूरी आस्था रखता है और भयकर सकट आ जाने पर भी, अरणक और कामदेव की भाति अपने धर्म पर डटा रहता है। जो अपने धर्म से नहीं डिगता, विश्व की विपुल से विपुल आसुरी शक्तिया भी उसके सामने हार मान जाती है। यह सम्यग्दृष्टि का आस्था रूप पाँचवाँ लक्षण है।

भविष्यदत्त चरित.—

भविष्यदत्त के जीवन व्यवहार पर दृष्टि डालें तो साफ मालूम होने लगेगा कि उसमे सम्यग्दृष्टि के उक्त सभी लक्षण मौजूद थे।

भविष्यदत्त और तिलकसुन्दरी दोनो अपने तम्बू मे बैठे थे। जहाज चलता-चलता आया और ठहर गया। उसमे से पाचसौ नगे-बडगे आदमी उतरे और जगल की ओर अपनी पेट-पूर्ति करने के लिए चल पडे। भविष्यदत्त यह विलक्षण दृश्य देख कर समझ नहीं सकता कि ये लोग कौन हैं और किस मतलब से यहा आये है ? और कहाँ जा रहे है ? वह शान्त बैठा हुआ उनकी गतिविधि का निरीक्षण करने लगा। यद्यपि उसके चित्त मे भय का प्रादुर्भाव नही हुआ, मगर विस्मय का भाव अवश्य जागृत हुआ।

तिलकसुन्दरी उन लोगों को देख कर, अकल्पित भय की आशंका से डर गई। उसके चेहरे पर भय का भाव स्पष्ट रूप से अङ्कित हो गया। यह देखकर भविष्यदत्त ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—प्रिये ! भयभीत होने की कोई बात नही है। कोई मुसाफिर हैं और कही से आये है। मैं तुम्हारे पास मौजूद हूँ, फिर डर काहे का ? मैं अभी सारी असलियत का पता लगाये लेता हूँ। मगर किसी भी अवस्था मे तुम्हे डरना नही चाहिए। जो राक्षस का भी सामना कर सकता है, वह क्या मनुष्यो का सामना नही कर सकेगा ? निश्चिन्त रहो। पुण्य भी हमारा सहायक है और वह सबसे बड़ा सहायक है।

भविष्यदत्त के सान्त्वना-वचन सुनकर तिलकासुन्दरी को ढाढस बँधा।

उधर उन वणिको की निगाह भी तम्बू पर गई। उस निर्जन प्रदेश मे तम्बू का दिखाई देना भी एक अद्भुत बात थी। अतएव वे वहाँ किसी मनुष्य के सद्भाव की सम्भावना करके उस ओर गये। यह वणिक् सब के सब भविष्यदत्त को भलीभाँति पहचानते थे। मगर जब उन्होंने उसे छोडा था तब भविष्यदत्त एकाकी था-उसके साथ दूसरा कोई नही था। दूसरे भविष्यदत्त का बाह्य वेष भी इस समय बदला हुआ था। वह तिलकपुर पट्टन का राजा हो जाने के कारण शाही पोशाक पहने था और कुछ दूरी पर भी था। इन सब कारणो से वे लोग भविष्यदत्त को पहचान न सके। बिना पहचाने दोनो को देख कर वे आपस मे कहने लगे-वाह! क्या ही सुन्दर जोडा है! जान पडता है, देव और देवी मनुष्य का रूप धारण करके इस एकान्त प्रदेश मे सैर करने निकले हैं।

उन्होने बन्धुदत्त को अपने पास बुला कर कहा—अपनी जो दुर्गति हुई सो हुई, पर इस आश्चर्य को तो देखो! जैसे इन्द्र और इन्द्राणी स्वर्ग से उतर कर आ गये है और यहा क्रीडा कर रहे है।

बन्धुदत्त दूर खडा--खडा देखने लगा। उसने सोचा--विधि का विधान भी कितना विचित्र है। इनकी अवस्था को देखो कि यहा अकेले मौज कर रहे हैं और हम लोग पाच सौ से भी अधिक थे, फिर भी लुटेरो द्वारा लूट लिये गये! इसके बाद बन्धुदत्त ने

तिलकसुन्दरी और भविष्यदत्त की ओर टकटकी लगा कर देखा। भविष्यदत्त भी यह सब हाल देख रहा था। उसने अपनी ओर गौर से देखते हुए बन्धुदत्त को देखा और पहचान गया!

बन्धुदत्त को पहचानते ही भविष्यदत्त और साथियों को भी पहचान गया। इस समय उसके चित्त मे कैसे-कैसे भाव उत्पन्न हुए होगे, कहना कठिन है। हस्तिनापुर से रवाना होना और उसे धोखा देकर बन्धुदत्त का जहाज आगे बढा ले जाना और उसे वही मौत के मुँह मे छोड जाना, आदि-आदि अतीत की समस्त घटनाएँ, चित्रपट की भाति उसके मस्तिष्क मे घूम गईं।

मगर भविष्यदत्त सम्यग्दृष्टि था। उसके हृदय में अनन्तानुबन्धी कषाय नही था। अतएव बन्धुदत्त से बदला लेने या उसका किसी प्रकार से अनिष्ट करने या अनिष्ट होने की इच्छा करने की भावना ही उसके अन्त करण मे न आई। यही नही, वह भ्रातृस्नेह से प्रेरित होकर बन्धुदत्त की ओर लपका। बन्धुदत्त भी अब अपने भाई को पहचान चुका था। वह भी सामने आया। दोनो भाई प्रेम से गले मिले। परन्तु बन्धुदत्त की दशा इस समय वर्णनातीत थी। वह लज्जा, संकोच, परिताप और पश्चात्ताप के कारण जमीन मे गडा जा रहा था। उसे सूझ नही पडता था कि किन शब्दो का प्रयोग करके वह शिष्टाचार का प्रदर्शन करे?

भविष्यदत्त अपने भाई की लज्जा को समझ गया। उसने कहा-भैया! सोच विचार मे मत पड़ो। तुम्हारी हालत देख कर जान पडता है कि तुम किसी सकट मे पड कर आ रहे हो। पहले उस तम्बू मे चलो। फिर और बाते करेगे।

दोनों तम्बू में जा पहुँचे। भविष्यदत्त ने उसे पलंग पर बिठला कर पूछा-तुम सब पर कौन-सा संकट आ पड़ा है?

बन्धुदत्त नीचा मुंह करके फक-फक रोने लगा। उसकी आँखों से आंसुओं की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी। आखिर भविष्यदत्त ने जब उसे खूब प्रेमपूर्वक समझाया और उसका दिल हल्का हुआ तो वह बोला-भाई साहब! मैं घोर पातकी हूं। विश्वासघाती हूं, बन्धुद्रोही हूं। मैंने अपने कुल को कलंक लगाया है। आपके प्रति मैंने जघन्य से जघन्य अपराध किया है। इस अपराध के लिए आप जो उचित समझें, दण्ड दें।

फिर बन्धुदत्त ने आगे कहा-आपको छोड़कर हम लोग आगे गये और व्यापार किया। व्यापार में अच्छा खासा मुनाफा हुआ। मुनाफा लेकर लौट रहे थे कि समुद्र में डाकुओं ने घेर लिया और सबकी जैसी दशा की वह आप देख ही रहे हैं।

भविष्यदत्त ने सान्त्वना देते हुए कहा—बन्धु! जगत् में भाई के समान कोई हितैषी नहीं है। फिक्र मत कर। धन सम्पत्ति चली गई तो जाने दे। धन तो हाथ का मैल है। आता भी है, जाता भी है। जाता भी है, आता भी है। इसके लिए हर्ष और विषाद करना वृथा है। तू निश्चिन्त रह। भाग्य में अगर धन बदा है तो आसमान से टपके बिना नहीं रहेगा। नहीं बदा है तो सात तालों में बन्द करने पर भी चला जायगा।

बन्धुदत्त! तुम्हें अपने पिछले व्यवहार के लिए भी लज्जित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं जानता हूं कि लोभ-लालच मनुष्य को विवेकहीन बना देता है। तुमने मुझे यहाँ छोड़ दिया

तो मेरा हित ही हुआ। न छोडते तो यह अरबो की सम्पत्ति और यह तिलकसुन्दरी जैसी रमणी कहां से मिलती ? इस प्रकार तूने मेरा उपकार ही किया है। भाई ! यह सब गुरुजनो की कृपा का फल है। माताजी ने मुझे आशीर्वाद दिया था। वह आशीर्वाद फला है। मैंने भी उनके आदेशो का अक्षरश पालन किया है।

यह कहकर अन्त में भविष्यदत्त ने कहा—तुम्हारी जो आर्थिक हानि हुई है, उसकी पूर्ति मैं कर दूंगा। दो लाख गये हो तो चार लाख मुझसे ले लेना। कपडो की तुम्हे और दूसरो को भी आवश्यकता है। यहाँ दुकानें भरी पड़ी हैं। जिन्हे जितने कपडे की आवश्यकता हो, बिना पूछे ले लें। यह सब अपना ही है। अतएव सकोच करने की आवश्यकता नही।

२३-१०-४८ }
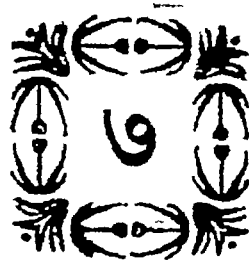
पयः पानं भुजंगानाम्

स्तुति :

बुद्धया विनाऽपि विबुधार्चितपादपीठ !
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुविम्ब—
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ।।

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं ?

देवो के द्वारा जिनका सिंहासन पूजा जाता है ऐसे हे भगवन् ! मैं आपकी स्तुति करने के लिए तैयार तो हो गया हूं,

परन्तु स्तुति करने योग्य बुद्धि मुझमें नही है। यह मेरी निर्लज्जता ही है। जैसे अबोध बालक पानी मे प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा को पकडने की चेष्टा करता है, वैसे ही मैं आपकी स्तुति करने का विचार करता हू ! अतएव आपकी स्तुति कर सकना मेरी बाल चेष्टा ही है। आपके गुण अनन्त हैं और मेरी बुद्धि अल्प है ! इस अल्प बुद्धि से आपके गुणो का गान करना सम्भव नही है, उसी प्रकार जैसे एक बालिश्त की लकडी लेकर आकाश को नाप सकना सम्भव नही है। ऐसे अनन्त गुणो के धारक भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उनको ही मेरा बार-बार नमस्कार हो ।

भाइयो ! भगवान् के अनन्त गुण हैं और उनमे से भी प्रत्येक गुण की अनन्त-अनन्त पर्यायें हैं। इस प्रकार अनन्त से अनन्त का गुणाकार कर दिया जाय तो अनन्तानन्त के रूप मे विशाल राशि गुणनफल के रूप मे आएगी। उस सब को शब्दो के द्वारा प्रकट करना मनुष्य के लिए क्या कभी सम्भव है ? कदापि नही। प्रथम तो मनुष्य की आयु ही बहुत कम होती है। इस आयु मे प्रतिक्षण, रात-दिन कोई भगवान् का गुणगान करता रहे तो भी भगवान् के गुणो के एक अश का ही गुणगान हो सकेगा ।

मनुष्यो की अपेक्षा देवों की आयु बहुत बडी होती है । वह वर्षो की नही, सागरो की है। सबसे ऊँचे सर्वार्थ सिद्ध विमान के देवो की आयु तेंतीस सागरोपम की है। उतने लम्बे समय मे भी भगवान् के गुणो का पूर्ण रूप से स्तवन नही हो सकता। किसी भी बडे से बडे परिमित काल मे अपरिमित गुणो की स्तुति होना असम्भव है ।

समय की अल्पता ही पूरी स्तुति करने मे बाधक हो सो बात नही है । इसके साथ ही साथ वाणी की अपर्याप्तता भी दूसरा कारण है । यानी भगवान् के समस्त गुणों का वर्णन करने के लिए वचन ही नही है, जिनसे भगवान् के गुणो का स्तवन किया जा सके ! वचन पुद्गलरूप है और स्थूल है । भगवान् के गुण अरूपी, अमूर्त्त और चैतन्यमय हैं । ऐसी दशा मे वाणी के द्वारा भगवान् के समस्त गुणो का कथन होना सम्भव नही है ।

तीसरी बाधा बुद्धि सम्बन्धी है मनुष्यो और देवो का ज्ञान परिमित होता है । आजकल मतिज्ञान और श्रुतिज्ञान ही मनुष्यों में पाये जाते है और यह भी अपूर्ण हैं, जघन्य के लगभग है । देवो मे अवधिज्ञान होता है, किन्तु वह भी उत्कृष्ट श्रेणी का नहीं होता । कदाचित् मनुष्यो और देवो मे जितने ज्ञान हैं, वे उत्कृष्ट भी होते तो भी भगवान् के गुणो का पूर्ण रूपेण स्तवन होना सम्भव नही था । क्योकि अनन्तानन्त भावो को जानने के लिए अनन्तज्ञान की आवश्यकता है !

इस प्रकार जहा प्रभु के गुणो को पूरी तरह जानने की ही शक्ति न हो वहाँ उनके गुणो की स्तुति करने की शक्ति तो हो ही कैसे सकती है ? अनेक प्रकार की बाधाएँ मनुष्य के सामने खड़ी हैं, जिनसे वह इच्छा करने पर भी परमात्मा के गुणो का पूरी तरह स्तवन नही कर सकता ।

फिर भी हर्ज क्या है ? जिस मनुष्य मे जितनी बुद्धि हो, उसे उसी के अनुसार परमात्मा का भजन, कीर्त्तन, स्तवन करना चाहिए । 'मैं' पूरी तरह स्तवन नही कर सकता तो फिर स्तवन

करने से लाभ ही क्या है, ऐसा सोचकर किसी को भगवद् भजन से दूर नहीं भागना चाहिए। सारे ससार का अन्न नही खाया जा सकता तो क्या दो–चार मुट्ठी आटे की बनी हुई रोटियां खाना कोई छोड देता है? जगत् के तमाम जलाशयो का पानी पीना मनुष्य के लिए सभव नही है तो क्या दो लोटा पानी किसी तालाब, नदी या कुए से निकाल कर मनुष्य नही पीता है? मनुष्य अनन्त काल तक जिन्दा नहीं रह सकता, इस बात को कौन नहीं जानता? फिर भी कौन ऐसा है जो अधिक से अधिक जिन्दा रहने का प्रयास न करता हो?

तात्पर्य यह है कि 'सभी कुछ या कुछ भी नही' के सिद्धान्त पर चलने से काम नही चलने का है। इस सिद्धान्त के सहारे जीवन टिक नही सकता। अतएव मनुष्य अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सब कुछ करता है। ससार का समस्त वैभव हस्तगत करना सम्भव न होने पर भी वह यही सोचता है कि अधिक से अधिक जितना हस्तगत किया जा सके, कर लेना चाहिए। इसी भावना के साथ भगवान् के भजन और स्तवन मे प्रवृत्ति करने की आवश्यकता है। आचार्य महाराज अपनी असमर्थता को समझते हैं और स्पष्ट रूप से उसे प्रकट भी करते हैं। फिर भी वे अपनी असमर्थता के कारण स्तुति करना छोड नही बैठे। उन्होने यथामति स्तुति की है और बहुत ही उत्तम शब्दो और भावो से की है। इसी प्रकार प्रत्येक भव्य पुरुष को प्रभु ऋषभदेवजी की स्तुति करनी चाहिए।

भगवान् की स्तुति करने मे हृदय जब तल्लीन हो जाता है तो उसमे एक अनिर्वचनीय रस उत्पन्न होता है। वह रस मानों

अमृत है और हृदय के विकारो को धो डालता है। ज्यो-ज्यो विकार धुलते जाते हैं, अन्त.करण स्वच्छ और स्वच्छतर वनता चला जाता है। अन्त मे समस्त विकार दूर होते हैं और आत्मा परम + आत्मा अर्थात् ईश्वर की कोटि मे पहुँच जाती है ।

भगवान् के गुणो की स्तुति करने के लिए मनुष्य के हृदय मे श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा के अभाव मे गुणगान नही हो सकता। जिसके दिल मे, जिसके गुणो को स्थान होगा, वही उसके गुणो का वखान करेगा। अगर हृदय मे गुणो का स्थान न हुआ तो मुँह से भी गुण प्रकट नही किये जा सकेंगे। इतना ही नही, प्राय देखा जाता है कि जिसके दिल मे, जिसके गुणो के प्रति अश्रद्धा होती है, उसे उसके गुण भी अवगुण दिखलाई देने लगते हैं। वह उसके गुणो को अवगुण के रूप मे ही प्रकट करता है। ऐसा करने वाला अपनी अश्रद्धा या ईर्षा के कारण अपनी आत्मा को भी धोखा देता है और दूसरो को भी धोखा देता है। जिसके गुणो को अवगुणो के रूप मे वह प्रकट करता है, उसका कुछ भी बिगाड नही होता। वह तो वल्कि अपने गुणो का ढोल भी नही पीटता है, फिर भी उसके गुणो का प्रकाश अपने आप ही फैलता जाता है। कहा भी है—

यदि सन्ति गुणाः पुंसां, विकसन्त्यव ते स्वयम् ।
न हि कस्तूरिकाऽऽमोद, शपथेन प्रतीयते ॥

अगर मनुष्य मे गुण सचमुच मौजूद हैं तो वे आप ही आप प्रकट हो जाते हैं। कस्तूरी की गन्ध को प्रकट करने के लिए

कसम खाने की आवश्यकता नही होती । जहाँ कस्तूरी होगी, उसकी गंध विना कहे ही प्रकट हो जायगी ।

तात्पर्य यह है कि श्रद्धा के अभाव मे गुणियो के गुण भी अवगुण दिखाई देने लगते हैं और कदाचित् बहुत-से गुणो के साथ कोई छोटा-सा अवगुण हो तब तो कहना ही क्या है ! ईर्षालु व्यक्ति समस्त गुणो को छोड़ कर उस छोटे से दोष को ही ग्रहण करता है—

गुणिनां गुणेषु सत्स्वपि, पिशुनजनो दोषमात्रमादत्ते ।
पुष्पे फले विरागी, क्रमेलकः कण्टकौघमिव ॥

दोषदर्शी मनुष्य की दशा ऊँट सरीखी होती है । ऊँट फलों और फूलो के प्रति उदासीन रह कर–उन्हे नापसन्द करके कांटों को ही ग्रहण करता है, इसी प्रकार ईर्षालु पुरुष गुणीजनो मे विद्यमान अनेक उत्तम-उत्तम गुणो को छोड कर केवल उनके अवगुण को ही ग्रहण कर लेता है ।

इस मनोवृत्ति के मूल मे अश्रद्धा है । जहाँ अश्रद्धा है वहां गुणो को हृदय मे जगह नही दी जा सकती । अतएव भक्त के लिए सर्वप्रथम श्रद्धा का गुण आवश्यक बतलाया गया है । भगवान् के प्रति अनन्य श्रद्धा और अटल विश्वास अपने अन्त करण में उत्पन्न करना चाहिए । गहरी श्रद्धा उत्पन्न हो जायगी तो भगवान् के गुण समझ मे आने लगेंगे, उनके प्रति अनुरक्ति होगी, उन गुणों का अपने आप मे विकास करने की अभिलाषा जागेगी, विकास होगा और एक दिन भक्त स्वय भगवान् बन जायगा ।

श्रद्धा न होने का कारण मिथ्यात्व है। जब तक उलटा चश्मा चढा रहता है, यथार्थ रूप दिखाई नही देता। जिसे पीलिया रोग हो जाता है, उसे सब वस्तुएँ पीली ही पीली नजर आती है। इसी प्रकार अज्ञानी, मिथ्यात्वी, मूर्ख एव अनभिज्ञ लोग भगवान् के गुणो को ठीक तरह और पूरी तरह समझ नही सकते। बृहत्-कल्प मे बतलाया गया है कि तीन प्रकार के जीवो को उपदेश नही लगता है। वे तीन प्रकार के जीव हैं—

दुट्ठा, मुड्ढा विग्गाहिया।

दुष्ट के अन्त.करण पर उपदेश का असर नहीं पडता। उसे कहो कि मान जा दो की, तो कहता है—नही मानूँ सौ की न जाने कितने गर्भपात कराये, कितने के गले पर छुरिया फेरी, कितने ही अनर्थ कर डाले और लोगो मे बडे कहलाते हैं, भले समझे जाते है। मगर उनकी भलमनसाहत उसी बिल्ली मौसी के समान, है जो चूहे की घात मे चुपचाप बैठी रहती है। बिल्ली की चुप्पी तभी तक रहती है जब तक कि चूहा पूरी तरह पकड के अन्दर न आ जाय। वह पकड के भीतर आया नहा कि बिल्ली की चुप्पी की कलई खुली नहीं। बिल्ली को लाख उपदेश दो और चूहा न पकडने के लिए समझाओ, मगर वह अपनी आदत नहीं छोडेगी। इसी प्रकार ढोगी दुष्टों को सौ-सौ उपदेश दिये जाएँ तो भी वह मानेगा नही, बल्कि उसमे दोष ही देखने का प्रयत्न करेगा। जैसे बिल्ली पात्र मे रक्खे हुए स्वच्छ दूध-दही को जमीन मे बिखेर देती है और गन्दा कर देती है, इसी प्रकार दुष्ट लोग अच्छे मे अच्छे उपदेश को भी गन्दा कर देते हैं। ऐसे जीवों को समकित आना भी कठिन है।

एक बार हम साधु रास्ते में जा रहे थे। एक किसान, खेत मे कचरा इकट्ठा करके, आग लगा रहा था। एक साधु ने यह देख कर कहा–भाई, तुम आग लगा रहे हो, इसमे कितने ही जीव-जन्तु तडफ-तडफ कर भस्म हो जाएँगे। वह किसान बोला-तुमने मना किया तो हम दूनी आग लगाएँगे!

कोई कह सकता है कि इतने विद्वान् होने पर भी आप उस अबोध किसान को नही समझा सके? परन्तु हमारी बात तो जाने दीजिए, हम किसी गिनती मे नही हैं, भले-भले ज्ञानी भी अभद्र अभव्य मिथ्यादृष्टि को समझाने मे समर्थ नही हो सकते। यहाँ तक कि स्वय परमात्मा भी अभव्य जीव मे धर्मश्रद्धा जागृत नही कर सकते।

देखो, पारस बहुत अच्छा है और लोहे को अपने स्पर्श से सोना बना देता है। मगर लोहे के बदले अगर पीतल या कथीर मिल जाय तो क्या पारस उसे सोना बना सकेगा? और इससे क्या पारस मे सोना बनाने का गुण नही रहा? हाथी बहुत बडा और ताकत वाला होता है। मगर वह छोटी सी सुई को नहीं उठा सकता। तो क्या यह मान लिया जाय कि हाथी मे इतनी भी ताकत नही है?

भाई! इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष, चाहे वे महात्मा हो या परमात्मा हो, दुष्ट-अभव्य जीव को नही समझा सकते। जिसकी बिमारी असाध्य हो और आयु पूर्ण हो चुकी हो, उसे वैद्य या डॉक्टर अगर नीरोग नही कर सकते तो इसमे उनका क्या दोष है?

दूसरे मूढ जीव को उपदेश नही लगता। एक आदमी रास्ते-रास्ते जा रहा था। उसे रास्ते मे पड़ा हुवा एक दर्पण मिल गया। उसे उठा कर मूर्ख ने अपने मुँह के सामने किया तो उसे अपना ही चेहरा उसमे दिखाई दिया। वह समझा कि इस दर्पण मे कोई दूसरा घुसा बैठा है। अतएव बोला—अरे साहब, माफ करना। मुझे मालूम नही था कि आप यहां है !

एक दूसरा आदमी भागता-भागता आया और दूसरे आदमी से कहने लगा जरा देखिए तो सही कि मेरी गर्दन पर बर्र ने काटा है या नही ?

कहिए, दुनिया मे कैसे-कैसे मूढ मौजूद हैं, जिन्हे यह भी पता नही कि बर्र ने काटा है या नही काटा है ! वे पीडा होने या न होने से बर्र के काटने या नही काटने का अनुमान भी नही कर सकते। कहते है मूर्ख को ज्ञान नही, दातरा के म्यान नहीं, जबान मे हड्डी नही, हाथी के मोहरा नही, और मुक्ति मे श्मशान नही ! मतलब यह है कि वज्र मूर्ख को उपदेश दिया जाय तो भी कुछ असर नही होता। यह नही, कभी-कभी तो उस पर विपरीत ही असर होता है। कहा भी है—

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।

मूर्ख मनुष्य को उपदेश दिया जाय, कितने ही प्रेम से, सहानुभूति से और हित की बुद्धि से समझाया जाय, पर वह उपदेश सुनकर उलटा कुपित हो जाता है ! शान्ति का सचार होने के बदले उसे क्रोध आता है !

आपको मालूम ही होगा कि बया चिड़िया घौंसला बना कर उसमे रहती है और बन्दर अपने लिए घौंसला नही बनाता एक पेड पर बया अपने घौंसले मे बैठी थी। उसी पेड़ पर एक बन्दर भी आकर बैठ गया। वर्षा के दिन थे और पानी गिर रहा था। बन्दर पानी मे भीग रहा था और ठिठुर रहा था। उसे देख कर बया के दिल मे दया उपजी। बया के घौंसला इतना बडा नही था कि वह बन्दर को उसमे स्थान दे सकती। अतएव उसने सहानुभूति से प्रेरित होकर बन्दर से कहा–भाई बन्दर! तुम्हे वर्षा सर्दी और गर्मी का बडा कष्ट भोगना पडता है। हमारी तरह कोई घौंसला क्यो नही बना लेते? घौसला बना लो तो वक्त पर काम आवे और आराम से दिन निकले! देखो, मुझे चोच मे दबा-दबा कर एक-एक तिनका लाना पड़ता है। फिर भी मेहनत करके मैंने अपने लिए यह घौंसला तैयार कर लिया है! मेरी अपेक्षा तुम मे बहुत ज्यादा सामर्थ्य है। तुम्हे मनुष्यो जैसे दो हाथ भी मिले हुए है। फिर भी अपने लिए कोई ठिकाना नही बनाते और कष्ट भुगतते हो!

बया के उपदेश मे कोई अनौचित्य नही था। उसने बन्दर के हित के लिए ही यह बात कही थी। मगर इस उपदेश को सुन कर बन्दर को इतना क्रोध आया कि लपक कर उसने बया का घौंसला ही नौंच-नौंच कर नष्ट कर दिया! बोला–ले, चली है मुझे शिक्षा देने! इसी प्रकार—

पयः पानं भुजंगाना, केवल विषवर्धनम्।

अर्थात् साप को दूध पिलाना उसके जहर को बढाना है।

दूध अमृत समझा जाता है। मगर सांप को दूध पिलाया जाय तो वह विष के रूप मे ही परिणत होता है। सांप की प्रकृति ही ऐसी है कि वह प्रत्येक वस्तु को विष रूप मे परिणत कर लेता है इसी प्रकार अनेक मनुष्य अच्छे उपदेश को भी बुरे रूप में ग्रहण करते हैं ।

मूर्ख मनुष्य सत्य और असत्य का निर्णय नही कर सकता। अतएव पचमहाव्रतधारी साधु यद्यपि सत्य बात कहते है, मगर उसे वह झूठ समझता है। वह उनके कथन पर विश्वास नही लाता। इसके विपरीत गपोड़ीशख जो कहता है उसे सत्य समझ लेता है! ऐसे मनुष्यो को दुर्भव्य समझना चाहिए या अभव्य समझना चाहिए। इनका उद्धार होना कठिन है। कैसा भी ज्ञानी इन्हें समझा नही सकता।

नन्दीसूत्र मे बतलाया गया है कि योग्य श्रोताओ के लिए ज्ञान की प्ररूपणा करनी चाहिए, किन्तु अयोग्य व्यक्तियो को प्ररूपणा करना उचित नही है। ज्ञान का जो अपात्र है वह चिंतामणि के समान, अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान और परमकल्याणकारी ज्ञान को प्राप्त करके उसका दुरुपयोग करता है, मन से उसका आदर नही करता, वह अपने प्राप्त ज्ञान को हीन बना लेता है और उसके प्रभाव से दूसरे लोगों की बुद्धि को भी बिगाड़ता है इन सब कारणो से कल्याण का कारण ज्ञान भी उसके लिए अकल्याण रूप बन जाता है। कहा भी है—

आमे घडे निहत्तं, जलं तं घडं विणासेइ।
इय सिद्ध'तरहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ॥

जल कितना ही निर्मल क्यों न हो, अगर कच्चे मिट्टी के घड़े में रक्खा जाय तो वह उस घट को गला कर नष्ट कर देता है। इसी प्रकार निर्मल और निर्मलता उत्पन्न करने वाला सिद्धान्त का रहस्य रूप ज्ञान, कुपात्र मे पहुँच कर उसकी हानि करता है।

अतएव अपात्र की दया इसी मे है कि उसे बुद्धिमान पुरुष अनर्थ से बचा लेवे। जैसे बालक के हाथ मे तलवार दे देना बुद्धिमानी नही है, उसी प्रकार जो व्यक्ति जिस ज्ञान या उपदेश के योग्य नही है, उसे वह ज्ञान दे देना भी बुद्धिमत्ता नही है।

श्री नन्दीसूत्र मे योग्य और अयोग्य पात्र को समझाने के लिए अनेक दृष्टान्त दिये है और वे दृष्टान्त बोधप्रद होने के साथ ही मनोरजक भी है। उनमे से एक दृष्टान्त का आशय सक्षेप मे इस प्रकार है—

गोष्पद नामक जगल मे मुद्गशैल (मूग के दाने बराबर) नामक एक पर्वत था और किसी जगह जम्बूद्वीप के बराबर पुष्करावर्त्त नामक महामेघ था। महर्षि नारद जैसे किसी कलहप्रिय व्यक्ति ने इन दोनो को भिडाकर मजा देखने का विचार किया। वह मुद्गशैल के सामने जाकर बोला—भाई मुद्गशैल ! एक दिन की बात है। मैंने कई लोगो के सामने तुम्हारी तारीफ की थी। मैंने कहा था कि मुद्गशैल पर्वत है तो छोटा सा ही, मगर इतना पक्का है कि कितना ही जल क्यो न बरसे, उसका कुछ भी नही बिगड सकता। इस प्रकार मैने तुम्हारी प्रशसा की तो पुष्करावर्त्त मेघ को वह सहन नही हुई। पुष्करावर्त्त अपने मुह से अपनी बडाई हाँकने लगा। बोला—अजी, बेचारा मुद्गशैल मेरे

सामने क्या चीज है ! मैं बडे-बडे पर्वतो के भी टुकड़े-टुकडे कर सकता हूं। वह तो मेरी एक भी धारा को बर्दाश्त नही कर सकता !

मुद्गशैल उसकी बात सुनकर, तमक कर कहने लगा—देखिए, पुष्करावर्त्त यहाँ मौजूद नही है अतएव कुछ अधिक कहना व्यर्थ है, मगर इतना कहता हूँ कि पुष्करावर्त्त भले सात दिन-रात लगातार बरसता रहे और मूसलधार ही क्यो न बरसे अगर मेरा तिल--तुषमात्र भी बिगाड़ करदे तो मैं अपना नाम बदल दूँ !

मुद्गशैल का उत्तर सुनकर वह पुरुष मेघ के पास गया। उसने अपनी ओर से नमक-मिर्च लगा कर मेघ से मुद्गशैल के घमण्ड की सारी बात कह सुनाई। मेघ के गुस्से का पार न रहा। आखिर उसने सात दिन तक बरसना शुरू किया। समस्त भूमण्डल जलमय दिखाई देने लगा। जहा देखो, पानी ही पानी नजर आने लगा। मेघ ने यह हालत देख कर सोचा-उस घमण्डी मुद्गशैल का अब कही पता चलना भी कठिन है ! वह गल कर टुकडे--टुकडे न हो गया होगा !

इस प्रकार सोच कर उसने बरसना बन्द कर दिया। जब पानी बह गया और जमीन दिखाई देने लगी तो बड़ी प्रसन्नता के साथ पुष्करावर्त्त उस पुरुष के पास गया और बोला--चलो भाई जरा मुद्गशैल का तो पता लगाएँ कि उस बेचारे की क्या हालत हो गई है।

दोनो साथ-साथ मुद्गशैल के समीप गये। उसे जैसा का तैसा देख कर उनके आश्चर्य का पार न रहा। न वह गला था,

न सड़ा था, न उसके टुकडे ही हुए थे। अलवत्ता, पहले धूल के कारण वह मैला सा हो रहा था, मगर अब वर्षा होने पर उसका सारा मैल धुल गया था और वह अधिक चमकने लगा था। उसकी चमचमाहट देखकर पुष्करावर्त्त और उस पुरुष को ऐसा जान पडा, मानो यह हमारी हँसी उडा रहा है! पुष्करावर्त्त को यह जान कर वडी लज्जा हुई कि इतना वरसने पर भी इस पर तनिक भी असर नही हुआ। उसने अपनी हार स्वीकार की!

भाइयो! यह दृष्टान्त है और कल्पित दृष्टान्त है। न पर्वत वोल सकता है, न मेघ ही वोल सकता है। परन्तु साधारण से साधारण आदमी भी समझ सके, इस अभिप्राय से, अन्यान्य दृष्टान्तो की तरह यह दृष्टान्त दिया गया है। इसका अभिप्राय यह है अनेक लोग ऐसे भी होते है जो ज्ञान की प्रभूत वर्षा होने पर भी ज्यो के त्यो बने रहते हैं। उन पर लेशमात्र भी असर नही होता। ऐसे लोगो के समक्ष उपदेशक कितना ही श्रम करे, कितना ही समझाने का प्रयत्न करे, वे नही समझते! जव देखो तभी वे जैसे के तैसे ही वने रहते हैं!

इस प्रकार ज्ञान देते समय दाता को पात्र-अपात्र का खयाल करना पडता है। सत-महात्मा निस्वार्थभाव से उपदेश देते है। उन्हे कोई स्वार्थ नही है, कोई मतलब नही है! जगत् से उपकार के लिए ही वे वाणी का प्रयोग करते है। मुझे क्या आपसे दौलत लेनी है? क्या मेरा कोई मठ वन रहा है और वह अधूरा रह जायगा? मैं जो कुछ आपको सुना रहा हूं, वह एक मात्र इसी उद्देश्य से कि आपका जीवन पवित्र और शुद्ध वने। आपके आत्मा का कल्याण हो। देव, गुरु और धर्म के प्रति आपके

अन्त करण मे अचल श्रद्धा उत्पन्न हो और अपने हित के मार्ग पर अग्रसर हो सके। अगर आप मुद्गशैल बने रहेगे तो आपकी ही हानि होने वाली है। अतएव भाइयों! श्रद्धा लाओ। जिसके चित्त मे सुदृढ श्रद्धा होती है, वही सुगुरु का कहना मानता है, उसके अनुसार चलता है, और अपनी आत्मा का निस्तार करता है।

शास्त्रो मे, कई श्रावको के और गौतम स्वामी के भगवान् से किये गये प्रश्नोत्तर हैं। श्रावक प्रश्न करता है--भगवन्, अमुक बात क्या ऐसी है? अगर उसकी कही हुई बात मिथ्या हुई तो भगवान् उत्तर देते हैं--यह मिथ्या है और मैं यो कहता हूँ। भगवान् की बात सुनकर वे तहत करते थे, क्योकि भगवान् के प्रति उन्हें पूर्ण श्रद्धा थी।

मैं पहले भी कह चुका हूँ और फिर वही बात कहता हूँ कि खूब सोच-समझ कर, बुद्धि से परीक्षा करके किसी को अपना गुरु बनाओ। उसके बाद उस पर पूर्ण विश्वास रक्खो। उसके कहने पर चलो। फिर सशय मत लाओ। आत्मा के उद्धार का यही एक मात्र मार्ग है। घानी के बैल कब तक बने रहोगे? कब तक चौरासी का चक्कर काटते रहोगे? सद्गुरु के बताये मार्ग पर चलोगे तो जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा जाओगे।

भाइयो! आप शास्त्रो को श्रवण करते हैं और धर्म के प्रति प्रीति रखते हैं और इसी कारण यहा आये हैं। अतएव आपको हित की राह बतलाना मेरा कर्त्तव्य है। मैं समभाव से आपको वीतराग भगवान् की वाणी सुनाता हूं। आपमे जो विवे-

कशाली और बुद्धिमान् हैं, उन पर उस वाणी का प्रभाव पडेगा, मगर मूर्ख मनुष्य पर प्रभाव नही पड़ सकता। मूर्ख को उपदेश लगना मुश्किल होता है।

एक लड़का दौडा-दौडा आया और अपने पिता से बोला — काका साहब! आपको मेरी मां बुलाती है। वह उस लडके के साथ गया। रास्ते मे उसने अपने लडके को समझाया—पाच आदमियो के बीच ऐसा नही कहना चाहिए। बल्कि बात पूरी हो जाने पर चुपके से कान मे कह देना चाहिए। लड़के ने कहा—जी बहुत अच्छा! आगे से ऐसा ही कहूँगा।

एक दिन उसके मकान मे आग लग गई। लडका दौडा-दौडा आया और अपने पिता को आदमियो के बीच बैठा देख, चुपचाप खडा हो गया। वह सोचने लगा पिताजी की बाते समाप्त हो तो कान मे कहूँ! इतने मे तो मकान जल कर भस्म हो गया।

कई लोग पैसों की बचत का खयाल करके सस्ते नौकर रखते हैं। मगर वे सस्ते नौकर कितनी हानि कर देते है और कभी-कभी उनसे कितने ही महत्त्वपूर्ण काम बिगड जाते है! भला पाच रुपया मासिक वेतन पर काम करने वालो मे अक्ल हो सकती है? एक आदमी ने ऐसा ही एक सस्ता नौकर रक्खा। एक बार उसके यहा कोई मेहमान आये और थोडी-सी देर ठहर कर ही जाने की जल्दी करने लगे। घर-मालिक ने उन्हे भोजन करने का आग्रह किया। मेहमान नही माना तो कहा--अच्छा, पान तो खा लीजिए उसने अपने नौकर को चुपचाप दो आने के पैसे देकर कहा-

चार पान ले आ । वह पान लेने गया । पान वाले से कहा--दो आने के पान दे दो । पनवाडी बोला दो आने के आठ, चार और दो पान भी आते हैं । कहो, कैसे पान चाहिए ? नौकर सोच-विचार मे पड़ गया । उसने सोचा--वहा तो चार डाकी है तो चार पानो से क्या पेट भरेगा ? आखिर उसने दो आने का आटा लिया और उसकी आठ बाटियाँ बनाई और लेकर आ गया । बाटियाँ उसने पीछे की तरफ कर ली और एक हाथ से एक बाटी सामने करके सेठ को दिखलाई । घर--मालिक सेठ ने आँखें दिखलाई तो वह बोला–एक नही, आठ हैं ।

इतने मे मेहमानो ने जाने का आग्रह किया तो घर मालिक ने कहा–अच्छा, पधारिये साहब ! मेहमान जाने लगे । रास्ता संकडा था, अतः एक के पीछे एक जाने लगा । वह नौकर बीच में आ घुसा । घर वाले ने सोचा-कैसा नालायक है यह ! और उसने क्रोध मे आकर उसे एक घूंसा मार दिया । नौकर ने अपने आगे वाले मेहमान की पीठ पर जोर से एक घूंसा जमाया । मेहमान ने पीछे मुडकर देखा तो नौकर बोला--पीछे से आया है, आगे चलने दो ! सेठ की लज्जा का पार नही रहा । उसने मेहमान से माफी मागी और कहा—सस्ता नौकर रखने से घर की इज्जत जाती है ।

भाई, सस्ती पूड़िया खरीदना चाहोगे तो तेल की ही मिलेगी !

तो बात चल रही थी कि मूर्ख को उपदेश देना और साप को दूध पिलाना हानिकारक ही होता है ! मूर्ख को उपदेश देने चलोगे तो सिवाय क्लेश के और कुछ नही होगा ।

अगर आप किसी वात को पूरी तरह नही समझते हैं तो जब तक उसे, समझ न ले और उसका निर्णय न कर ले, तब तक उसे दूसरो पर प्रकट न करे। क्योंकि विना समझी वात को कह देना शिष्टता से विरुद्ध है, उसमे असत्य होने की सभावना रहती है और अनेक प्रकार के झगड़े उठ खडे होते हैं। जो लोग बिना ठीक तरह समझे-बूझे मुंह से वात कह देते हैं, उन्हे अकसर पश्चात्ताप करना पडता है, दूसरो के सामने नीचा देखना पड़ता है और हानि उठानी पडती है। वे समय पर मूर्ख बनते हैं। विवेकवान् व्यक्ति सदैव इस मूर्खता से बचता है और मूर्खो की सगति से भी दूर रहता है। महावीर स्वामी ने भी वतलाया है कि अभव्य मूर्ख को उपदेश नही लगता है और उसके साथ घनिष्ठता स्थापित करने से सम्यक्त्व दोषयुक्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जो कदाग्रही है, क्लेशशील है, उस पर भी उपदेश का असर नही पडता। वह जहा कही जायगा, उलटी वात लेकर क्लेश ही करेगा। वह दो की लडाई देखकर राजी होता है। बिना लडे या दूसरो को लड़ाये उसका खाया-- पिया हजम ही नही होता। वह नही सोचता कि मैं जो कुछ कहूगा, उसका लोगो पर क्या असर पडेगा और लोग मुझे कैसा समझेंगे? उसे इस प्रकार के विचारो से कोई सरोकार नही। दूसरो मे नवीन क्लेश जगा देने से अथवा शान्त पड़े हुए पुराने क्लेश को पुन. उत्तेजित कर देने से उसे क्या लाभ हो जायगा? दूसरो की शान्ति भग करने से उसे किस प्रकार शान्ति हो जायगी? इत्यादि बातें सोचने का वह कष्ट नही उठाता। जैसे अफीमची को अफीम खाये विना चैन नही पड़ती, उसी प्रकार

आपस मे दूसरों को लड़ाये बिना क्लेशशील व्यक्तियो को चैन नही मिलती ।

इस सम्बन्ध मे सुनने वालो का भी दोष कम नही होता । आखिर लोग कानो के इतने कच्चे क्यों हो जाते है कि बिना जाच पडताल किये किसी की बात मान ले और अपनी शान्ति को भग करे ? समझदार व्यक्ति ऐसे नारद–प्रकृति लोगो को अपने पास नही फटकने देते । कदाचित् उनकी बात सुन लेते है तो उस पर ध्यान नही देते और सुनी अनसुनी कर देते है । अथवा सुनाने वाले से स्पष्ट कह देते है कि भाई, तुम अपना काम देखो । दूसरा मुझे गाली देता है तो देने दो । जब मेरे सामने देगा तो मैं उससे निवट लूगा । इस प्रकार साफ उत्तर देने से भिडाने वाले का साहस टूट जाता है । वह फिर उसके सामने नही बोलता ।

एक गाँव मे दो धडे थे । जो साधु वहा चौमासा करते, उनके पास दोनो धडे वाले आते और एक दूसरे की बुराई करते । एक धडे वाले कहते—वे ऐसे है, वैसे है, और दूसरे धडे के लोग जब आते तो वे पहले धडे वालो के दोष बतलाते । चौमासा करने वाले साधु कभी किसी धडे की बात सच मान कर उसका पक्ष ले लेते और कभी किसी धडे की तरफदारी करते । जब साधुओ ने एक धडे का पक्ष ले लिया तो दूसरे धडे के लोगो ने उनके पास आना छोड दिया ।

ऐसे एक गांव मे मेरा भी चौमासा हुआ । मेरे सामने भी वैसी ही बातें आई । कभी एक तो कभी दूसरा आता और एक दूसरे की बुराई करता । मैं दोनो की सुनता और कहने वाले को

उदार बनने, सहनशील बनने और क्षमा कर देने का ही उपदेश देता। यो करते--करते चार महीने पूरे हो गये। जब विहार हुआ तो लोग कहने लगे-महाराज! आपने तो किसी का पक्ष नही लिया! मैंने उन्हे उत्तर दिया – जहा पक्ष है वहाँ हठ है, जहा हठ है वहा अविवेक है जहाँ अविवेक है वहाँ असत्य है, जहाँ असत्य है वहा पाप है और जहा पाप है वहा अकल्याण है! मैं अपनी आत्मा का कल्याण करने के लिए साधु बना हूँ, झगडों में पडने के लिए, पाप या असत्य का समर्थन करने के लिए नही। मैंने किसी का पक्ष नही लिया तो प्रत्यक्ष देख लो कि मुझे कितनी शान्ति मिली। पक्ष लिया होता तो ऐसी शान्ति न मिलती। निष्पक्षता मे शान्ति है, पक्षपात मे अशान्ति है। इस उदाहरण से अगर आप लोगो का पक्षपात मिट जाय तो आपकी जाति मे कैसा आनन्द होगा और कैसी शान्ति फैल जायगी!

जातियो के अस्तित्व का अगर कोई लाभ हो सकता है तो वह पारस्परिक सहानुभूति ही है। अगर जातिभाई के प्रति सहानुभूति की भावना उत्पन्न न हुई तो सजातीय होने से क्या लाभ हुआ? जब आपस मे धडे बन्दी हो जाती है तो जाति के टुकडे हो जाते हैं। भाई--भाई एक दूसरे के विरोधी हो जाते है। परस्पर निंदा की जाती है। दोष देखे जाते हैं। दो भाई आपस मे लड--भिड कर अपना बटवारा करना चाहे और अपनी माता के टुकडे करना चाहे तो आप उन्हे क्या कहेगे? यही कहेगे न कि इनसे बढकर कपूत दुनिया मे और कौन हो सकता है जो अपनी माता के भी खड--खड करने को तैयार हो गये हैं! आप जाति को भी माता मानते है। फिर धडेबन्दी करके अपनी जाति-

माता के टुकडे कर डालना क्या उसके पुत्रो का कर्त्तव्य है ?

आपको अपने जाति सम्बन्धी कर्त्तव्य का पालन करना है तो पक्षपात को त्याग दोजिए। पक्षपात का त्याग किया और जाति मे शान्ति हुई। मगर आप अपने कर्त्तव्य का पालन करें या न करे, मैं तो अपने कर्त्तव्य से बंधा हूँ और उसकी उपेक्षा नही कर सकता। इसी कारण मैं आपके झगड़ो से दूर रहा। मुझे इसके बीच मे पड़ने से क्या लाभ होता ? मेरे अन्तःकरण मे भी सक्लेश बढता और आप मे भी क्लेश बढ जाता।

भाइयो ! प्रेम होता है तो अच्छाइयाँ नजर आती हैं और द्वेष होता है तो बुराइयाँ ही बुराइयाँ दिखाई देती हैं। समभाव होता है तो वस्तु का यथार्थ स्वभाव मालूम होता है। असलियत को समझने का उपाय समभाव ही है। इन सब कारणो से मैं आपके झगडो मे नही पड़ा। हा, आपके उपकार की भावना से मैंने आपको उपदेश अवश्य दिया है और उसे सुनकर ही किसी को बुरा लगा हो तो कर्मोदय की बात ही समझिए। आप लोग जानते ही है कि कांटा निकालने के लिए सुई चुभोनी पडती है। तभी भीतर घुसा हुआ काटा निकलता है। इसी प्रकार नसीहत देते कभी कोई अप्रिय वचन भी निकल जाता है। राजा प्रदेशी को केशी स्वामी ने कहा था कि तू हमारा चोर है। उन्होने उसे यह सुई चुभाई थी, लेकिन इसमे भी मुनिराज की अपार अनुकम्पा ही निमित्त थी। किसी प्रकार के दुर्भाव से प्रेरित होकर उन्होने कठोर शब्द नही कहा था। मुनिराज के कथन का असर अच्छा ही पडा। उसने समझ लिया कि यह मुनि निःस्वार्थ हैं। स्वार्थी मनुष्य चापलूसी करता है और मीठी-मीठी बाते बनाता है।

हा, तो काँटा निकालना होगा तो सुई चुभानी पडेगी । इसी प्रकार मनुष्य को पाप रूपी काटा निकालने के लिए हितकारी, मगर कदाचित् कठोर भी सुनना ही चाहिए। अगर कोई कहता है कि सुई तो नही चुभोने देंगे तो भाई, काटा भी नही निकलेगा । काटा निकलवाना है तो सुई तो क्या, आवश्यकता होने पर ऑपरेशन भी करवाना पडता है । नही करवाओगे तो सड़ोगे और अधिक कष्ट पाओगे ।

आत्मा को अगर शुद्ध करना हो तो सत्य को सत्य मानों और स्वीकार करो। नही तो चौरासी में फिरना ही पडेगा । पक्षपात या द्वेष से बुद्धि कुंठित हो जाती है और सत्य तत्त्व का भान नही हो पाता । अतएव द्वेप और पक्षपात का त्याग करो । क्लेश से बचो । जितनी भी लडाइयाँ होती हैं प्राय. सब क्लेश-प्रिय लोगो के द्वारा ही होती हैं । कलह प्रिय व्यक्ति कलह के बीज बोता है और मूर्ख लोग उसके फल खाकर पागल बन जाते हैं और आपस मे लडाई झगडा करते है ।

बुद्धिमान् पुरुष क्लेशप्रिय आदमी की बातों मे नही आते । कदाचित् कोई मनुष्य उन्हे कोई बात कहता है तो वह यही कहते है कि चलो, प्रत्यक्ष मे ही निर्णय कर ले ! अगर वह साथ चलने को तैयार नही होता तो समझ लीजिए कि गपोडीशख है ! इसके विपरीत जो साफ तौर से निर्णय नही करता, उसके दिल मे बात जमी रहती है और कृष्णलेश्या आ जाती है ।

तो भाइयो ! मैं कह रहा था कि क्लेशी को उपदेश लगना मुश्किल है । जो पाप करता है वह पापी कहलाता है और पापी

की निन्दा करने वाला महापापी है। पाप करने वाला शुभलेश्या आने पर पापाचरण का त्याग कर भी सकता है, मगर उसकी बुराइयां फैलाने वाले का और बुराइयां करके प्रसन्न होने वाले का उद्धार होना कठिन होता है। इसीलिए कहा जाता है कि पाप की निन्दा करो, मगर पापी की निन्दा मत करो।

एक आदमी ने शीलव्रत के पालन का और हरितकाय (लिलोती) न खाने का नियम किया फिर उस नियम को भंग करके वह लिलोती खाने लगा। तो पापी है। किन्तु उसे लिलोती खाते देख कर अगर कोई उसकी निन्दा फैलाता है और उसके पाप का ढोल पीटता फिरता है तो वह महापापी है। एक की दूसरे के सामने बुराई करना घोर पाप है।

एक उपदेशक ने कहा कि कन्याविक्रय का पैसा लेने वाला नरक मे जाता है। यह सुन कर एक कन्याविक्रेता बोला–मैं अकेला ही नरक मे नही जाऊंगा, बल्कि उस पैसे से माल खाने वाले, जीमन जीमने वाले, भी नरक मे जाएंगे। ठाकुरजी के सामने नैवेद्य का थाल रक्खूंगा तो वे भी नरक मे जाएंगे और उसकी वासना लेने वाले पडौसी भी नरक मे जाएंगे। इस प्रकार मैं सब के साथ नरक मे जाऊंगा।

मतलब यह है कि पापी की निन्दा न करने का आशय यह मत समझ लेना कि उसके पापो की सराहना की जाय! नही, मेरा आशय यह नही है। जो पाप की सराहना करेंगे वे भी पापी होंगे, जो पापकर्म मे शरीक होंगे, जो पाप को मन ही मन अच्छा समझेंगे, पाप करने को उद्यत हुए पापी को पाप

करने में सहायता पहुचाएंगे, वे सभी पापी होते हैं। कहीं बकरा या पाडा मारा जा रहा है और जो जो उसे अच्छा समझेगा, सभी को पाप का भागी होना पडेगा। इसलिए भाइयो! अगर आप अपनी आत्मा को पापो से बचाना चाहते हैं तो पापो से दूर रहो, पाप की सराहना करने से भी बचो और पापी की निन्दा रूप पाप से भी बचो। अपनी आत्मा को निष्पाप बनाओगे तो निष्पाप बन जाओगे। आपका कल्याण होगा। ऐसा समझ कर मानव-जीवन को सफल बनाओ। यह जीवन बार-बार हाथ नही लगता। असली भाग्यवान् पुरुष वही है जो बुराई करने वाले की भी बुराई नही करता, बल्कि भलाई भी करता है और अनुकम्पा भी करता है।

भाइयो! दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता नही छोड़ता तो सज्जन को अपनी सज्जनता भी नही छोडनी चाहिए। एक बिच्छू पानी मे बहा जा रहा था। किसी को दया आ गई। उसने बिच्छू को कष्ट से बचाने के लिए अपनी हथेली पर रख लिया और पानी से बाहर ले जाने लगा। बिच्छू ने अपनी प्रकृति से प्रेरित होकर हथेली मे डंक मार दिया। डक लगने की पीडा के कारण उसका हाथ हिल गया और बिच्छू फिर पानी मे बहने लगा। यह देख कर उस मनुष्य के हृदय मे फिर करुणा जागी और वह फिर उसे निकालने को तैयार हो गया। पास में खडे लोग उससे कहने लगे-क्यो पागल बनते हो? बिच्छू को मरने दो। निकालोगे तो फिर काटे बिना नही रहेगा। उस दयालु ने उत्तर दिया—जब दुष्ट, बिच्छू अपनी दुष्टता नही छोडता तो मैं अपनी सज्जनता को कैसे छोड़ दूं? मैं अपने दया धर्म को छोड दूंगा तो मेरी सज्जनता

कहा रहेगी ? दुष्ट अपनी दुष्टता से वाज नही आता तो सज्जन को अपनी सज्जनता से विरत नही होना चाहिए ।

भविष्यदत्त चरित:—

भविष्यदत्त और वन्धुदत्त के आचरण का विचार करो। वन्धुदत्त ने भविष्यदत्त के प्रति दुष्टता करने में क्या कसर रक्खी थी ? फिर भी भविष्यदत्त ने अपनी सज्जनता नही त्यागी। वन्धुदत्त जव फटे हाल उसके पास आया तो उसने अपना भाई समझ कर उसे गले लगाया। वस्त्र, आभूषण, धन, सम्पत्ति सभी कुछ दिया और हृदय का प्यार भी दिया। मगर वन्धुदत्त ने अपनी दुष्टता नही छोड़ी। कहा भी है—

विरला वे संसार नेह निर्धन से पाले,
विरला वे संसार लाभ अरु खर्च संभाले।
विरला वे संसार देख कर करे अदीठा,
विरला वे संसार वदन से बोले मीठा।
अप्पा तारे जिन भजे, तन-मन तजे विकार,
औगुण ऊपर गुण करे, ते विरला संसार ।।

भाइयो ! धनवानो से प्रेम करने वाले तो ससार मे बहुत है, मगर गरीवो से प्रेम करने वाले विरले ही होते है। इसी प्रकार जो अपने हानि-लाभ को सदैव अपने ध्यान मे रखते है, वे भी विरले ही हैं। आख से कोई बात देखकर भी जो अनदेखी कर जाय, ऐसे उदार हृदय भी बहुत कम होते हैं।

एक आदमी बहुत सुशील और योग्य था, किन्तु उसकी स्त्री दुराचारिणी थी। एक दिन उसने अपनी स्त्री को परपुरुष के साथ सोते देख लिया। ऐसे अवसर पर शान्त रहना कितना कठिन है ? निर्बल और निर्धन पुरुष भी ऐसी स्थिति में उत्तेजित हुए बिना नही रह सकता। वह भविष्य का विचार न करके, क्रोध से पागल होकर मरने--मारने को तैयार हो जाता है। मगर वह आदमी अत्यन्त गम्भीर और शान्त था। अतएव वह चुपचाप उन्हे दुशाला ओढ़ा कर चला गया।

स्त्री की आख खुली तो उसने देखा--यह दुशाला मेरे पति का है और जान पडता है कि वे ही ओढा गये हैं ! यह सोचकर स्त्री की लज्जा का पार नही रहा। सोचने लगी--धन्य हैं ऐसे पति ! जो नगे को ढँके वही तो पति है मेरी नालायकी मे कोई कसर नही रही और उनकी लायकी मे कोई कसर नहीं रही ! बस, उसी दिन से उस स्त्री का दिल बदल गया। उसने अपने दुराचार के लिए घोर पश्चात्ताप किया और अपनी आखो के आसुओ से दिल का मैल धो डाला।

एक वार उसका पति बीमार हो गया। ऐसा बीमार हुआ कि बचने की आशा नही रही। स्त्री रोने लगी। उसे रोती देख मरणशय्या पर पड़े हुए पति ने कहा--तुम क्यो रोती हो ? मेरे मर जाने पर भी तुम्हे दु:ख अनुभव करने की क्या आवश्यकता है ? मैं होउँ तो क्या और न होऊँ तो क्या ? तुम्हारे सुख मे तो कोई बाधा पडने वाली नही है।

स्त्री का हृदय मर्माहत हो गया। उसने कहा--उघाड़ी को

ढँकने वाले आप हैं। देखी को अनदेखी करने वाले आप हैं। ऐसे दयालु, क्षमाशील और उदार पति का मिलना दुर्लभ सौभाग्य है! वह सौभाग्य मुझे इस जन्म मे तो क्या, जन्मान्तर में भी मिलना कठिन है!

आशय यह है कि देखी को अनदेखी करने वाले काम विगाडने वाले और वुराई करने वाले के प्रति भी जो कठोर शब्दों का प्रयोग नही करते, वल्कि मधुर वचनो का ही प्रयोग करते हैं और अपनी आत्मा का कल्याण करते है, भगवान् का भजन किया करते है और दुष्टो-दुर्जनो पर भी जो दया ही करते है, ऐसे मनुष्य दुनिया में दुर्लभ हैं।

भविष्यदत्त ऐसे ही दुर्लभ मनुष्यो में से एक था। उसने वन्धुदत्त को हृदय से प्यार किया। तिलकसुन्दरी ने भी सबके स्वागत में यथोचित भाग लिया। सबको भोजन कराया और पान खिलाये। सब लोग कुछ दिनो तक भविष्यदत्त के अतिथि बन कर तिलकपुर में रहे।

कुछ दिनो बाद सब को अपने २ घरो की याद आई। उन्होने भविष्यदत्त से कहा कुंवर साहब! आपका नगर और आपका स्नेह सभी कुछ प्रशसनीय है। मगर अब हम लोग अपने घर जाना चाहते है। बहुत दिन हो गये हैं और कुटुम्बी-जन चिन्ता करते होंगे। उन लोगो की इच्छा जान कर भविष्य-दत्त ने कहा—वन्धुओ! आपको सेवा का अवसर पाकर मैं धन्य हुआ। अब आप स्वदेश लौटना चाहते हैं तो प्रसन्नतापूर्वक लौटिए। मैं भी आपके साथ ही चलूँगा और अपनी माताजी

के दर्शन करूँगा। आप सब धनोपार्जन के लिए परदेश निकले थे, परन्तु दुर्दैव से डाकुओ ने आपको लूट लिया। इसकी चिन्ता न करें और जिसे जो वस्तु अच्छी लगे वह साथ मे ले ले। जितने परिमाण में चाहें, ले ले। किसी को किसी प्रकार की मनाई नही है। यहां सभी कुछ मेरा है और जो मेरा है उसे आप अपना ही समझें।

भविष्यदत्त की स्नेह और उदारता से भरी हुई यह वाणी सुनकर सब व्यापारी प्रकट रूप मे और मन ही मन उसकी प्रशसा करने लगे। कहने लगे—आपकी उदारता और क्षमा-शीलता की कहा तक प्रशसा की जाय? आप सरीखे पुण्य-पुरुष का ससर्ग पाकर हमारे भाग्य खुल गये!

तत्पश्चात् जिसे जो वस्तु प्रसंद आई, उसने वही ले ली। सब ने अपनी २ पोटलियाँ बाँध ली। बन्धुदत्त ने मन चाही वस्तुओ का सग्रह कर लिया। सब रवाना होकर समुद्र के किनारे पहुँचे। जहाज तैयार ही था। सबने अपना-अपना सामान जहाज पर लाद लिया। जहाज चलने को तैयार था। सब ऊपर सवार हो चुके थे।

इसी समय तिलकसुन्दरी की नजर अपनी उंगली की ओर गई। उ गली मे पहनी हुई नाग मुद्रिका वह महल मे ही भूल आई थी। वह ऊ चे दर्जे की करामाती चीज थी। नागमुद्रिका न देख कर तिलकसुन्दरी घबरा गई। उसने कहा—और तो सब ठीक है, मगर मेरी नागमुद्रिका नही है। कहीं रास्ते मे गिर गई है या महल मे रह गई है। उसका मिल जाना आवश्यक है।

भविष्यदत्त ने कहा—कहा जाती है नागमुद्रिका ! यहा कोई लेने वाला नही है । सभी कुलीन और प्रामाणिक है ।

तिलकसुन्दरी—नही, मैं ही भूल आई होऊँगी ।

यह कह कर वह खोजने के लिए एक नौकर को भेजने लगी । भविष्यदत्त ने सोचा—नौकर जायगा और नही मिलेगी तो फिर मुझे ही जाना पड़ेगा । वेहतर है कि मैं पहले ही चला जाऊं तो सब का समय व्यर्थ नष्ट न होगा । यह सोचकर भविष्यदत्त जहाज से उतर पड़ा और नगर मे पहुचा ।

पहले कह चुका हू - पय पानं भुजगानां केवल विषवर्धनम् साप को दूध पिलाना विष को वढाना ही है । भविष्यदत्त ने अपना घोर अपकार करने वाले बन्धुदत्त के प्रति महान् उपकार किया फिर भी उसके हृदय मे भरा हुआ जहर कम नही हुआ । भविष्य-दत्त को नगर मे गया देख उसकी नीयत फिर बिगड़ गई ।

भाइयों ! दुर्जन पुरुष लाख उपाय करने पर भी शायद ही सज्जन बनता है । लहसुन को केसर मे रक्खो, मगर अपनी दुर्गंध वह नही छोडता । इसी प्रकार प्रकृति के पापी और दुष्ट लोग चाहे गीता सुन ले, भागवत सुन ले अथवा आचाराग सुन ले, मगर अपनी पापमयी प्रकृति का परित्याग नही करते । उनके हृदय मे कभी नेकी आने वाली नही है । इसके विपरीत चन्दन काष्ठ को लीजिए । उसे आग मे झौंक दीजिए तो जलते-जलते भी सुगन्ध ही देगा । काट कर टुकडे-टुकडे कर दिये जाए तो भी सौरभ ही फैलाएगा । सज्जन पुरुष के प्रति दुर्व्यवहार किया जाय तो भी वह वदले मे सद्व्यवहार ही करता है । जैसे सूर्य कभी

अन्धकार नही करता, उसी प्रकार भले आदमी कभी किसी का बुरा नही करते ।

हाँ, तो भविष्यदत्त के चले जाने पर बन्धुदत्त का दिल पाप से भर गया । उसने विचार किया—अगर भविष्यदत्त को यही छोड़ कर जहाज रवाना कर दिया जाय तो कितना उत्तम हो ? मुझे उसकी यह अपार सम्पत्ति तो मिल ही जायगी, साथ में अप्सरा भी मिल जायगी ।

भाइयो ! मनुष्य का ईमान बिगाड़ने वाली दो चीजें है । कहा है

सव्वं गंथं कलहच, विप्पजेह तहाविह भिक्खू ।
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो न लिप्पइ ताई ॥

उत्तरा० अ० ८, गाथा ४

ससार की समस्त दौलत क्लेशों और दु खों का मूल है और कामभोग भी दु खो को उत्पन्न करने वाले हैं । यहाँ बन्धुदत्त इन दोनो के प्रलोभन मे पड गया । असीम सम्पत्ति और लावण्यमयी रमणी ! दोनो मे से एक का प्रलोभन भी मनुष्य को पशु बना देता है, फिर दोनों का सम्मिलित प्रलोभन क्या नही कर सकता !

बन्धुदत्त विचार करता है मैं जर और जोरू दोनो का मालिक बन जाऊगा । जरा-सा इशारा करने की देर है । जहाज चल पड़ा कि सभी कुछ अपना है । यह स्वर्ण अवसर है । जीवन मे फिर कभी आने वाला नही । भविष्यदत्त साथ चलेगा तो मेरी

हीनता का परिचय देगा। अपना ऐहसान जतलाएगा। मुझे उसके सामने नीचा देखना पड़ेगा। अगर उसे यही छोड़ दिया जाय तो सभी झझटे समाप्त हो जायगी, सारे हस्तिनापुर में मेरी तूती बोलेगी। सभी मेरी सफल यात्रा की सराहना करेगे।

भाइयो! धन और स्त्री के फेर मे पड कर मनुष्य कितना पतित हो सकता है, इसका उदाहरण वन्धुदत्त है। उसने दुष्ट सकल्प किया और फिर मन ही मन सारी योजना भी गड़ ली। उसने नाविकों के पास जाकर हुक्म दे दिया—देर मत करो। जल्दी जहाज रवाना करो।

नाविको ने ज्यों ही जहाज चलाना आरम्भ किया, दूसरे सब लोग चकित रह गये! उन्हे बन्धुदत्त की पापमयी भावना का पता नही था। अतएव वे बोले—ठहरो, ठहरो। भविष्यदत्त अभी लौटे नही हैं। उन्हे आने दो!

बन्धुदत्त चुप्पी साध कर रह गया। उसके मना किये बिना नाविक मानने वाले नही थे, क्योंकि उसी के आदेश पर उन्होंने जहाज रवाना किया था! बन्धुदत्त को चुप देख साथ के व्यापारियो के आश्चर्य का पार न रहा। उन्हे समझते देर न लगी कि यह सब पापी वन्धुदत्त की ही करामात है। इसके मन मे फिर पाप छा गया है। इसके पाप के कारण वे एक बार अपना सर्वस्व लुटा चुके थे। अतएव इस वार वे अज्ञान आशंका के कारण सिहर उठे। उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा कि भविष्यदत्त क्या छुटा, हमारा सौभाग्य ही हम से जुदा हो गया है! हाय, न जाने अब और क्या अनिष्ट होने वाला है!

व्यापारियो ने लाख-लाख कोशिशे की, मगर बन्धुदत्त नही समझा। सब मन मार कर रह गये! जहाज चल पड़ा। व्यापारी बन्धुदत्त की नीचता, कृतघ्नता और पामरता पर मन ही मन थूकने लगे।

और तिलकसुन्दरी ? उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे किसी ने बिजली का करेंट छुआ दिया हो! वह एकदम चौक पडी, पर असहाय थी। उसने अपनी कल्पना से अपने भविष्य का अनुमान लगा लिया। उसने सोचा-चिन्ता नही, जब तक मैं अपने धर्म पर दृढ हू, ससार की कोई प्रबल से प्रबल शक्ति भी मेरा कुछ नही बिगाड सकती! जो धर्म पर दृढ रहेगा, उसे अन्त मे आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

२४-१०-४८ }

कुमति--कुमारी

स्तुति :

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! आपके गुण चन्द्रमा के समान निर्मल और प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं । ऐसे-ऐसे उत्तम गुणों के आप

सागर हैं। बुद्धि मे बृहस्पति के समान पुरुष भी आपके गुणों का वर्णन करने मे समर्थ नही है। जैसे प्रलयकालीन आँधी चल रही हो और उस आँधी के कारण समुद्र के मगर-मच्छ उद्धत हो रहे हो, ऐसी अवस्था मे उस समुद्र को अपनी भुजाओ से पार करने मे कौन समर्थ हो सकता है ? जिस प्रकार उस सागर का पार पाना किसी भी पुरुष के लिए सम्भव नही है, उसी प्रकार आपके गुणो का पूर्ण रूप से वर्णन करना भी सम्भव नही है। ऐसे अनन्त गुणो के सागर भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! द्रव्य और गुण कथचित् भिन्न और कथचित् अभिन्न होते हैं। गुणो का समुदाय द्रव्य कहलाता है। द्रव्य, गुणो का अखण्ड पिण्ड है। इस दृष्टि से दोनो मे भेद नही है। मगर समुदाय और समुदायी मे भेद भी होता ही है। जैसे अन्न के दानो का ढेर अन्न के दानो से भिन्न ही कहा जा सकता है और अभिन्न भी कहा जा सकता है। दानो को अलग २ कर दिया जाय तो ढेर कुछ रहेगा ही नही और यदि उन दानों को फिर से इकट्ठा कर दिया जाय तो फिर ढेर बन जायगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दानो का समूह ही ढेर कहलाता है और दानो को अलग करके उसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नही है। इसी प्रकार गुणो का समूह द्रव्य कहलाता है और गुणो को छोड कर अलग कोई द्रव्य नही है।

तो क्या दानो का ढेर और दाना बिलकुल एक ही चीज है ? नही, ऐसा भी नही कहा जा सकता। दोनो एक ही चीज होते तो एक दाने को भी ढेर कहने मे कोई बाधा न होती। मगर

एक जगह पड़े हुए एक दाने को कोई ढेर नही कहता। इसी प्रकार एक गुण को द्रव्य नही कहा जा सकता है। इस दृष्टि द्रव्य और गुण भिन्न २ हैं।

यहा द्रव्य को अनाज के दानो के ढेर के समान बतलाया है, मगर दोनो मे आंशिक समानता ही है, पूर्ण रूप से समानता नही। एक-एक दाना अलग-अलग करके ढेर को मिटाया जा सकता है, मगर द्रव्य मे से कोई गुण अलग नही किया जा सकता। इसीलिए द्रव्य को गुणो का पिण्ड न बतला कर गुणो का अखड पिण्ड बतलाया गया है।

द्रव्य समुदाय है, गुण समुदायी है। द्रव्य आधार है, गुण आधेय है। गुण अशी है और गुण अश है। इस अपेक्षा से दोनों मे अन्तर भी है।

एक कपडे को लीजिए। कपडा द्रव्य है और उसमे पाया जाने वाला रूप उसका गुण है। कपडे मे से रूप को अलग नही किया जा सकता। रूप को अलग कर दिया जाय तो कपड़ा कोई चीज ही नही रह जायगा। गुण नही है तो द्रव्य ही नही है। प्रत्येक द्रव्य मे गुण अवश्य ही पाये जाते है और प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त गुण विद्यमान है।

उदाहरण के लिए आकाश को ले लीजिए। आकाश द्रव्य है और अवगाहना देना-स्थान देना-उसका गुण है। जहाँ आकाश है वहां उसका गुण भी अवश्य है। किसी ने एक बोरी मे नारियल भर दिये और ठूस-ठूस कर भर दिये। अब उस बोरी मे नारियल भरने की जगह नही रही तो सुपारियां भरने की जगह है। सुपा-

रिया भरते-भरते जगह न बचे तब जवार के दाने भरने की जगह रहती है और जब जवार भरने की जगह भी न रह जाय, तब भी राई भरने की जगह रह जाती है। यह अवकाश देना आकाश का गुण है।

इस जमीन को देखो और दीवार को देखो। यह ठोस मालूम होती हैं परन्तु इन मे आकाश मौजूद है और आकाश मौजूद है तो वहा खूटी को अवकाश मिलता है। आकाश न होता तो जमीन मे या दीवार मे खूटी नही घुस सकती थी। लकड़ी मे भी आकाश मौजूद है, इसी कारण उसमें तेल घुस जाता है। इससे यह जाना जाता है कि आकाश सर्वत्र है और उसमे अवकाश देने का गुण भी सर्वत्र है। आकाश सर्वव्यापी है।

इसी प्रकार आत्मा द्रव्य है और ज्ञान उसका गुण है। आत्मा मे यद्यपि अनन्त गुण है, मगर ज्ञान उसका असाधारण गुण है। वह आत्मा के सिवाय और किसी द्रव्य मे नही पाया जाता। ज्ञान से आत्मा की पहचान होती है। अतएव उपयोग को आत्मा का लक्षण कहा गया है।

आत्मा मे ज्ञान नामक गुण अनादि काल से है और अनन्त काल तक रहेगा। जीव किसी भी निकृष्ट और हीन से हीन योनि मे क्यो न चला जाय, उसके ज्ञान गुण का सर्वथा नाश कभी नही हो सकता। ज्ञान का सर्वथा नाश हो जाय तो जीव, जीव ही न रहे, अजीव हो जाय मगर ऐसा नही हो सकता। अलबत्ता ज्ञान में तरतमता पाई जाती है। पचेन्द्रिय की अपेक्षा चौइन्द्रिय मे, चौइन्द्रिय की अपेक्षा त्रीन्द्रिय मे, त्रीन्द्रिय की अपेक्षा

द्वीन्द्रिय में और द्वीन्द्रिय की अपेक्षा एकेन्द्रिय में ज्ञान की न्यूनता होती है। पंचेन्द्रियो में भी सब मे समान ज्ञान नही होता। मनुष्यों की अपेक्षा पशुओ मे और पशुओ की अपेक्षा पक्षियो मे ज्ञान की प्राय कमी देखी जाती है। यहाँ तक कि मनुष्य मनुष्य मे भी ज्ञान समान नही होता। एक बडा विद्वान् है तो दूसरा वज्र मूर्ख भी पाया जाता है। अतएव यह आशका सहज ही उत्पन्न होती है कि आखिर इस न्यूनाधिकता का कारण क्या है? जब समस्त आत्माओ का स्वाभाविक गुण ज्ञान है तो फिर इतना अन्तर किस कारण है?

परोक्ष रूप मे इस प्रश्न पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। यहा भी सक्षेप मे उत्तर देता हू। ज्ञानावरण नामक कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को ढँक देता है। जिस आत्मा ने ज्ञानावरण कर्म का जितना ज्यादा बन्ध किया होगा, उसका उदय आने पर ज्ञान की उतनी ही कमी उसमे आएगी। इस प्रकार कर्म के निमित्त से ही जीवो के ज्ञान मे तरतमता देखी जाती है। दूसरा कारण मोहनीय कर्म भी है। मोहनीय कर्म का एक भेद-दर्शन-मोहनीय-ज्ञान मे विकार उत्पन्न करता है। उसके कारण किसी जीव का ज्ञान समीचीन होता है तो किसी का मिथ्या बन जाता है। जिसके मिथ्यात्व मोह का उदय है उसका ज्ञान मिथ्या ज्ञान है और जिसके मिथ्यात्व मोहनीय का क्षय, क्षयोपशम या उपशम हो गया है, उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान रूप परिणत हो जाता है।

साराश यह है कि स्वभाव से सब जीव समान ज्ञान गुण वाले है, किन्तु आवरणों की विचित्रता के कारण उनके ज्ञान मे भी विचित्रता पाई जाती है। भगवान् ऋषभदेव ने समस्त

आवरणों को हटा दिया है अतएव उनके समस्त गुण स्वाभाविक रूप मे प्रकट हो गये हैं। वे गुणों के सागर बन चुके हैं। भगवान् की स्तुति और प्रार्थना करने से भव्य जीव भी वही स्थिति प्राप्त कर लेते है। अतएव भाइयों! अगर आप अपनी आत्मा के गुणो को विकसित करना चाहते हैं, प्रभु का पद प्राप्त करना चाहते हैं तो प्रभु का ध्यान करो, स्तवन करो, भजन करो, आत्मा के शुद्ध स्वरूप का चिन्तन करो, मनन करो। ऐसा करने से आपको अपने शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि होगी। अजर-अमर पद की प्राप्ति होगी। आपकी आत्मा परमात्म दशा प्राप्त करेगी और परमात्मा मे तथा आपमे कोई भेद नही रह जायगा।

इस परमानन्दमयी स्थिति को प्राप्त करने के लिए सुमति की सगति करनी पडती है और कुमति का सग छोड़ना पडता है। इस चेतन की दो औरते हैं—एक सुमति और दूसरी कुमति-सुमति धर्म की ओर और कुमति पाप की ओर ले जाती है। कुमति काली-कलूटी और सुमति गोरे रग की है। कुमति सिनेमा की ओर घसीटती है और सुमति सामायिक की ओर खीचती है।

कुमति का सायबा रे ! तेरे ममता मन मे बसी।

हे कुमति के पति! तेरे हृदय मे ऐसी ममता व्यापी हुई है कि उसमें सुमति का प्रवेश नही हो पाता। सुमति का प्रवेश न होने पर समता भी नही आती। कुमति ममता की जननी है। और सुमति समता की जननी है। जहाँ कुमति का राज्य है वहां वेचारी समता को कहां जगह है ?

भाइयो ! कुमति धन बढाती है तो सुमति ज्ञान बढ़ाती है। मगर कुमति के बढ़ाये हुए धन मे सर्वनाश की शक्ति छिपी रहती है। या तो दिवाला निकल जाने पर वह धन चला जाता है या धनवान् का सर्वनाश कर डालता है। परन्तु सुमति के द्वारा बढाये हुए ज्ञान का दिवाला नही निकलता। वह अक्षय हो जाता है।

कुमति के चलाये चलने वाले, उसके इशारे पर नाचने वाले लोग ससार मे बहुत हैं उसने जीवो को मोहित कर रक्खा है। उसके नखरे साधारण मनुष्यो को चक्कर मे डाल देते हैं। जितने भी मलीन विचार हैं वे सब कुमति की ही औलाद है। कुमति गन्दे विचारो को जन्म देती है।

कुमति का बाप मोह राजा है। मोहराज की यह चालाक छोकरी सब को अपनी मुट्ठी मे रखती है और सब के पीछे लगी है। पहले वह पीछे लगती है और जब आत्मा को मोहित कर लेती है तो आत्मा उसके पीछे लग जाता है। उसका खरीदा हुआ गुलाम बन जाता है।

एक ओर मोह राजा है और दूसरी ओर चेतन राजा है। चेतन राजा को मोह ने पराजित करके ससार के कारागार मे बन्द कर रक्खा है। मोह को सदैव यह चिन्ता लगी रहती है कि चेतन राजा कही ससार कारागार से निकल कर मुक्ति के साम्राज्य पर अधिकार न कर ले। इसके लिए वह सदा साव-धान रहता है। इसी अभिप्राय से उसने अपनी बेटी कुमति को चेतनराज के पास नियुक्त कर दिया है कि वह उसके मन को मुग्ध

बनाये रक्खे और चेतन को अपना साम्राज्य प्राप्त करने का विचार ही न करने दे। उसने चेतन के साथ कुमति का लग्न कर दिया है और चेतन को अपना घर--जमाई बना लिया है।

यह कुमति तभी तक ठहरती है जब तक सम्यग्दृष्टि नही आती। सम्यग्दृष्टि के आने पर उसे भाग जाना पडता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि या सम्यक्त्व का बड़ा महत्त्व है। सोचो, सम्यक्त्व बडा है या केवल ज्ञान ? सम्यग्दर्शन कहता है-हे केवलज्ञान! तुम क्या कहते हो ? जगत् मे तुम्हारी पूजा होती है, पर तुम्हारा मूल तो मैं ही हूँ। सबसे पहले मैं आता हूँ और तुम्हारे लिए रास्ता बनाता हूँ। मैं न आऊँ तो तुम आ ही नही सकते।

भाइयो! सम्यग्दर्शन का कथन पूर्ण रूप से सत्य है। अतः अगर केवलज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो सर्वप्रथम विशुद्ध सम्यग्दर्शन को प्राप्त करो। सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए कुमति का मोह छोड़ना पड़ता है। कुमति को छाती से लगाये रहोगे तो सम्यग्दर्शन को नही पा सकोगे। यह कुमति वास्तव मे कौन है ?

यह मोह-शैतान की जाई, तूने इसको बीवी बनाई ॥टेर॥

मुसलमानो की किताबो मे वर्णन आता है कि शैतान बडा खराब है। वह मनुष्य को गुमराह कर देता है। यह कुमति इसी की बेटी है और उसे तूने अपनी बीवी बना रक्खा है!

तूने इससे तबियत लगाई भूला फर्ज जाल मे आईजी।
यह खुदा से रहे जुदाई ॥ १ ॥

हे चेतन ! तेरा मन कुमति पर मुग्ध हो रहा है, इस कारण तू अपने वास्तविक कर्त्तव्य को भूल गया है। तूने अपने असली स्वरूप को भी भुला दिया है। इसी के कारण तू ईश्वर से दूर हो गया है, परमात्मा के पद पर नही पहुँच रहा है, यहा तक कि परमात्मा से प्रेम भी नही कर पाता। इस कुमति की एक वहिन 'खुदाई' है अर्थात् अहभावना है।

तुझे मोटर बीच बैठाती, गुलशन को हवा खिलाती जी।
है जाहिल इसका भाई ।। २ ।।

तड़कीले-भड़कीले कपड़े पहनाना, स्नान करके इत्र, तेल, फुलेल लगाना, सिनेमा दिखलाना, नाना प्रकार के नखरे कराना, यह सब कुमति की ही चालवाजिया हैं! मोटर मे बिठला कर बाग-बगीचो की सैर करा कर वह तुझे भुलावे मे डाल रही है। कुमति का एक भाई है—वह जाहिलपन है, यानी मूर्खपन है। क्योकि मूर्खता के साथ ही कुमति आती है। जो मूर्ख होगा, उसी मे कुमति होगी।

फिर अच्छे माल चखाती, फिर महफिल में ले जाती जी।
करे बेहोश नशा पिलाई ।। ३ ।।

यह कुमति अच्छे माल खिलाती है और ऐसा चटोरा वना देती है कि जरासा फर्क आ जाय तो मनुष्य कहता है-हमे तो नही भाता! सुमति वाला कहता है कि—भाई, शरीर को भाड़ा देना था सो दे दिया। उदर का खड्डा भरना था सो भर लिया। परन्तु कुमति के वशीभूत बना हुआ मनुष्य कहता है–

अजी यह भोजन क्या है, कचरा है! आदमियो के खाने की चीज थोड़े ही है। यह तो बाँटा है आँटा! और कदाचित् उत्तम भोजन मिल जाय तव भी सुमति का स्वामी वही समभाव रखता है उसके हृदय मे लोलुपता नही होती। उसके लिए नीरस और सरस आहार समान ही होता है। परन्तु कुमति का गुलाम विषम भावी होता है और उत्तम भोजन पाकर एकदम प्रसन्न हो जाता है। कहता है वाह वाह! क्या ही स्वादिष्ट भोजन है। मजा आ गया! दिल चाहता है, खाते ही रहे। मगर पेट साथ नही देता! इस प्रकार कुमति जब आती है तो वह जीभ मे भी अन्तर डाल देती है। सुमति जीभ मे समभाव उत्पन्न करती है और कुमति विषमभाव उत्पन्न करती है।

कुमति आँखो मे भी फर्क कर देती है। कुमति के प्रभाव से आखों को साधु नही नजर आते, औरते नजर आती हैं। कुमति पाप रूपी सेज बिछाती है और मुहब्बत का तकिया लगाती है। उस पर जीव को सुलाती है। परन्तु हे जीव! याद रख कि वह सेज नही है, वह चिता है तेरे कल्याण की, तेरे सद्गुणो की और तेरे भावप्राणो की! वह नरक की भूमि है! कुमति शय्या पर बिठला कर तुझे मोह का नशा पिलाती है और बेहोश कर देती है। बेहोश होकर तू आपा भूल जाता है। तू निगोद की हालत मे जा पड़ता है और अनन्त काल तक वहा पड़ा रहता है। वहा एक-एक श्वास जितने समय मे साढ़े सत्तरह बार जन्म-मरण की वेदना भुगतनी पडती है। न जाने कितनी उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तूने उस स्थिति मे, कुमति के द्वारा पिलाये हुए नशे मे बेभान होकर बिताई है!

यह तुझको कातिल बनावे, और बेइन्साफ करावेजी।
इसे खौफ हसर का नाई ।। ५ ।।

कुमति के फन्दे मे पडा हुआ मनुष्य क्या नही बन जाता ? उसमे सभी प्रकार के दुर्गुण आ जाते है। कहा तक नाम ले-ले कर उनका वर्णन किया जाय ? कुमति मनुष्य के दिल से दया को दूर करके उसे क्रूर निर्दय और हत्यारा भी बना देती है। अन्याय और अनीति के मार्ग पर ले जाती है। कोई पाप ऐसा नही जो कुमति वाला न कर सकता हो। जगत् मे जितने भी पाप हैं, दुष्कर्म हैं, अन्याय है, अत्याचार है, और जिनके कारण मनुष्य के ऊपर बडी से बडी विपत्तियाँ आकर टूट पडती है और जीवन को घोर अभिशाप रूप बना देती है, वे सब दुर्बुद्धि का ही प्रताप हैं !

भाइयो ! अगर दुर्मति के पजे से अपना छुटकारा चाहते हो सुमति की शरण मे जाओ। सुमति तुम्हारे कल्याण का पथ प्रदर्शित करेगी। वह तुम्हे तुम्हारे असली स्वरूप की झाकी दिखलाएगी पापो से बचाएगी, दुःखो से त्राण करेगी और मुक्ति के साम्राज्य का अधिकारी बनाएगी।

सुमति की शरण मे जाने का अर्थ है सम्यग्दर्शन को प्राप्त करना। सम्यग्दर्शन का आविर्भाव होता है। तो शरीर पर से भी मोह हट जाता है। सम्यग्दृष्टि समझ जाता है कि मैं अरूपी चेतनामय हू और शरीर जड और रूपी है। शरीर मेरा नही है और मैं शरीर का नही हू। क्यो इसके निमित्त पाप का भागी बनू ?

जब मालूम हो जाता है कि मुझे इस मकान को छोड़ना है तो कोई भी किरायेदार उस मकान को धुलाई, पुताई और मरम्मत नही कराता, क्योंकि उसे उसमे रहना नही है। इसी प्रकार ज्ञानी जीव सोचता है कि मुझे एक न एक दिन इस शरीर को छोड़ना ही है, तो फिर इसके लिए पाप का आचरण करके क्यो अपने आपको दु खो का पात्र बनाऊँ ?

भाईयो! आप भी इस बात को जानते तो हैं, मगर आपका ज्ञान स्थायी नही रहता। धर्मस्थान से बाहर जाते ही या किसी का दाहसस्कार करके श्मशान से लौटते ही आप इस ज्ञान को भूल जाते है। फिर उन्ही सस्कारो के वशीभूत हो जाते है और शरीर को ही आत्मा मान कर व्यवहार करने लगते हैं। आप कदाचित् सोचते होगे कि हम सदैव आत्मा को शरीर से भिन्न समझते रहते हैं, मगर ऐसा होता तो आप कभी के पापो से विरत हो गये होते। जम्बूकुमार को जब श्रद्धा हो गई कि यह ससार दु.खो के दावानल से जल रहा है और शरीर के सुख आत्मा के दु.ख के कारण होते हैं तो क्या वे ससार मे अनुरक्त हुए ? माता-पिता ने कितनी ही दीनता दिखलाई, पत्नियो ने अपार प्रेरणा की परन्तु वे एक क्षण के लिए भी ससार मे अनुरक्त नही हुए। आप शरीर को आत्मा से भिन्न समझते हो तो आपके सामने कोई आग की चिनगारी लेकर आवे और कहे कि इसे तुम्हारी हथेली पर रक्खूँगा, तो आप भागने की चेष्टा तो नही करेंगे ? अगर आप भाग जाने को तैयार हो जाएँ तो समझना चाहिए कि अभी तक आपकी श्रद्धा का परिपाक नही हुआ है। स्व-परभेदज्ञान था मुनिवर गजसुकुमार मे, जिन्होने राजकुमार होकर भी मस्तक

पर अगारो को समभाव से, अविचलित भाव से सहन किया था। क्या उन्होने वचाव की कोशिश की थी ? उनमे तो ऐसा उत्कृष्ट प्रभाव था कि अगर जरासी हुँकार कर देते तो सोमल ब्राह्मण को भागते गैल न मिलती। मगर उन्होने स्व-पर का ज्ञान पा लिया था। वे देह को परपदार्थ समझ कर उससे उदासीन हो गये थे।

इस कथन का आशय यह नही है कि मैं आप सवको एकदम साधु वन जाने के लिए कहता हूँ और दुनियादारी के सभी-कामो को छोड़ बैठने का उपदेश दे रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि ऐसा नही हो सकता। अतएव मैं यही कहता हूँ जव ससार का कुछ भी काम करो तो विवेक को मत भूलो। उदासीन वृत्ति रक्खो, उसमें लिप्त और अनुरक्त मत होओ। जैसे कमल जल मे रहता हुआ भी जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार ज्ञानीजन दुनिया मे रहता हुआ भी दुनिया से अलिप्त रह सकता है। जेल खाने मे रहने वाला कैदी, कैदियो की सभी मर्यादा का पालन करता है और कैदखाने मे रहता है, फिर भी क्या वह कैदखाने मे अनुरक्त होता है ? नहीं। वह तो यही सोचता है कि कव सजा की अवधि पूरी हो और कब मैं कारागार से छुटकारा पाऊँ ? इसी भाँति ज्ञानी पुरुष ससार-व्यवहार करता भी यही भावना रखता है कि 'कव आयगा वह दिन कि वनूँ साधु बिहारी।' वह सौभाग्य का सूर्य कव उदित होगा कि मैं ससार के प्रपच से अलग होकर अपनी आत्मा मे रमण करुँगा ?

ज्ञानी पुरुष अपने कर्त्तव्य की ओर ध्यान देते हैं। वे फल के लिए लालायित नही होते। उन्हे विदित है कि कर्त्तव्य का फल

मिट नही सकता । वह कभी न कभी मिलेगा ही । फिर फल की लिप्सा करके कर्त्तव्य से ध्यान क्यो हटाया जाय ? ज्ञानी जन केवल ज्ञान की भी कामना नही करते, अलवत्ता केवल ज्ञान पाने की योग्यता को प्रकट करने मे ही प्रयत्नशील रहते है । योग्यता प्राप्त होने पर केवल ज्ञान तो स्वत ही प्राप्त हो जाता है ।

कोई कहता है--देखो, हमे किसी ने प्रेसीडेट नही बनाया ! अच्छा भाई, बन जा प्रेसीडेट, छीन ले प्रेसीडेट के गले की माला ! मगर यह याद रख कि ऐसा करने पर तीन धक्के खाने पडेगे ! प्रेसीडेट बनने का सही तरीका यही है कि योग्यता प्राप्त करो ।

पहले हलुवा बनाने का सामान इकट्ठा करलो तो हलुवा बनने मे क्या देर लगेगी ? तुम्हारे पास घी, शक्कर, आटा और ईंधन ही न होगा तो हलुवा काहे का बनाओगे ? महत्त्वपूर्ण बात हलुवा बनाने की सामग्री इकट्ठी करना है । सामग्री जुटाना ही कठिन है, हलुवा बनाना कठिन नही है । परन्तु लोग सामग्री इकट्ठा करना नही चाहते और हलुवा गटक लेना चाहते हैं । यह कैसे होगा ? जो लोग उल्टी सामग्री इकट्ठी करते है, मिथ्यात्व और अज्ञान को बढाने वाले काम करते हैं और केवल ज्ञान की अभिलाषा करते है, उनके सम्बन्ध मे क्या कहा जाय ? वे उसी मूर्ख मनुष्य की कोटि मे गिनने योग्य हैं जो उसी शाखा को काटता है जिसका आश्रय लिये है । ऐसा करने वाला गिरेगा और अवश्य गिरेगा ।

लोग कहते हैं, मैं सुखी होता, दुखी क्यों हो गया ? पर यह तो पहले ही सोचना था । सुखी होना था तो दु.ख के काम क्यो

किये ? जीवत रहने की इच्छा है तो जहर क्यो पीते हो ? कुमति से अपना पिण्ड क्यो नही छुडाते हो ?

भविष्यदत्त चरित:—

वन्धुदत्त ऐसा ही उलटा काम कर रहा है। वह अपकीर्ति से बचने के लिए और कीर्ति लूटने के लिए चिन्तित है, मगर काम अपकीर्ति फैलाने वाला कर रहा है। धन-सम्पत्ति चाहता है, मगर पाप करने को तैयार हुआ है। सुख की कामना से दु:ख बढाने वाली करतूत कर रहा है। वह जिस शाखा पर बैठा है उसी पर कुल्हाड चला रहा है।

व्यापारियों के मना करने पर भी जब वन्धुदत्त मौन साध कर बैठा रहा और जहाज रवाना हुआ तो तिलकसुन्दरी से न रहा गया। उसने कहा—ठहरो, मेरे पतिदेव अभी नहीं आये हैं। देवरजी ! आपके भाई तो आये नही और जहाज क्यो चल दिया ? वन्धुदत्त फिर भी चुप्पी साधे रहा। तब तिलकसुन्दरी ने कडक कर कहा—सावधान रहना वन्धुदत्त ! पाप कभी पुण्य नहीं वन सकता। पाप के आचरण का फल एक बार भोग चुके हो, लेकिन अभी सीख नही मिली। विश्वासघाती कभी सुखी नही हो सकता। कृतघ्न ! घोर पाप से डर। इतना उपकार करने वाले भाई के प्रति यह अपकार ! यह व्यवहार ! याद रखना, तुम्हें इसी जन्म मे नरक की यातना भुगतनी पडेगी।

मगर 'जो कछु लिख्यो ललाट मे, मेंट सके नहि कोय।' वन्धुदत्त के भाग्य मे यातनाएं, अपकीर्ति और फजीहत ही लिखी थी तो वह सीधे रास्ते पर कैसे चलता ? नीतिकार ठीक ही कहते हैं.—

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।

जब आदमी का बुरा होना होता है तो पहले उसके विचार बुरे बन जाते हैं। बन्धुदत्त ने मन मे विचार किया—अनीति और नीति मे क्या रक्खा है ! इतना धन और रमणीरत्न हाथ आ रहा है तो उसे जान बूझ कर छोड देना कौन सी बुद्धिमत्ता है ? ऐसी नीति को लेकर क्या चाटना है !

तिलकसुन्दरी विचारो मे डूबने और उतराने लगी। क्षण भर के लिए वह भयभीत हुई परन्तु दूसरे ही क्षण उसमें तेजस्विता का उदय हो गया, जो तेजस्विता पतिव्रता और सती स्त्रियो मे स्वाभाविक रूप से विद्यमान होती है। पर उसे अपने पतिदेव का विचार व्याकुल बनाने लगा। उसने सोचा मैं तो हर हालत मे अपने धर्म की रक्षा कर ही लूँगी और आये हुए संकटो को भी वज्र की छाती बना कर सह लूँगी परन्तु मेरे पतिदेव की क्या स्थिति होगी ? वे निर्जन प्रदेश मे एकाकी रह गये है। उनका समय किस प्रकार व्यतीत होगा ? अफसोस, वे मेरा स्मरण करके कितने व्यथित हो रहे होगे !

इसके बाद तिलकसुन्दरी अपनी दुर्बुद्धि को धिक्कारने लगी। वह सोचने लगी—क्यो मैंने नागमुद्रिका के लिए उन्हे जाने दिया ? हाय ! मेरी बुद्धि पर ही पत्थर पड गये थे। पर कौन जानता था कि बन्धुदत्त के दिल मे ऐसा घोर पाप छिपा हुआ है ! किसे पता था कि यह विषधर साप है और अवसर पर डँस लेगा ? हे नाथ ! आपने दानव के अभिमान को उतार कर मुझसे विवाह किया था। आपकी वीरता और बहादुरी पर मुझे

भरोसा है ! हे प्राणवल्लभ ! किसी प्रकार शीघ्र आइए। आपने आने मे विलम्ब किया और मैं हस्तिनापुर पहुँच गई तो आपकी माता रुदन करेगी। उन्हे कौन सान्त्वना देगा ? हाय, माता का हृदय विदीर्ण हो जायगा।

इस प्रकार विचार कर तिलकसुन्दरी बहुत बेचैन हुई। फिर उसका ध्यान अपनी ओर गया। वह अपनी ओर से निश्चिन्त हो चुकी थी। जब कोई व्यक्ति प्राणो की ममता छोड कर किसी सकल्प पर चट्टान की नाई अटल हो जाता है तो उसमे अद्भुत साहस आ जाता है शरीर और प्राणो की ममता त्याग देने के बाद फिर डर ही क्या रह जाता है ? तिलकसुन्दरी प्राणों का मोह छोड कर धर्म की रक्षा का अटल निर्णय कर चुकी थी। अतएव उसमे साहस आ गया था। उसने उसी समय अपना शृङ्गार त्याग दिया। सुन्दर वस्त्र उतार कर सादे वस्त्र धारण किये, आभूषण शरीर पर से हटा दिये। जब तक पति से मिलन न हो, एकासन करने और जमीन पर सोने का नियम ले लिया। उसने विचार कर लिया—रोने-कलपने से कुछ नही होगा। आर्त्तध्यान त्याग कर धर्मध्यान करने से ही कल्याण होता है। यह सोचकर वह अपने तन और मन को स्वच्छ करके महामत्र-नमस्कारमत्र—का जाप करने लगी। उसने प्रभु के साथ अपना एकाग्र ध्यान लगा लिया। जहाज चल रहा था, मगर तिलक-सुन्दरी का चित्त स्थिर था, अचल था।

उधर भविष्यदत्त मुद्रिका लेकर समुद्र के किनारे आया तो उसे जहाज रवाना हो गया दिखलाई दिया। उस समय जहाज थोड़ी ही दूर पहुँचा था। भविष्यदत्त ने चिल्लाकर कहा--भाई, ओ

वन्धुदत्त ! रोक, जहाज को रोक। मगर जहाज कब रुकने वाला था ?

जहाज को जाते देख कर भविष्यदत्त समझ गया कि दुष्ट ने अपनी दुष्टता नही छोडी। एक बार उसकी आखो मे आँसू आ गये। उसे अपनी माता और पत्नी की चिन्ता हुई। अभी तक तो हम सभी परदेश मे थे, अतएव माता के लिए चिन्ता का कोई विशेष कारण नही था, मगर जब बन्धुदत्त घर पहुच जायगा और उसकी मा उसे देखेगी तो कितनी प्रसन्न होगी ? और मेरी माता को जब पता चलेगा कि मै नही पहुँचा हूँ तो उसकी क्या हालत होगी ? उसके दिन कैसे बीतेंगे ? हाय, दुखिया माता रो-रोकर और सिर फोड-फोड कर मर जायगी ! और तिलकसुन्दरी पर न जाने कैसी बीत रही होगी ! इस समुद्र के बीच उसके हृदय मे भी वेदना का समुद्र उमड रहा होगा !

उसे फिर बन्धुदत्त का खयाल आ गया। घृणा से उसका हृदय भर गया। सोचने लगा—अरे हत्यारे भाई ! तुझको ज़रा दया नही आई ! मैंने कितनी भलाई की, पर तुझे सद्‌बुद्धि न आई। अफसोस ! कल्पना भी नही की जा सकती कि मनुष्य का इतना अधिक अध पतन हो सकता है। उपकार के बदले यह अपकार ! न जाने किस जन्म का बदला ले रहा है !

जब तक जहाज दिखाई देता रहा, वह किनारे खडा उसी की ओर देखता रहा। जब आखो से ओझल हो गया तो उसकी बेचैनी का पार न रहा। आखिर वह फिर नगर की ओर चल दिया। महल मे पहुँच कर और तिलकसुन्दरी का पलग देखकर

फिर उसकी आंखें भर आईं। सोचने लगा--चिन्तामणि रत्न मेरे हाथ से निकल गया है। देखे कितनी आपत्तियां झेलने के बाद वह हाथ आता है। ओ तिलक! तुम्हे भी कितने कष्ट भोगने पडे हैं! पहले माता और पिता आदि का दुस्सह वियोग सहन करना पड़ा और अब पति का वियोग सहन करने का अवसर आ गया!

अवश्यमनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

-किये हुए शुभ या अशुभ कर्म अवश्य भोगने पडते हैं।

इस प्रकार सोच-विचार करके भविष्यदत्त ने अपने हृदय को मजबूत किया। आखिर चिन्ता करने से क्या लाभ है? जो होना था सो हो गया और जो होनहार होगा सो होगा! मनुष्य को प्रत्येक परिस्थिति मे अपने चित्त को शान्त और गम्भीर बनाये रखना चाहिए। यही दुःख की अनुभूति से बचने का स्वाधीन उपाय है। यह सोच कर भविष्यदत्त ने प्रभु का स्मरण किया और शुद्धभाव करके नमस्कारमंत्र का जाप करता हुआ धर्मध्यान करने लगा। उसने ईश्वर के साथ अपनी एकतानता साधी और सामायिक मे मग्न हो गया।

सामायिक पूर्ण करके उठा तो उसके हृदय की व्याकुलता बहुत कुछ दूर हो चुकी थी। फिर भी उसका मस्तिष्क शान्त नही रह सका। उसे फिर अपनी माता और पत्नी का स्मरण आने लगा। सोचा--जिसके साथ भी मेरा सम्बन्ध जुडा वही दुखी हुआ। पहले माता को ही कष्ट भोगने पड़े और अब तिलकसुन्दरी मे नाता जोड़ा तो उसे भी कष्ट भोगने पडे। यह सब मेरे कर्मों का ही प्रभाव है! हे कर्म! तुम अपना पूरा २ बदला ले लो, कमी

मत रखना। मैंने समझा था कि अब सुख से समय बीतेगा, किन्तु इन दुष्कर्मों ने क्षण भर मे ही सारे मसूबों को मिट्टी मे मिला दिया! मुझे अपने लिए कोई चिन्ता नही है। मगर बेचारी माता की क्या दशा होगी? किसी प्रकार मैं माता को देख सकूँ और वह मुझे देख सके तो उसके प्राणो की रक्षा हो जाय! हे जगदीश्वर! हे अखिलेश्वर! आपकी ही शरण हैं। प्रभो! क्या होने वाला है, यह आप ही जानते है!

उधर तिलकसुन्दरी अपने पति का स्मरण करती और विकल होती है। सामायिक कर चुकने के पश्चात् उसे फिर अपने पति का स्मरण हुआ और वह रोने लगी। आँसू रोकने की उसकी चेष्टा विफल हुई।

इसी समय जहाज के कमरे के द्वार पर आहट हुई और द्वार खुलने लगा। तब तिलकसुन्दरी ने कडक कर कहा—कौन भीतर आ रहा है? मेरे पति पास मे नही है और यहाँ कोई भी पुरुष न आवे।

आगन्तुक पुरुष बन्धुदत्त था। उसने ढिठाई के साथ कहा—भावज, चिन्ता मत करो। कोई गैर आदमी नही आया है। यह तो मैं हूँ, तुम्हारा ही देवर! मेरा नाम बन्धुदत्त है।

तिलकसुन्दरी-बन्धुदत्त या वैरीदत्त! अपने बन्धु के साथ घोर से घोर कृतघ्नता करने वाले, उनके प्राणों के प्यासे तुम 'बन्धुदत्त' नाम को क्यो लजाते हो? चले जाओ यहाँ से। मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती। तुम मेरे घावो पर नमक छिड़कने आये हो!

बन्धुदत्त—भावज ! ऐसे कठोर वचन मत कहो। प्रेम पूर्ण वाणी बोलो। तुम्हारे मुख रूपी चन्द्रमा से तो अमृत झरना चाहिए, विष का झरना अस्वाभाविक है। देखो, अपनी स्थिति को सोचो। तुम्हे मेरे जैसा दूसरा साथी नही मिलेगा।

तिलकसुन्दरी--बन्धुदत्त ! जरा होश सँभाल कर बोलो। स्त्री के मुख मे अगर अमृत है तो विष की पुतली भी है। प्राणो की रक्षा करनी हो तो उससे बच कर ही रहना। उसने रावण की क्या दुर्गति की थी ? कीचक ने क्या फल पाया था ? जानते नही हो या कामाँध होकर भूल गये हो ? कुछ भी हो। अपना कलंकी मुख मुझे न दिखलाओ। लौट जाओ मैं बखूबी समझती हूँ कि तुम्हारे समान अधम, बन्धुद्रोही, कृतघ्न और अनीति--परायण साथी दूसरा नही मिलेगा। न मिले, इसी मे मेरा सौभाग्य है। तुम समझते हो कि मेरे पति यहाँ मौजूद नही हैं, अतएव तुम मेरा अपमान करने आये हो। मगर याद रक्खो, मेरे भविष्य यहा भी मौजूद है।

बन्धुदत्त--जितनी चाहो, गालिया दे लो भाभी। पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि अब भविष्यदत्त यहा नही हैं। वह कही पहाडो मे टक्करे खा रहे होगे। और अब इस जीवन में तुम उन्हे नही पा सकोगी। वे तो वही रहेगे और वहीं मरेगे। क्या तुम उनकी स्मृति मे अपना जीवन नष्ट कर दोगी ? मुझे स्वीकार कर लो न ?

तिलकसुन्दरी--निर्लज्ज पापी ! अपने भाई के प्रति ऐसी भावना रखते हुए भी तुम मनुष्य होने का दावा करते हो ? मैं

तुम्हारे बड़े भाई की स्त्री हूँ--तुम्हारे लिए माता के समान हूँ। क्या तू अपनी माता के प्रति भी ऐसी दुर्भावना रख सकता है ? तेरे इन वचनो के आघात से पृथ्वी उलट जायगी, पहाड फट जाएँगे। मेरे पतिदेव की शक्ति को तू पामर क्या समझे? वे मिलेगे, अवश्य मिलेगे और शीघ्र ही तुझे अपनी करतूत का नतीजा भुगतना पड़ेगा।

वन्धुदत्त--भौजाईजी, आप उत्तेजित न हो। शान्तचित्त से सारी परिस्थिति का अवलोकन करे। जो हो चुका है वह अन-हुआ नही हो सकता। भाई अव लौट नही सकते। परन्तु मैं क्या उनसे कम हूँ? मेरा रूप--लावण्य भी क्या उनसे हीन है?

तिलकसुन्दरी--परिस्थिति को मै देख रही हूँ, मगर यह भी मै जानती हूँ कि धम शाश्वत है, अचल है और स्थायी है, वह परिस्थिति के अनुसार पलट नही सकता परिस्थिति वदलती है, विचार बदलते है मगर धर्म नही बदलता। ऐसी दशा मे परि-स्थिति पर विचार करके भी मैं अपने पतिव्रत धर्म पर दृढ हूँ। तुम तो क्या देवता भी आकर मेरे सतीत्व को भग नही कर सकता। असीम शक्ति के धनी रावण के पंजे मे फँसी हुई सीता माता के सामने जितनी विकट परिस्थितिया थी, मेरे सामने उतनी नही है रावण राजा की तुलना मे तेरे पास क्या शक्ति है? जिसने अपने धर्म की रक्षा के लिए प्राण देने का निश्चय कर लिया हो, परिस्थिति उसका कुछ भी नही बिगाड़ सकती। जिसे जिन्दगी का मोह है, प्राणो की ममता है, जो विषयभोग और सांसारिक सुखो का गुलाम है, कायर है, वही परिस्थिति को सोचा करता है। धर्मवीर पुरुष

परिस्थितियो का निर्णय करता है, उसके सामने माथा नही टेकता। याद रखना बन्धुदत्त! तिलकसुन्दरी मोम की पुतली नहीं है जो विपत्ति की आँच लगते ही पिघल जायगी। ससार की बड़ी से बडी शक्ति भी उसे धर्म से च्युत नही कर सकती। तुम किसी भ्रम मे मत रहना बन्धुदत्त! और तुम अपने रूप-लावण्य पर अभिमान करते हो? परन्तु मेरे पति अगर सूर्य हैं तो तुम उनके सामने दीपक हो! मगर मेरी नजर में बाहर का रूप, रूप नही है। यह रूप तो एक प्रकार की आग है जो मनुष्य रूपी पतिंगो के प्राण ले लेता है! मैं अपने पति के रूप पर ही मुग्ध नही हूँ, मैं मुग्ध हूँ उनके उत्तमशील पर, उच्च और पवित्र व्यक्तित्व पर, उनके साहस और धर्म पर, और मैं इसलिए मुग्ध हूँ कि वे मेरे पति हैं! उनमे रूप लावण्य न होता तो भी वे मेरे आराध्य थे, मेरे जीवन-सर्वस्व थे! उनमे रूप सौन्दर्य है तब भी वही मेरे लिए सब कुछ है!

अहा तिलकसुन्दरी के वचन कितने उदात्त हैं! वास्तव मे तिलकसुन्दरी जैसी पतिपरायण और धर्मशीला महिलाएँ ही इस महीमण्डल का मंडन हैं! बहिनो! तिलकसुन्दरी के समान अपने जीवन को बनाओगी और धर्म पर दृढ रहोगी तो तुम भी ससार मे आदरणीय पद पाओगी।

बन्धुदत्त ने देखा कि फुसलाने से काम नही चल सकता। तिलकसुन्दरी किसी प्रलोभन मे नही आ सकती। इसको वशीभूत करने के लिए तो भय का प्रदर्शन करना पडेगा। अतएव वह बोला--देखो तिलक! मैं चाहता था कि गुड से काम चल जाय तो जहर क्यो दिया जाय? पर देखता हूँ कि तुम सीधी तरह मानने

वाली नही हो। मेरी बात न मानोगी तो याद रखना कि प्राणो से हाथ धो बैठोगी और दुःख पाओगी।

इतना कहकर बन्धुदत्त ने अपनी तलवार निकाली। तलवार दिखला कर उसने कहा-देखो, प्राणो की रक्षा करना हो तो मेरी बात मान लो। प्राण रहेगे तो धर्म भी रह जायगा। प्राण त्यागने पर धर्म कहा टिकेगा? मूर्खतावश मेरी अवहेलना की तो यह नागिन तुम्हारे प्राणो को और साथ ही धर्म को भी डँस लेगी। आगे-पीछे की सोच लो। फिर पछताओगी और प्राणो को खो बैठोगी। मैं कोई साधारण आदमी नही हूँ।

तिलकसुन्दरी तलवार को देखकर मुस्किरा दी। उसने कहा-पामर प्राणी! तू अपने सामने मुझे कायर समझता है। मै एक जिदगी के लिए अनन्त जीवनो के सारभूत धर्म को तिलाजलि दे दूंगी? मैं शरीर की गुलाम नही हूँ। धर्म के लिए मरने वाला अमर हो जाता है। मैं प्रसन्नतापूर्वक प्राण अर्पण कर दूँगी और अपने धर्म का सरक्षण करूँगी। तेरी दुर्वासनाओ की आग मे पड कर तिल-तिल करके जलने की अपेक्षा एक साथ प्राणो को त्याग देने मे क्या हानि है? ले, मेरे प्राणो को ले ले, पर मेरा धर्म नही ले सकता।

इतना कह कर तिलकसुन्दरी ने अपनी गर्दन झुका दी। यह देख कर नीच बन्धुदत्त तलवार रख कर उसे पकडने दौडा। मगर तिलकसुन्दरी दूर हट कर एक ओर खडी हो गई। इस समय उसकी आखो से क्रोध की मानो ज्वालाएँ निकल रही थी। सती का तेज उद्दीप्त हो उठा। बन्धुदत्त उस तेज को देखकर अप्रतिभ हो

गया। उसे साहस न हुआ कि एक कदम भी आगे वढ सके। वास्तव मे सतीत्व का तेज बड़ा ही प्रभावशाली होता है। उसके तेज के सामने पापी की आत्मा कांप उठती है। वासनाओ से दुर्वल बना हुआ हृदय कभी उस दिव्य तेज को सहन नही कर सकता। और जब वह तेज संकट की रगड से उद्दीप्त हो उठता है, तब तो कहना ही क्या है? उसके सामने दानव की आत्मा भी कांप उठती है।

तिलकसुन्दरी बोली—खबरदार! जो एक पैर भी आगे सरका! मत समझना कि पाप विजयी होगा और धर्म पराजित हो जायगा! मैं अभी समुद्र मे कूद जाऊँगी पर मै नही डूबूँगी, तू डूबेगा और तेरा जहाज भी पाताल मे चला जायगा।

बन्धुदत्त सहम गया। उसको आगे बढने का साहस नही हुआ। इस बीच तिलकसुन्दरी शील सहायक देवता का स्मरण करने और णमोकारमंत्र का जाप करने लगी।

जो नारी स्वप्न में भी पर पुरुष की कामना नही करती और पूरी तरह पतिपरायण होकर अपने धर्म का पालन करती है, देवगण उसकी सहायता करते है, रक्षा करते है और उसके धर्म की भी रक्षा होती है। स्वय उसमे भी एक प्रकार की देवी शक्ति का आविर्भाव हो जाता है। ऐसी धर्मशीला नारी अन्त मे आनन्द ही आनन्द भोगती है।

२५-१०-४८ }

शक्तिः भक्ति

स्तुति :

सोऽहं तथापि तव भक्ति वशान्मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशो: परिपालनार्थम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं – हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! मैं आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत तो हो गया हू, किन्तु मुझमे स्तुति करने की शक्ति नही है। शक्ति न

होने पर भी स्तुति करने में जो प्रवृत्ति हुई है, उसका एक मात्र कारण, हे मुनीश, आपके प्रति मेरी प्रीति ही है। जगल में हिरणी हो और उसके बच्चे इधर--उधर क्रीड़ा कर रहे हों। ऐसे अवसर पर अचानक सिंह आ जाय तो हिरणी अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए सिंह का सामना करने को तैयार हो जाती है। वह जानती है कि सिंह के सामने उसकी चलेगी नही, फिर भी सन्तति-स्नेह उसे चुप नही रहने देता और अपनी अल्पशक्ति की परवाह न करके वह सामना करने को उद्यत हो जाती है। यही दशा मेरी है। आपके प्रति अनन्य अनुराग होने के कारण मुझसे स्तुति किये बिना रहा नहीं जाता। इस प्रकार जिन भगवान् ऋषभदेव मे ऐसी प्रबल आकर्षण शक्ति है, उन्ही भगवान् ऋषभदेव को मेरा वार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! शक्ति हो किन्तु भक्ति न हो तो काम सिद्ध नहीं होता। यही नही, वरन् भक्ति के अभाव मे शक्ति गलत राह पर चली जाती है। शक्ति जब गलत राह पर चली जाती है तो वह बडा ही अनर्थ पैदा करती है। वास्तव मे देखा जाय तो शक्ति एक तीक्ष्ण-शस्त्र के समान है। शस्त्र से अपने प्राणों की रक्षा भी की जा सकती है और प्राणो का अन्त भी किया जा सकता है। यदि शस्त्र का दुरुपयोग किया जाय तो उसका होना, न होने की अपेक्षा भी बुरा है। जिसके पास शस्त्र तो है, मगर जिसे यह नहीं मालूम कि उसका प्रयोग कहाँ, कब और कैसे करना चाहिए, वह उससे लाभ के बदले हानि ही उठाएगा। इसी प्रकार जिसके पास शक्ति है। मगर जिसे उसके सदुपयोग एवं दुरुपयोग का पता नही है, जो विवेकहीन है और जो गलत

तरीके से अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, वह अपनी शक्ति के कारण ही नाना प्रकार के कष्टो का पात्र बनता है।

आपने गत्यागति का थोकडा पढा होगा तो आपको यह भी मालूम होगा कि मनुष्य सातवे नरक मे जाता है। इसके बाद पशु-पक्षी आदि मे से पाचवे तक, कोई चौथे, तीसरे, दूसरे और प्रथम नरक तक ही जाता है। शास्त्रकारो के इस विवेचन का आशय आपको समझना चाहिए। इस पर गहराई के साथ विचार करेंगे तो स्पष्ट हो जायगा कि प्राणियो की शक्ति के विकास के अनुसार ही गति का क्रम है अर्थात् जिस प्राणी मे जितनी ज्यादा शक्ति है, वह उतने ही आगे के नरक मे जाता।

स्वर्ग और मोक्ष के सम्बन्ध मे विचार करने से भी यही तथ्य प्रकट होता है मुक्ति सबसे ऊँचा पद है और मनुष्य ही उसे प्राप्त कर सकता है। सर्वार्थसिद्ध आदि जो उत्कृष्ट स्वर्ग है, उन्हे भी मनुष्य ही पाता है अलबत्ता, आरम्भ के कतिपय स्वर्ग तिर्यंच भी पा सकते है।

तो इस कथन से मालूम हुआ कि सातवे नरक मे भी मनुष्य जा सकता है और मोक्ष मे भी मनुष्य जा सकता है। उत्थान और अधःपतन की दोनो चरम सीमाएँ प्राप्त करने की योग्यता मनुष्य मे है, और मनुष्य के सिवाय अन्य किसी मे नही है। इसका कारण यही है कि मनुष्य प्राणी-जाति मे सर्वश्रेष्ठ शक्ति से सम्पन्न है। जब वह अपनी शक्ति का सद्व्यय करता है, अपनी शक्ति को श्रेष्ठ कार्यो मे खर्च करता है तो वह मोक्ष का भी अधिकारी बन जाता है। इसके विपरीत जब कोई मनुष्य अपनी

प्रचण्ड शक्ति का दुर्व्यय करता है, अकल्याण की ओर लगा देता है तो वह सातवें नरक तक भी पहुंच जाता है। मतलब यह है कि शक्ति द्वारा ही निश्रेयस (मोक्ष) प्राप्त किया जाता है और शक्ति के द्वारा ही नरक प्राप्त किया जाता है।

आप विचार करो कि शक्ति दो आत्माओं में परस्पर विरोधी फल क्यो उत्पन्न करती है? किसी को सातवें नरक में और किसी को मोक्ष में कैसे पहुँचाती है?

इसका उत्तर यही है कि शक्ति का काम अग्रसर करना है। शक्ति जीव को गति प्रदान करती है, आगे की ओर प्रेरित करती है। मगर किस दिशा मे, किस ओर बढना चाहिए, यह विचार उसमे नही होता। यह विचार भक्ति होने पर आता है। जिसके हृदय मे शक्ति के साथ भक्ति है, वह योग्य दिशा में, कल्याण की ओर मुँह कर लेगा और शक्ति उसे उसी ओर बढाती चली जायगी। जिसमें भक्ति नही है, आसक्ति है, संसार के प्रति अनुरक्ति है, वह अपने अकल्याण की ओर अभिमुख हो जाता है और शक्ति उसे उसी ओर आगे बढा ले जाती है।

इस प्रकार शक्ति ही दोनो को आगे बढ़ाती है। उसका एक ही कार्य है—आगे बढाना। ऐसी स्थिति मे यह आशका ठीक नही है कि शक्ति परस्पर विरोधी फल कैसे उत्पन्न करती है? शास्त्र मे कहा है—

जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।

अर्थात्—जो कर्म में शूर होते हैं, वही धर्म में शूर होते हैं।

इस वाक्य का आशय यही है कि जिसमें अधिक शक्ति है वही कर्म करने मे शूरवीरता दिखला मकता है। जब उसी में भक्ति आ जाती है तो कर्म करने मे लगी हुई शक्नि धर्म की ओर झुक जाती है और वह धार्मिक वीरता को उत्पन्न करने लगती है।

भाइयो ! इस कथन का आशय यह है कि आप जब शक्ति की उपासना करे, अर्थात् शक्ति प्राप्त करने का प्रयास करे, तब भक्ति को न भूल जाएँ। अगर भक्ति विहीन शक्ति आपको प्राप्त हो भी गई तो वह आपको अमगल की ओर, पापो की ओर, मलीनता की ओर, विपत्तियो और व्यथाओ की ओर घसीट कर ले जायगी। अतएव भक्ति-भगवान् के प्रति प्रगाढ प्रीति-को हृदय मे उत्पन्न करो। शक्ति भक्ति की सखी बनेगी तो तुम्हारे लिए इसी जगत् मे स्वर्ग का निर्माण कर देगी।

कई लोगो का ऐसा विचार है कि भक्ति में विवेक की आवश्यकता नही है। विवेकहीन होकर भी भक्ति हो सकती है। यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। सच्ची भक्ति का उद्गम ही विवेक से होता है। जो भक्ति विवेक से उद्गत नही हुई, वह मनुष्य को अकसर गलत रास्ते की तरफ मोड देती है। भारत के पिछले धार्मिक इतिहास को ध्यानपूर्वक देखने से यह सत्य स्पष्ट रूप से विदित हो जायगा। भारत मे दासीप्रथा का जन्म कैसे हुआ था? भैसो और बकरो के गले देवी-देवताओ आगे बलि क्यो होते है? इसका कारण एक मात्र अविवेक ही है। अतएव विवेकप्रसूता भक्ति ही मनुष्य को भगवान् की ओर प्रेरित करती है। उस विवेक को दूसरे शब्दो मे सम्यग्दर्शन भी कह सकते हैं। जहाँ सम्यग्दर्शन है, वहाँ सच्ची भक्ति होती है। जितने अशो मे सम्यग्दर्शन है उतने

ही अंशों में शुद्ध चेतना होती है । इस प्रकार चेतना दो प्रकार की है–शुद्ध चेतना और अशुद्ध चेतना । शुद्ध चेतना केवल ज्ञान दिलाने वाली है और अशुद्ध चेतना नरक की ओर ले जाने वाली है । शुद्ध चेतना बडी भारी चीज है । वह ऊँचे दर्जे की चीज है । शुद्ध चेतना ही जगत् मे सारभूत वस्तु है । अशुद्ध चेतना आवागमन बढाने वाली है और शुद्ध चेतना अजर-अमर बनाने वाली है । जीव अनादिकाल से जगत् मे भ्रमण कर रहा है और नाना गतियो और योनियों मे चक्कर काट रहा है, इसका प्रधान कारण अशुद्ध चेतना ही है । जब तक चेतना मे अशुद्धता है, भवभ्रमण का अन्त नही आ सकता । कोई भी देव या परमात्मा भी उसका उद्धार नही कर सकता ।

किसी की चेतना शुद्ध और किसी की अशुद्ध क्यों होती है ? इसका कारण कर्म है । यह बात मैं अपने पिछले व्याख्यानों मे स्पष्ट कर चुका हू । जब जीव को शुद्ध चेतना या सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है, तभी उसके भवों की गिनती होती है । नेमिनाथ भगवान् की या दूसरे तीर्थंकरो की आत्मा अनादि काल से भव-भ्रमण कर रही थी, मगर उन सब भवो का वर्णन किसी भी शास्त्र मे नही है । शास्त्र मे उन्ही भवों की गणना की गई है जबसे कि उन्हे शुद्ध चेनना प्राप्त हुई थी । भगवान् ऋषभदेव के तेरह ही पूर्वभव गणना मे आते हैं । तो क्या तेरह भवो से पहले उनकी आत्मा का अस्तित्व ही नहीं था ? अथवा अस्तित्व तो था, मगर वह जन्म-मरण न करके सदा एक रूप मे स्थित रहती थी ? दोनो मे से एक भी बात सभव नही है । प्रत्येक आत्मा अनादिकालीन है और वह निरन्तर भवभ्रमण करती रहती है ।

किन्तु जब तक वह अशुद्ध चेतना से ग्रसित है, उसके भवो की गिनती नही की जाती। गणना के योग्य वही भव होते हैं जिनमे आत्मा शुद्ध चेतना से विभूषित हो।

आज आप उंगलियो पर नाम लेते है—पहले ऋषभदेवजी, दूसरे अजितनाथजी आदि। यह क्यो गिनती मे आये? ग्यारह गणधरो की भी आप गणना करते हैं। यह सब महापुरुष गिनती के योग्य हैं। जिसका कोई नाम ही न ले या घृणा के साथ नाम ले तो उसकी गिनती ही क्या? उसका जीवन तो व्यर्थ हो गया समझना चाहिए। नीतिकार कहते हैं—

गुणिगणगणनारम्भे, न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी, वद वन्ध्या कीदृशी नाम? ॥

गुणी जनो की गणना करते समय जिस पुरुष के ऊपर संभ्रम के साथ उंगली न पडे, अर्थात् जो गुणवानो की गिनती मे न गिना जाय, उस पुरुष को जन्म देने वाली माता यदि पुत्र-वती कही जाय तो कहिए, वध्या किसे कहेगे? अर्थात् गुणवानो मे न गिने जाने वाले पुरुष को जन्म देने वाली माता वध्या है, क्योकि उसके पुत्र का होना और न होना समान है।

जिनकी गणना गुणियो मे की जाती है, वे जब तक जीवित रहते हैं, सर्वत्र सत्कार और सन्मान पाते हैं। प्रतिष्ठा के पात्र होते है। मगर मर जाने के बाद भी आदर के साथ उनका स्मरण किया जाता है। ससार मे वे चिरस्थायी यश छोड जाते है। अतएव वे मर कर भी अमर होते हैं।

किसी गली मे कुत्ता मर गया, बकरा मर गया अथवा जगल के किसी कोने मे हिरण या सूअर मर गया तो मर गया ! कौन उसका मातम मनाता है ? कौन उसके लिए शोक सभाए करता है ? किस अखबार में उसका चित्र या समाचार छपता है ? कौन उसे याद करता है ? अरे, कौन उसकी ओर ध्यान भी देता है ? उसकी गिनती ही क्या है ?

स जातो येन जातेन, याति वंश समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे, मृत. को वा न जायते ? ॥

संसार परिवर्त्तनशील है । इसमे कौन ऐसा प्राणी है जो न मरता हो या न जन्म लेता हो ? सभी जन्म-मरण के आवर्त्त मे पडे हुए हैं । मगर उसका जन्म सार्थक है जिसने जन्म लेकर अपने कुल की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लगा दिये है ।

आज ससार मे जितने भी वश प्रसिद्ध है और जिनका नाम लेते ही हृदय मे एक प्रकार की जागृति सी प्रतीत होने लगती है, उनकी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि उनमे जन्म लेने वाले महापुरुषो की बदौलत है । अरिष्टनेमि और श्रीकृष्णजी जैसे महा-पुरुषो ने यदुकुल को प्रसिद्ध किया राम जैसे मर्यादा-पुरुष जनमे तो रघुकुल की प्रसिद्धि हुई, भगवान् ऋषभदेवजी की महिमा ने इक्ष्वाकुवश को महिमा प्रदान की और महावीर स्वामी ने ज्ञात वश को जगत् मे प्रसिद्ध कर दिया । ऐसे पुरुषो का जन्म सार्थक होता है । बाकी कुत्ते की मौत मर जाने के लिए पैदा होने वालों की कोई गिनती नही है ।

भाइयो! धन का भण्डार या भरी हुई तिजोरिया छोड जाने से तुम स्मरणीय नही बनोगे। उस धन को पाकर तुम्हारे उत्तराधिकारी अगर अनाचारी हो गये तो लोग तुम्हे भी कोसेंगे। इसी प्रकार सातमजिला महल बनवाने से भी तुम गणना के योग्य नही बन सकोगे। भूकम्प का एक ही धक्का उसे भूमिशायी बना देगा। नही तो काल उसे धरती मे मिला देगा। पुत्र-पौत्र आदि का बडा परिवार भी तुम्हारा जीवन सार्थक नही बना सकता। ससार की कोई भी वस्तु तुम्हारा सच्चा स्मारक नही बन सकती। अगर तुम चाहते हो कि ससार तुम्हारा नाम ले, तुम स्मरणीय समझे जाओ तो शुद्ध चेतना प्राप्त करो। शुद्ध चेतना अर्थात् विवेक या सम्यग्दर्शन पाकर तुम्हारी शक्ति तुम्हें समीचीन पथ की ओर ले जायगी और आखिर गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे। भक्ति करते-करते तुम स्वयं ऐसे बन जाओगे कि जगत् तुम्हारी भक्ति करेगा। इसके लिए दुनिया की वस्तुओ की शरण न लेकर भगवान् ऋषभदेवजी की शरण लो।

भगवान् की भक्ति करते समय यह न सोचो कि हममें योग्यता नही हैं या कम योग्यता है, हम अशक्त हैं या अल्पशक्ति हैं, हमारे पास सामग्री नही हैं या बुद्धि नही है। जो कुछ भी तुम्हारे पास है, प्रभु की भक्ति के लिए वही पर्याप्त है। तुम्हारे पास अगर विशुद्ध चित्त है, निर्मल अन्त करण है तो बस यही बहुत है। इसी से भगवान की भक्ति करो, परमात्मा को रिझाओ। इसी मे तुम्हारे हित निहित है। इतना करने से ही तुम गिनती के योग्य बन सकोगे। भाइयो! मनुष्य हुए हो, उच्च आर्य कुल मे जनमे हो, वीतराग की वाणी सुनने का सुअवसर पाये हो तो चूको मत।

चूके और चूके। कम से कम उम्मीदवारो मे तो अपना नाम लिखा लो। कई लोग उम्मीदवारी मे भी नही है, कई उम्मीदवार है और कई ड्यूटी पर नियुक्त हो चुके है। अगर उम्मीदवार भी बन जाओगे तो भी परमात्मा के सिवाय और किसी के सामने सिर झुकाने की आवश्यकता नही रहेगी। हा, सद्गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखनी होगी। अगर बकरा कटता होगा तो उसे बुरा समझना पडेगा। अगर उम्मीदवार के कायदो को न मानोगे तो उम्मीदवारो की सूची मे से नाम कट जायगा। फिर चौरासी मे भटकते फिरोगे। अतएव शुद्ध चेतना को प्राप्त करो, एक बार शुद्ध चेतना को आने तो दो!

जिसकी अन्तरात्मा मे एक बार शुद्ध चेतना का उदय हो जाता है, उसमे ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वह निज स्वरूप मे तन्मय हो जाता है व उसे आत्मसाक्षात्कार की स्थिति प्राप्त हो जाती है। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति इतनी आनन्दमयी होती है कि उसका रसास्वादन कर लेने के अनन्तर ससार की वस्तु मात्र नीरस प्रतीत होने लगती है। उसके अनिर्वचनीय, केवल अनुभूति मे आने योग्य आनन्द के सामने ससार के सभी आनन्द फीके पड जाते हैं। आत्मसाक्षात्कार की स्थिति एक अपूर्व और अद्भुत वरदान है और जिसे उसकी प्राप्ति हो गई वह महाभाग्य-वान् है। वह आननफानन मे नित्य निरजन पद पर पहुच जाता है। इसीलिए भाइयो! मै आपको यह उपदेश करता हूँ। आप इस पर श्रद्धा रख कर शास्त्र मे बतलाये हुए कायदो के अनुसार अमल करो। इस पर चिन्तन करो, मनन करो और शक्ति के अनुसार चलने का प्रयत्न करो। केवल सुन लेने मात्र से कुछ न होगा।

सुणिया पिण श्रद्धया नही कैसे पहुंचे ठेठ ।
करतो फिर रे जोगडा, वेगारी सी बेठ ।

भाई ! सुन लेने मे क्या महत्त्व है ? सुनने को तो कबूतर भी सुनते हैं और दूसरे जानवर भी सुनते है । मगर सुनकर श्रद्धा करने वाला ही अपने ठिकाने पर मोक्ष मे पहुंचता है । जो सुनकर श्रद्धा नही करता और श्रद्धा लाकर भी उसके अनुसार नही चलता उसका मनोरथ पूरा नही हो सकता । आखिर चले बिना कैसे काम चलेगा ? रोटी से भूख मिटती है, यह जानते हो और इस पर विश्वास भी करते हो, मगर प्रयत्न किये बिना भूख कैसे मिटा सकोगे ? रोटी की सामग्री जुटाने के लिए हाथ-पैर हिलाने पडते हैं और उसे तैयार करना पड़ता है, तभी भूख मिटती है । 'रोटी-रोटी' चिल्लाने से भूख मिटती होती तो किसानो को चोटी से एडी तक पसीना क्यो बहाना पडता ? दुष्काल क्यो पडता ? लोग 'रोटी--रोटी' रटते हुए काल के गाल मे क्यो चले जाते ? काम करने से होता है, बातो से नही ।

एक सेठ अपनी हवेली मे स्नान कर रहे थे । उनकी आठो पत्नियाँ उन्हे स्नान करा रही थी । वह आठो पतिव्रता थीं, जिनमे कई रईसों की कन्याए भी थी । उनमे एक शालिभद्रजी की बहिन भी थी । उसका नाम सुभद्रा था । वह भी स्नान करा रही थी । उसे समाचार मिला था कि उसका भाई शालिभद्र नित्य एक २ पत्नी का परित्याग कर रहा है । उसके बत्तीस स्त्रिया थी और बत्तीस दिनो मे वह सब स्त्रियो को त्याग देगा । शालिभद्रजी की ऋद्धि का क्या वर्णन किया जाय ? आज भी वैश्य लोग अपनी

वहियों के प्रथम पृष्ठ पर ऋद्धि के लिए उनका नाम अंकित करते है। देव उसके घर मे ऋद्धि भेजता था तो फिर कमी क्या रह सकती थी ?

उसी शालिभद्र के घर एक बार राजा श्रेणिक आये। उसी दिन से शालिभद्र के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह क्रमश. अपनी पत्नियो का परित्याग करने लगा और मुनि-धर्म अगीकार करने के लिए उद्यत हो गया। इस बात का स्मरण करके सुभद्रा की आँखो मे आँसू आ गए। वहिन का भाई के प्रति गहरा स्नेह होना स्वाभाविक है। फिर सुभद्रा का वह एकाकी भाई था। वह सोचने लगी कि भाई गृह त्याग करके मुनि वन जायगा तो मेरे पीहर का दीपक बुझ जायगा! सुभद्रा के हृदय मे ऐसा शोक उमडा कि वह आँसुओ को न रोक सकी। उस समय वह सेठ की पीठ पर हाथ फेर रही थी। उसके आँसू पति की पीठ पर गिर पडे। सेठ ने सोचा—शीतल जल मे यह उष्ण जल कहाँ से आ गया ?

सेठ ने पीठ फिरा कर सुभद्रा की ओर देखा तो उसकी आँखो मे आसू थे। सेठजी उसी समय खडे हो गए। उन्होने पूछा—सुभद्रा ! तुम्हे किस बात का दु ख है ? मेरे रहते तुम्हे क्यो रोना पडा ? कारण तो वतलाओ !

तेरे शालिभद्र सा वीर, मेरे घर नारी,
धन धन्नाजी ने कैसी ममता मारी

हे प्रिये ! दिव्य सम्पत्ति के स्वामी शालिभद्र जैसे तो तुम्हारे

भाई हैं जिसके भोजन के लिए देवता नन्दन वन के फल लाकर हाजिर करता है ।

नन्दन वन के फल वासुदेव और चक्रवर्ती को भी मिलना मुश्किल है। मगर वह देव इन्ही के पिता का जीव था, अतएव शालिभद्र के लिए भेजता था। प्रतिदिन नवीन वस्त्रो और आभूषणो की पेटिया भी उसके घर में स्वर्ग से आकर उतरती थी।

सेठजी ने कहा–तो शालिभद्र जैसे भाई तुम्हे मिले हैं और मुझ जैसा पति, फिर भी तुम्हे दु ख किस बात का है ? अगर तुम दु ख का अनुभव करोगी तो सुख कौन अनुभव करेगा ?

थारे कमी नही कोई बात क्यो तू घबराये,
तब हाथ जोड़ सुभद्रा यो फरमावे—
मेरे एक वीर अति व्हालो पीहर में कहावे,
श्रेणिक राजा खुद देखन को घर आवे ।
उसी दिन नार नित्य एक एक छिटकावे,
कर बत्तीसो त्यागन संयम मे चित्त चावे।
इस कारण कन्ता लग्यो सोच अति भारी ।।

सेठ धन्नाजी कहते हैं कि हे सुभद्रा ! तुम सब प्रकार से सुखी हो। तुम्हारे लिए किसी चीज की कमी नही है। परन्तु भाइयों ! ससार मे सुख कहा है ? किसी को शारीरिक और किसी को मानसिक दु ख लगा हुआ है। कोई स्त्री विधवा तो कोई बन्ध्या है कोई बन्धुहीना है और कोई किसी दु ख से पीड़ित है।

क्या नर और क्या नारी सभी अपनी--अपनी वेदनाएं लिये बैठे हैं ! विधवा का पति मर गया है और ऊपर से जेठ गालियाँ देता है, जली-कटी सुनाता है और भीतर मे सासू अलग अपने विषमय वाक्य-बाणो से दिल को बेधती है ! वह कहती है--डाइन ! मेरे बेटे को खा गई !

भाइयो ! घोर दुःख से पीडित उस विधवा बाई से ऐसे शब्द बोलने वाली के मुख मे, अगले जन्म मे, क्या कीडे नहीं पड़ेगे ? ऐसे कठोरतर शब्द बोलने वाली क्या घोर पाप के फल की भागिनी नही होगी ? पूर्वजन्म मे करनी करने में कसर रखने से ऐसे दुःख भोगने पड़ते हैं। याद रक्खो, पूरे पुण्य का उदय न होने पर ही ऐसी घोर वेदनाओ का अनुभव करना पड़ता है । अस्तु ।

धन्ना सेठ के कथन के उत्तर मे सुभद्रा कहती है-प्राणनाथ ! मेरा शालिभद्र इकलौता भाई है । वह इतना पुण्यशाली है कि एक करोड़ ७१ लाख गावो का स्वामी राजा श्रेणिक भी उसे देखने के लिए उसकी हवेली मे आया था । परन्तु उसी दिन से उसे न जाने क्या हो गया है कि वह एक-एक स्त्री प्रतिदिन त्यागता जा रहा है । इसी क्रम से सब स्त्रियो को त्याग कर वह सयम ग्रहण करना चाहता है ! उसके मुनि बन जाने पर पीहर की ओर से मैं निराधार हो जाऊगी । मुझे तो अपने वीरा का ही आसरा है ।

कहो भाई ! करोडपति के घर की स्त्री भी भाई की आशा करती है । सुभद्रा कहती है कि उसके चले जाने पर मेरे पीहर में फिर कौन रह जायगा ? मेरी बूढ़ी माता किसके सहारे अपनी

शेष जिंदगी बिताएगी ? मेरी भौजाइया अपनी लम्बी उम्र कैसे बिताएँगी ?

सुभद्रा की यह बात सुनकर धन्ना सेठ ने कहाः—

वह कायर वीर तेरा एक-एक नित छोड़े,
जो लेना जोग त्रिया से नेह क्यों जोड़े ?
या खबर नहीं जग बीच काल आ दोड़े,
सुन कर सुभद्रा दोनों कर को जोड़े ।।
ये बातां करणी सहज करे कुण होड़े,
पण शालिभद्र से शूर जगत में थोड़े ।
तुम कायर कंथ क्यों बैठे घर मँझारी ? ।।

धन्नाजी ने कहा—तुम कहती हो कि एक-एक करके बत्तीस स्त्रियो का त्याग कर देंगे और तपस्या करने चले जाएँगे, किन्तु ऐसा करने वाले शालिभद्र तो कायर हैं। जब साधु बनने का ही विचार कर लिया है तो फिर औरतो मे क्यो अटके हैं ? क्यो नही सब को एक साथ त्याग देते ? कहा है:—

सूरा चढ संग्राम में, फिर पीछे ना जोय ।
उतर पड़े मैदान मे, होनी हो सो होय ।।

इतनी विशाल समृद्धि और सुन्दर रमणियो को छोडकर ससार की ओर से मुँह मोड़ने वाले, सुकुमार और अतिशय प्रिय भाई शालिभद्र के सम्बन्ध मे सहानुभूति विहीन अप्रिय शब्द सुन

कर सुभद्रा को जो जोश आ गया । उसने कहा—मेरे भाई की होड़ कौन कर सकता है ? आप मेरे भाई को कायर कहते हैं, मगर देखा जाय तो कायरता आपमे है, उसमे नही । मेरा भाई नित्य एक-एक स्त्री का त्याग कर रहा है, आप सिर्फ एक का ही त्याग कर के देखो ! प्रियतम ! स्वय कायर होकर दूसरे वीर को कायर कहना आपको शोभा नही देता । मैं तो यह आशा रखती थी कि आप समझा-बुझा कर उसे रोकेंगे, पर आप तो उसे उल्टी उत्तेजना देने को तैयार हैं । सुभद्रा की बात सुनते ही धन्नाजी ने कहा—

तब कहे धन्नाजो समझाय सभी सुन प्यारी,
मैने तो आज से त्यागी आठो नारी ।
अब लेवां सयम भार आत्मा तारी,
तुम खडी रहो सब दूर लगो मुझ खारी ।
तुम भगिनी मेरी कही चले तिरण वारी,
श्रीमति आदि दे पल्लो झाल फिरी आडी ।
भोली ननदी का वीर ! ऐसी क्या विचारी ।।

धन्नाजी बोले—तुम एक-एक को त्याग करने मे वीरता बतलाती हो और मुझे कायर समझती हो तो लो । मै एक ही साथ तुम आठो का परित्याग करता हूँ और आज ही, अभी-अभी त्यागता हूँ । मै दीक्षा लेने जाता हूँ । आज से तुम आठो भी मेरी बहिन के समान हो । धन्नाजी की यह बात सुन कर आठो स्त्रियाँ मग्न रह गई । श्रेणिक राजा की पुत्री और अभय-कुमार की बहिन श्रीमती ने सामने आकर उनका रास्ता रोक

लिया । बोली—नाथ ! बात का बतगड क्यो बनाते हैं ? आप हमे बिना अपराध क्यो त्यागते है ? बात तो सुन लीजिए ।

वह गदगद् बोले वैन सामने ठाडी,
झरझर नैनों से नीर भींज गई साडी ।
आप लीनी बात को तान भोलप में काढी,
उठ खड़े हुए सरदार पल्ले को झाड़ी ।।
इतने वर्षो की प्रीति तनिक नही पाली,
उत्तम पुरुषो की रीति नहीं निहाली ।
अब चलो महलो में मानो बात हमारी ।।

भाइयो ! आठो स्त्रीया रोने लगी । उनकी साड़ियां आसुओ से भीग गई । रोती-रोती कहने लगी—अजी, इसने तो भोलेपन मे ऐसा कह दिया है । मगर आप तो एकदम ही उस बात को खीच कर पकड़ बैठे हैं ! हमारी जो गलती हो गई, उस के लिए क्षमा करो । आपके साथ हमारा अर्से का प्रेम का नाता है । उस नाते को तिनके की तरह तोड कर मत फेंको नाथ ! महल मे पधारिये और हमारी सेवा को स्वीकार कीजिए ।

कहे धन्नाजी समझाय बात सुन लीजो,
मतलब का ढबला होय तो नाम मत लीजो ।
म्हारो चित अब जोगारम में भीजो,
थे अल्प सुखा पर कांई रीझो ।।

अब चलो हमारे संग ढील मत कीजो,
अविचल सगपण कर लेना ज्ञान में भीजो ।
सुन आठों प्रमदा कीनी संग तैयारी ।।

याद रक्खो, हाथी के दात खाने के और तथा दिखाने के और होते हैं। धन्नाजी बोले—हमारे दातो को दिखाने के मत समझना। तुम सब अपने-अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए रोती हो, परन्तु परिणाम इसका दारुण होगा। इन ससार के भोग विलासों से कभी तृप्ति नही हो सकती। ऐसी दशा मे इनको भोगने से भी क्या लाभ है ? अगर तुम्हे सचमुच ही सुख चाहिए तो तुम आठो भी तैयार हो जाओ और साध्वी बन जाओ।

इस प्रकार धन्नाजी और आठो स्त्रियो मे और भी कथनोपकथन होता रहा। अन्त मे आटो स्त्रिया समझ गई।

भाइयो ! परवीती बात कहते-कहते घरवीती बात याद आ गई। मैंने सवत् १९५२ मे दीक्षा ली थी और उसके पन्द्रह वर्ष बाद वि० सं० १९६७ मे मैंने जावरा मे चौमासा किया। पन्द्रह वर्ष दीक्षा पाल चुकने के बाद जावरा मे मेरे गृहस्थाश्रम की पत्नी अपने पिता के साथ मुझे फिर गृहस्थाश्रम मे ले जाने का विचार करके आई। खूब धूमधाम मची। आखिर उन्होने मुझसे बात करनी चाही बातचीत करने मे मुझे कोई ऐतराज नही था। दो श्रावको की मौजूदगी मे बात हुई। उसने पूछा—आखिर आपका इरादा क्या है ? मैंने कहा—मेरा इरादा तो मेरे काम और मेरा वेष ही प्रकट कर रहा है। मैं अपनी आत्मा

का उद्धार करना चाहता हूँ। अपना भला चाहती हो, जन्म-
जन्मान्तर के कष्टो से बचना चाहती हो तो तुम भी सयम ग्रहण
करलो।

आषाढ मे खींचतान आरम्भ हुई और आसौज शुक्ला
दशमी को उन्हें दीक्षा दिलवा दी। सात-आठ साल दीक्षा पालने
के बाद उन्हे न जाने किस प्रकार यह मालूम पड गया कि अब
सिर्फ सात दिन की आयु शेष रह गई। तब पहले दिन
उन्हे जो खाने की इच्छा थी सो मगवाया और खाया। दूसरे
दिन से यावज्जीवन के लिए अन्न-पानी का त्याग कर दिया और
उनकी आत्मा सात दिन बाद ही स्वर्ग की ओर चल पडी।

भाइयो! जिसका कल्याण होने को आता है, उसे कोई
न कोई निमित्त मिल ही जाता है। धन्ना सेठ को सुभद्रा के वचनो
का निमित्त मिल गया और उनकी आठो पत्नियो को धन्नाजी का
निमित्त मिल गया। अब आठो स्त्रियाँ भी दीक्षा लेने को तैयार
हो गई। सब गृह का त्याग कर दीक्षा लेने निकले तो रास्ते में
शालिभद्रजी की हवेली मिली। धन्नाजी ने उनसे कहा —

श्री शालिभद्र को धन्नाजी जतलाया,
उतरो अब नीचे क्यों कायर ललचाया।
तब दोनो मिल के संयम का पद पाया,
शालि सर्वार्थ सिद्ध धन्ना मुगति पद पाया,
गुरु हीरालाल प्रसादे चौथमल गाया,
उन्नीसे सत्तावन ज्येष्ठ मास में आया।
विचरत विचरत सीतामऊ शहर मंझारी।

धन्नाजी ने शालिभद्र की हवेली में जाकर कहा—अरे, अब नीचे क्यो नही उतरते हो ? कायरता धारण करके क्यो अटक रहे हो ? यह सुनते ही शालिभद्रजी भी सयम ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये। सब ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की। शालिभद्रजी सर्वार्थसिद्ध विमान मे अहमिन्द्र पदवी के धारक हुए और आगामी भव मे मोक्ष प्राप्त करेंगे। धन्ना मुनि ने उसी भव में मुक्ति प्राप्त कर ली।

तात्पर्य यह है कि जिनके अन्त.करण मे प्रगाढ श्रद्धा का आविर्भाव हो जाता है, वे भगवान् के मार्ग पर चलने मे देरी नही करते अगर आप मे श्रद्धा आ गई है तो विलम्ब करना धोखा खाना है। अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् की भक्ति करो और आत्मा को तारो। धन्नाजी मे शक्ति थी तो गृहस्थाश्रम मे भी उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की और जब आत्मकल्याण मे जुट पड तो वहा भी पूर्ण सफलता पाकर ही रहे। भाइयो ! तुम भी अपनी शक्ति को भक्ति के द्वारा सफल बनाओ। धर्म-पर दृढ रहो और परमात्मा पर श्रद्धा रक्खो।

भविष्यदत्त—चरित —

देखो, तिलकसुन्दरी अपने धर्म पर कितनी दृढ है ? बन्धुदत्त जब उसकी ओर आगे बढने गया तो उसने कडककर कहा—अब एक कदम भी आगे मत बढाना ! और उसने पच परमेष्ठी को तथा शीलरक्षक देवी चक्रेश्वरी को स्मरण किया। वह मन ही मन कहने लगी-हे माता चक्रेश्वरी ! धर्म की सहायता करो, पतिव्रत की प्रतिष्ठा को बचाओ और इस पापी से मेरा त्राण करो।

तुम अवधिज्ञान को धारण करने वाली हो । मेरे सकट को देखकर सहायता करने के लिए आने मे क्यो देर कर रही हो ?

सच्चे हृदय मे, धर्म की रक्षा करने के लिए देवी को स्मरण किया तो उसी समय देवी का आसन कम्पायमान हो गया । अवधिज्ञान का उपयोग लगाने पर उसे तिलकसुन्दरी के सकट का पता चला । उसी समय देवी जहाज मे आकर खडी हो गई । उसने बन्धुदत्त को ललकार कर कहा-ठहर पापी ! तुझे तेरे पाप का फल अभी चखाती हू । तुझे लज्जा नही आती और अपनी माता के समान भौजाई के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार करता है ? ले, तुझे जहाज के साथ इसी समुद्र मे डुबाए देती हूँ ।

देवी के आगमन का पता चला तो सभी वणिक् वहां जा पहुचे थे । उन्होने जहाज के डुबाने की बात सुनी तो बुरी तरह घबरा गये । सोचने लगे—इस पापी की सगति करने के कारण पहले धन से हाथ धोने पडे और अब प्राणो मे भी हाथ धोने पडेगे ! सब वणिक् अपने प्राणो की भीख मागने के लिए देवी के चरणो मे गिर पडे । बोले - माता ! हम लोग गरीब वणिक् हैं और सर्वथा निर्दोष है । हमने बन्धुदत्त की दुष्टता को स्वप्न मे भी अच्छा नही समझा हैं । देवी ! आप विवेकवती है । गेहूँ के साथ घुन को क्यो पीसती हैं ? दोषी को दण्ड देती-देती निर्दोषो को भी क्यो दण्ड देना चाहती है । माता हमे बचने दो ।

जहाज डगमग—डगमग होने लगा । ऐसा जान पडा मानो कोई बडा भारी तूफान आया है और अब जहाज औंधा होना ही चाहता है ।

इसी समय देवी ने कहा—एक पापी जिस नाव मे बैठता है, वह नाव डूबती ही है। तुमने पापी का साथ किया ही क्यो ?

वणिक् रोने और बिलखने लगे। उनका विलाप सुनकर सती तिलकसुन्दरी का मक्खन के समान कोमल दिल पिघल गया। उसने देवी से निवेदन किया देवी ! यह लोग निर्दोष है, इन्हे क्षमा कर दीजिए। और एक बार बन्धुदत्त को भी सुधरने का मौका दीजिए।

देवी ने बन्धुदत्त की ओर उन्मुख होकर कहा—दुष्ट नराधम, अब ध्यान रखना। अब फिर दुष्टता की तो याद रखना प्राणो की रक्षा न होगी। यह मत समझना कि तेरे पास शक्ति है, इस कारण तू धर्म का अपमान कर सकेगा। धर्म मे असीम शक्ति है और उसके आगे तेरी कोई भी ताकत काम न आएगी। सभी को असहाय समझना तेरी मूर्खता है। धर्म उसका सब से प्रबल सहायक है।

यह कह कर सती के ऊपर देवी ने पुष्प वर्षा की और उसकी धर्मपरायणता की प्रशसा की। इसके पश्चात् देवी अदृश्य हो गई।

जहाज फिर अपनी स्वाभाविक चाल से चलने लगा। बन्धुदत्त को अब साहस नही हुआ कि वह तिलकसुन्दरी से छेड-छाड करे। आखिर सफर पूरा हो गया। हस्तिनापुर आ गया। सब वणिक् गाडियाँ भर-भर कर अपने-अपने घर पहुचे। सब ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। बन्धुदत्त के पिता को समाचार मिला तो वह अपने साथियों के साथ जाकर अपने पुत्र को वधा

कर घर ले आया । उसकी प्रसन्नता का पार न रहा । जब उसने लाई हुई सम्पत्ति, जिसमे हीरा, मोती आदि जवाहरात थे, देखी और तिलकसुन्दरी को देखा, तब तो उसे आनन्द के साथ आश्चर्य भी हुआ ।

वन्धुदत्त के घर आकर तिलकसुन्दरी का दिल घबराने लगा । वह एक अलग कमरे मे रहने लगी । उसके सामने उत्तम से उत्तम भोजन लाया जाता है, परन्तु रोने के सिवाय उसे कुछ भी नही सूझता । यह हाल देखकर स्वरूपश्री—बन्धुदत्त की माता ने उससे पूछा—बेटा ! यह कौन है ? यह बोलती भी नही है और जब से आई है, बराबर आसू बहा रही है ।

वन्धुदत्त बोला - माताजी, इस बात का विचार न करो । अपना देश और कुटुम्ब छोड़कर नये घर मे आई है, इस कारण उसका मन नही लग रहा है । धीरे-धीरे मन लग जायगा । यह रत्नद्वीप के राजा की दुलारी कन्या है । राजा मुझ पर इतने प्रसन्न हुए कि न पूछिए बात । उन्होने कहा—मैं तुम्हे अपना जामाता बनाना चाहता हूँ । मैंने राजा से कहा--मैं तो शीघ्र ही अपने देश जा रहा हूँ । तब उन्होने अपनी कन्या मेरे साथ भेज दी और दहेज के रूप मे यह जवाहरात दिया । मेरी जल्दी ही लौटने की इच्छा के कारण विवाह नही हो सका । राजा ने कहा - वही ले जाकर विवाह कर लेना । अतएव इसे साथ ले आया हू । आगे की व्यवस्था करना तुम्हारा काम है । जब चाहो विवाह की विधि कर सकती हो ।

वन्धुदत्त की माता यह सुन कर फूल उठी ! मेरा बेटा

इतना गुणी है कि राजा ने अपनी कुंआरी कन्या उसके साथ भेज दी ! अपरिमित मोल के यह जवाहरात ! लडकी भी क्या है जैसे साक्षात् इन्द्राणी स्वर्ग से उतर आई हो ! धन्य, पुत्र हो तो ऐसा हो !

स्वरूपश्री ने उसी समय पास--पडौस मे बुलौआ भेज दिया। पडौसिने गीत गाने के लिए आ पहुँची। वे गाती है, बजाती है और तिलकसुन्दरी की ओर देखती जाती हैं। मगर इस मगल-मूहूर्त्त मे उसका फूट-फूट कर रोना देख कर उनके आश्चर्य की सीमा नही रहती। उनके मन मे उथल-पुथल होती है। सोचती हैं—विवाह तो सभी लडकियो का होता है, पर ऐसा रोना तो आज तक कही नही देखा था ! आखिर उन्हे सन्देह उत्पन्न हुआ और वे आपस मे नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगी। तब एक स्त्री ने गौर से तिलकसुन्दरी की ओर देखकर धीमे से कहा रग-ढ ग से तो ऐसा मालूम होता है, जैसे इसका विवाह हो चुका हो ! दूसरी ने कहा—भगवान् ही जाने इस रहस्य को। अपने को मतलब ही क्या है ? सुपारियाँ लो और अपने घर का रास्ता पकडो।

तिलकसुन्दरी चाहती तो सारी पोल खोल सकती थी। मगर प्रथम तो उसे यह नही मालूम हुआ कि मेरे विषय मे बन्धुदत्त ने घर वालो को क्या समझाया है ? दूसरे वह चाहती थी कि देखे, आगे क्या-क्या गुल खिलते हैं। उसे पूर्ण विश्वास था कि भविष्यदत्त शीघ्र ही उससे मिलेंगे और वह अपने शील की भली-भांति रक्षा कर सकेगी। वह प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार थी। बन्धुदत्त की पाशविकता की सीमा कहा है, यह बात भी वह जान लेना चाहती थी।

विवाह की तैयारियाँ आरम्भ होते ही स्वरूपश्री ने, कमलश्री को बुलावा भेजा। कहलाया कि यह घर भी आपका ही है और बन्धुदत्त भी आपका ही पुत्र है। अतएव उसके विवाह के समारोह मे प्रसन्नतापूर्वक भाग लेने के लिए आप अवश्य आइए। सब काम आपको अपने ही हाथ से करना है।

कमलश्री के पास जब बुलावा पहुंचा तभी उसे पता चला कि बन्धुदत्त घर आ पहुचा है। उसने बुलाने के लिए आई हुई दासी से पूछा—क्या भविष्यदत्त नही आया ? अकेला बन्धुदत्त ही आया ? जब दासी ने बतलाया कि उसने भविष्यदत्त के विषय मे कुछ भी नही सुना है और उसने उन्हे देखा भी नही है, तो कमलश्री के हृदय के मानो सैकडो टुकडे हो गये ! वह व्यथित होकर बेचैन हो गई। उसके हृदय मे नाना प्रकार की अनिष्ट आशकाए और सभावनाए उत्पन्न होने लगी।

अन्त मे कमलश्री ने उसे उत्तर दिया—जाओ, पहले भविष्यदत्त का समाचार ले आओ। फिर मैं आने के सम्बन्ध मे निर्णय करूँगी।

दासी चुपचाप लौट गई। उसने स्वरूपश्री से सारा वृत्तात कह सुनाया।

१८-१०-४८ }
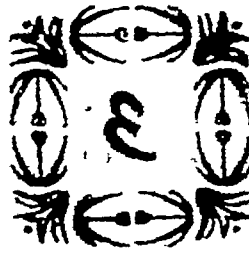
ज्ञान-महिमा

स्तुति :

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिल. किल मधौ मधुर विरौति,
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु. ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहा तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

हे आदिदेव ! मैं अल्पश्रुतवान हूँ और इतना अल्पश्रुतवान् हूँ कि शास्त्रज्ञ विद्वानों के समक्ष हँसी का पात्र हूँ । मगर

आपकी भक्ति मुझे मुखर बना रही है—मुझ से स्तुति करवा रही है। जब वसन्तऋतु आती है तो कोयल अत्यन्त मधुर स्वर से कूकती है उसका मुख्य हेतु आम के वृक्ष की कलियों का समूह ही है। जिस प्रकार आम्रकलिकाओं की विद्यमानता मे कोयल से बिना बोले नही रहा जाता, वह बोलने को विवश हो जाती है, उसी प्रकार आपके प्रति भक्ति होने से मै स्तुति करने को विवश हो गया हूँ। ऐसे भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्ही को मेरा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो! दुनिया मे भक्ति बहुत जबर्दस्त चीज है। भक्ति के प्रताप से अगणित जीवों ने अपना कल्याण किया है। मगर भक्ति तब आती है जब पूज्य बुद्धि हो। परमात्मा को जिसने वंदनीय और पूजनीय मान लिया है, उसी के हृदय मे भक्ति का उदय होता है। परमात्मा के अतिरिक्त और गुरुजनो के प्रति भक्ति की उत्पत्ति भी इसी प्रकार होती है पूज्य बुद्धि हुए बिना भक्ति नही आती।

किसके प्रति पूज्य बुद्धि होनी चाहिए और किसके प्रति नही, इसका निर्णय करने के लिए विवेक की आवश्यकता होती है। अतएव जीव के लिए सर्वप्रथम विवेक प्राप्त करने योग्य ठहरता है। इस विवेक को ही सम्यक्त्व कहते हैं। विवेक मे रोड़े अटकाने वाले और सहायक होने वाले कारण कौन है, इस संबंध में कहा गया है:—

जितना भावबंध कम हो, उतना ही समकित पाता है।
यदि तीव्र स्नेह पदार्थों मे, परमार्थ पृथक् हो जाता है॥

भावबंध की जितनी कमी होती है, उतनी ही समकित की विशेषता होती है। बंध दो प्रकार का है--द्रव्यबंध और भावबंध। जीव के अन्तःकरण मे बन्ध के कारणभूत जो राग-द्वेष रूप विभाव परिणाम उत्पन्न होते है, वे भावबन्ध कहलाते हैं और उन परिणामो के फलस्वरूप ज्ञानावरण आदि कर्मों के योग्य कार्मण वर्गणा के परमाणुओ का आत्मप्रदेशो के साथ एकमेक हो जाना द्रव्यबंध कहलाता है। इस प्रकार भावबंध कारण है और द्रव्यबंध उसका कार्य है। मगर यह कार्यकारणभाव एकान्त रूप नही है। द्रव्यबंध के निमित्त से आत्मा की राग--द्वेष रूप परिणति भी होती है इस दृष्टि से जब विचार किया जाता है तो द्रव्यबन्ध कारण और भावबंध कार्य बन जाता है। इस तरह द्रव्यबंध, भावबन्ध का कारण है और भावबन्ध, द्रव्यबन्ध का भी कारण है। दोनों ही दोनो के कार्य और कारण हैं। इनका यह कार्य कारणभाव अनादि काल से चला आ रहा है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि बीज और वृक्ष का पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चला आता है। बीज से वृक्ष की और वृक्ष से बीज की उत्पत्ति होती है। उसी प्रकार भावबन्ध से द्रव्यबन्ध की और द्रव्यबन्ध से भावबन्ध की उत्पत्ति होती है।

जब बाँधे हुए कर्मो का उदय प्रबल रूप से आता है, तब अन्तरात्मा मे राग-द्वेष की परिणति भी तीव्र होती है और धन सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार आदि परपदार्थों के प्रति उत्कट मोह का आविर्भाव हो जाता है। ऐसी अवस्था मे जीव परमार्थ से विमुख हो जाता है। इस प्रकार जगत् के पदार्थो से तुम्हारा जितना ही मोह जुड़ेगा, उतने ही तुम भक्ति से दूर होते जाओगे।

जीव ससार मे जो भ्रमण करता है, उसका प्रधान कारण मोह ही है। मोह की जब अत्यन्त प्रबलता होती है तब तो जीव के परिभ्रमण की कोई अवधि ही नही होती। मगर जिन जीवो ने एक वार विवेक प्राप्त कर लिया-सम्यक्त्वरत्न पा लिया है, वे भी अगर पुन उससे च्युत हो जाते है तो उन्हे कितने काल तक भवभ्रमण करना पडता है ?

अर्धपुद्गल काल जीव कोई समकित तज गोते खाते है।
कोई अन्तर्मुहूर्त्त मे ग्रंथि भेद पथ लांघ मोक्ष सुख पाते है।।

भाइयो! जो जीव एक वार ऊँचा चढकर फिर नीचे गिर जाता है और मिथ्यात्वगुणस्थान मे पहुँच जाता है, उसे अर्द्ध-पुद्गलपरावर्त्तन जितने लम्बे काल तक भी ससार मे भटकना पडता है। हा, कोई-कोई जीव अलवत्ता ऐसे भी होते है जो अन्त-र्मुहुर्त्त मे ही ग्रथिभेद करके, चौथे गुणस्थान मे आकर, तत्काल ही आगे के गुणस्थानो को लाँघते हुए मुक्ति के अमित आनन्द के भोक्ता वन जाते है।

कई जीव सम्यक्त्व पाकर गिर जाते हैं, कोई श्रावक के व्रतो को छोड देते है और कोई--कोई तो साधु-अवस्था को भी छोड़कर गिर जाते है। वास्तव में किस जीव के, कौन-सा कर्म, कब उदय मे आ जायगा, यह कोई नही जानता। सर्वज्ञ प्रभु के सिवाय और कोई पूरी तरह जान ही नही सकता। अतएव कब किसका कितना पतन होगा, यह जानना भी कठिन है।

साधुपनो नहि संचरयो श्रावक व्रत नही किया अंगीकार के।

आदरिया तो न आराधिया, ते हूँ रुलियो अनन्त संसार के
श्री मुनि सुव्रत साहेबा, दीनदयाल देवातणां देव के ॥

प्रथम तो साधुता अंगीकार नही की, श्रावक के बारह व्रत भी धारण नही किये, और कदाचित् अंगीकार कर लिए तो उनकी आराधना नही की। ऐसे जीव संसार मे लम्बे काल तक परिभ्रमण करते हैं। कहा है –

कहने वाले बहुत मिले, पर करने वाले दूजे है।
हलवाई तो पकवान करे, पर खाने वाले दूजे है॥

श्रोताओ की अपार भीड को मुग्ध बना देने वाला लेक्चर झाड़ने वालो की भी कमी नही है, सुन्दर ध्वनि मे गा-गा कर कथा करने वाले भी बहुत है, किन्तु अपने उपदेश और कथन के अनुसार आचरण करने वाले विरले ही होते है। जो कहते हैं पर करते नही, वे हलवाई के समान है, जो नाना प्रकार के मिष्ठान्न बना-बना कर दूसरो को देता है और आप मैले-कुचैले कपडे पहने बैठा रहता है। खाने वाले आते हैं और खनखन रुपये पैसे फेंक कर और मिष्ठान्न लेकर चले जाते है। इसी प्रकार व्याख्यान फटकारने वालो की कमी नही है; मगर आचरण और आराधन करने वालो की कमी है।

कई लोग तो यहा तक कहते है कि—अजी, इसमे क्या पडा है और उसमे क्या पड़ा है। उनसे पूछो कि भले मानुस, तुममे क्या पडा है? धर्म क्रिया का फल तो प्रत्यक्ष है। जो श्रावक दो घड़ी सामायिक करके बैठता है, वह उस समय मे समभाव

धारण कर लेता है, किसी से लडता नही, झगडता नही, गाली किसी को देता नही और पापकार्य मे प्रवृत्ति करता नही यह तो सामायिक का प्रत्यक्ष दिखलाई देने वाला फल है। इसी प्रकार उपवास के भी प्रत्यक्ष फल देखे जाते है जो उपवास करता है, उसे शान्ति मिलती है, उसमे सहनशीलता आती है उसकी व्याधिया मिट जाती है और उसका मन पवित्र हो जाता है। उपवास से किस प्रकार व्याधियो का विनाश होता है, यह बात आजकल के डाक्टरो ने भी स्वीकार की है। प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी अनेक डाक्टर तो उपवास के द्वारा ही अधिकाश रोगो का नाश हो सकना स्वीकार करते है। ऐसी हालत मे उससे पूछना चाहिए कि भाई, तू प्रत्येक क्रिया को व्यर्थ क्यो बतलाता है? तेरे बकवास से मानव समाज का क्या हित होने वाला है?

भाइयो! ससार मे नाना प्रकार के मत है और तरह-तरह के विचार है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। ऐसी स्थिति मे आप किसका कहना मानेगे और किसके कथन की उपेक्षा करेगे? यह आपके विवेक पर निर्भर करता है। अपने विवेक के द्वारा आप्त और अनाप्त का निर्णय करना होगा। जिस पर पूर्ण विश्वास किया जा सके, जो किसी भी दशा मे धोखा देने वाला न हो, जो स्वार्थी न हो और ज्ञानी तथा दयालु हो, उसे आप्त कहते है। ऐसे पुरुष की पहचान किस प्रकार हो सकती है? बढिया-बढिया बाते बना देने से, अमुक प्रकार का वेप पहन लेने से या गाना गाकर आपकी तबियत खुश कर देने से कोई आप्त हो सकता है? नही। परिपूर्ण और लोकोत्तर आप्त तो

भगवान् जिनेन्द्र देव ही हैं, जिन्होंने पूर्ण रूप से अज्ञान और कषाय को जीत लिया है। परन्तु वे आज यहाँ मौजूद नही है। अतएव अन्तः प्रेरणा से जो उनके मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं और भले ही विकारो को पूरी तरह जीत नहीं पाये है, मगर जीतना चाहते हैं और जीतने के लिए भरसक चेष्टा कर रहे है और तपस्या कर रहे हैं, वही संयमशील, आचरण--परायण साधक महापुरुष आप्त कहला सकते है। आपको उन्ही के पद-चिह्नो पर चलना चाहिए, उनकी ही बात माननी चाहिए और अपनी आत्मा का उत्थान करना चाहिए।

सब ही बाजे लश्करी, सब लश्कर में जाय।
सैल धमाका जो सहै, सो जागीरी खाय।

भाइयो ! सभी अपने आपको वीर और बहादुर कहते है और लश्कर मे भर्ती हो जाते हैं। मगर सच्चा शूरवीर वही है जो शत्रु को कभी पीठ नही दिखलाता। जो दुश्मन के सामने सीना तान कर खडा हो जाता है, वही जागीरी पाता है। राजा प्रसन्न होकर उसी को जागीर देता है।

स्त्री अच्छा काम करे और पति प्रसन्न हो जाय तो वह अच्छे-अच्छे गहने घडवा देता है। इसी प्रकार साधना के मार्ग मे आने वाली कठिनाइयो के कारण जो अपनी साधना से च्युत नही हो जाता, वल्कि डट कर कठिनाइयो, परीषहो, उपसर्गो को सहन करता है, उसी पर परमात्मा प्रसन्न होता है। ऐसा समझ कर परमात्मा के पथ पर ही चलना उचित है।

भाइयो ! भगवान् का मार्ग त्याग और तप का मार्ग है। यही मार्ग आत्मा को निर्विकार बनाने वाला है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए तपस्या और त्याग की सार्थकता तभी है जब कि वे विवेकपूर्वक हो। सम्यग्ज्ञानी पुरुष की तपस्या महान् फल प्रदान करती है। कहा भी है—

कोटि जन्म तप तपे ज्ञान बिन कर्म झरे जे,
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति ते सहज टरे ते ॥

अज्ञानी जीव करोड़ो जन्मो तक तपस्या करके जितने कर्मों की निर्जरा कर पाता है, उतने कर्म ज्ञानी क्षण भर मे क्षय कर देता है ! और भी कहा है—

मासे मासे उ जो बालो, कुसग्गेण य भुंजए।
न सो सुयक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं ॥

ज्ञानी और अज्ञानी जीव की तपस्या मे कितना अन्तर है ! कोई सम्यग्ज्ञानहीन तापस एक-एक महीने मे पारणा करता है और पारणे मे दूब की नोक बराबर अत्यन्त अल्प भोजन करता है, इतनी घोर तपस्या करने पर भी वह सुआख्यात धर्म की सोलहवी कला तक भी नही पहुच सकता !

एक आदमी सुबह से लकड़ी काटने के औजार लेकर जगल में जाता है और भारा लेकर शाम तक लौटता है। बाजार मे घटो खडा रककर उसे बेचता है, तब कही गिनती के पैसे उसे मिलते हैं। कितना घोर परिश्रम करता है परन्तु पाता है इतना कम

कि कठिनाई से पेट पाल सके। इसके विपरीत एक जौहरी मसनद के सहारे आराम से बैठा हुआ एक मोती इधर से उधर कर देता है और हजारो कमा लेता है! अज्ञानी और ज्ञानी की तपस्या मे इससे भी बड़ा फर्क है। ज्ञानी जो कार्य करता है सोच समझ कर करता है और अज्ञानी उसी काम को विना सोचे-समझे करता है! किसी भी क्रिया के पीछे ज्ञानी की दृष्टि विशुद्ध होती है और अज्ञानी की दृष्टि अशुद्ध होती है इन सब कारणो से क्रिया एक-सी प्रतीत होने पर भी उसके फल में वडा अन्तर पड जाता है।

एक ओसवाल अपने हाथ से भोजन वनाता था। उसने चूल्हा जलाने से पहले चूल्हे को भलीभाति देखा तो उसमे चूहे के बच्चे थे। बच्चो को देखकर उसने विचार किया-अगर मैंने किसी और से चूल्हा जलवाया होता और उसने सावधानी से न देखा होता तो कितना हत्याकाण्ड हो जाता? यह पचेन्द्रिय जीव आग मे भस्म हो गये होते।

भाइयो! यह तो आप जानते है कि चार बातो को चौका कहते है। रसोडे को भी चौका कहते है तो वहा भी चार बातो का ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो ईधन को देखभाल लेना चाहिए। प्राय. लकडियो में छेद होते हैं। और उनमे कई त्रसजीव घुसे रहते हैं विवेकी व्यक्ति जव चूल्हे मे लकडी डालना चाहता है तो उसे सूक्ष्म दृष्टि से देख लेता जमीन पर खडखडा लेता है कि कदाचित् कोई सूक्ष्म जीव-जन्तु हो और नजर न आया हो तो अलग हो जाय। कोई-कोई लकडी पडी २ घुन जाती है घुनी हुई लकडियो का उपयोग करना उचित नही है। उसका उपयोग करने से जीवहिंसा की सभावना रहती है।

चौके मे दूसरी आवश्यक बात है भोजन सामग्री को देख लेना। सभी जानते हैं कि पडे हुए अनाज, दाल, चावल, बड़ी, ममाले आदि में तरह २ के छोटे-बडे जीवजन्तु उत्पन्न हो जाते है अथवा इधर-उधर से आकर चढ जाते हैं। आटा बहुत दिनों का हो जाता है तो उसमें लटे पैदा हो जाती है, चावलो मे भी प्राय लटो का होना देखा जाता है। ऐसी चीजो को अगर साव-धानी के साथ देखभाल कर, जीवो की यत्ना करके, काम मे न लिया जाय तो बडी हिसा होती है। अतएव पापभीरु गृहस्थो को, खास तौर से बहिनो को इस हिसा से बचने का पूरा ध्यान रखना चाहिए। किस मौसिम मे कौनसी चीज, कितने दिनो मे विकृत होकर सड-गल जाती है, उसमे जीवजन्तुओ की उत्पत्ति हो जाती है, यह सब बाते ध्यान मे रखने मे गृहस्थ बहुत-सी हिसा से बच सकता है।

तीसरी चीज भोजन को देखना है। आपकी थाली मे जो भोजन आया है, उसे बिना देखे भाले मुँह मे डाल लेना उचित नही है। बहुत बार खूब सावधानी रखकर भोजन बनाने पर भी मक्खी या अन्य उडने फिरने वाले जीव या कीडी वगैरह जन्तु भोजन मे गिर पडते है। जो लोग बिना देखे भोजन करते है, वे उन जीवजन्तुओ को भी गटक जाते है और इससे अनेक प्रकार की शारीरिक एव मानसिक हानियाँ होती है। नानाप्रकार की बीमारिया हो जाती है। हिसा का पाप, असावधानी के कारण होता ही है। अतएव जिस पाप से सहज ही बचा जा सकता है, उस पाप से क्यो न बचा जाय ?

चौथी बात है बिना छना पानी काम में न लाना। पानी तरह-तरह के जीव-जन्तुओ का घर है। उसे गाढ़े और दोहरे छन्ने से छाने बिना जो काम में लेते है, उन्हे हिंसा का भागी होना पड़ता है। पानी छानने के विषय मे कवि ने कहा है:—

नूतन गाढो वस्त्र गुड़ी बिनु जो भया,
नाको गलनो करै चित्त धरिके दया।
डेढ हाथ लंबो जु हाथ चौड़ो गहै,
ताहि दुपड़ती करे छानि जल सुख लहे।
× × × ×
छाणत एकहु बूंद मही पर जो धरै,
भाषै श्री गुरुदेव जीव अगणित मरै।
वरतै मूरख लोग अगाल्यो नीर जे,
तिनकौं केतो पाप सुनौ नर धीर जे।
× × × ×
छाण्यौ काचौ नीर इकिन्द्री जानिये,
द्वै घटिका त्रसजीव-रहित सो मानिये।

भाइयो! इन पद्यो मे बतलाया गया है कि पानी छानने का छन्ना कैसा होना चाहिए, कितनी सावधानी रखनी चाहिए और एक वार छाना पानी कितनी देर तक छाना हुआ रहता है और उसके बाद वह फिर अनछना हो जाता है। इन सब बातों का ध्यान रखकर गृहस्थ स्त्रियां और पुरुष प्रवृत्ति करें तो बहुत-से पापो से बचाव हो सकता है।

भोजन बनाने की जगह चदोवा होना चाहिए, ताकि कोई जीव ऊपर से भोजन मे न गिर जाय ! जीव के गिरने से प्रथम तो उस जीव की मृत्यु हो जाती है और दूसरे भोजन भी अपवित्र और हानिकारक हो जाता है।

हाँ तो चार बातो का जहा ध्यान रक्खा जाय वही चौका कहलाता है। चौके का आशय यह नही कि बिल्ली और कुत्ता उसमे घुस जाए तब तो कोई हानि नही, मगर किसी दूसरे मनुष्य ने भूल चूक से पैर रख दिया हो तो अपवित्र हो गया। लोगो ने आज यही उलटा मतलब समझ लिया है। दादूजी कहते हैं—

दादू दुनिया खोटी, जावे तो गुदा मांजे लोटो।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो काम अज्ञानी करता है। उसी काम को ज्ञानी भी करता है, मगर दोनो के करने मे बहुत अन्तर होता है। एक अविवेक के साथ करता है और दूसरा विवेकपूर्वक करता है। अविवेक पाप का कारण है और विवेक पाप से बचाता है। जिन्हे भगवान् की वाणी सुनने का सुअवसर प्राप्त है, उन्हे तो विवेकपूर्वक ही व्यवहार करना चाहिए और किसी भी कार्य को करते समय अविवेक से बचना चाहिए। मनुजी कहते है—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ।
सत्यपूतं वदेत् वाक्यं, मनः पूतं समाचरेत् ॥

चलना हो तो देखभाल कर चलो। पानी पीओ तो वस्त्र से छाना हुआ ही पीओ, बोलो तो सत्य बोलो और कोई काम

करो तो अपने अन्तःकरण में पूछ लो। अन्तःकरण कह दे कि यह काम अनीति-अधर्म का नही है, तभी उसे करो। यह मनु ऋषि का कथन है।

आपने भगवान् पार्श्वनाथ की कथा सुनी होगी तो यह भी सुना होगा कि किस प्रकार एक तापस अपनी धूनी मे एक मोटा लक्कड जला रहा था। और उसमे घुसा हुआ नाग-नागिन का जोडा आग मे झुलस रहा था। कुमार पार्श्वनाथ तापस के पास पहुँचे। उन्हे अपने अवधिज्ञान से मालूम हुआ कि तापस की धूनी मे नाग-नागिन जल रहे हैं! उन्होने तापस को यह बात बतलाई तो उसने समझा कि राजकुमार मेरे प्रति द्वेष रखता है और मुझ पर झूठा आरोप लगाता है। कुमार ने उसे वह लक्कड बतलाया तापस ने क्रोध मे आकर, कुमार का आरोप मिथ्या सिद्ध करने के लिए लक्कड को फाडा तो उसमे से तडपता हुआ नाग-नागिनी का जोडा निकल पडा! तापस का जोश ठण्डा पड गया। वह लज्जित हो गया। पार्श्वनाथ कुमार ने उस जोड़े को नमस्कार-मन्त्र सुनाया। नमस्कार मन्त्र के प्रताप से उन्होने धरणेन्द्र और पद्मावती के रूप मे जन्म ग्रहण किया!

जो लोग उस समय वहा मौजूद थे, तापस की तपस्या को धिक्कारने लगे। परन्तु पार्श्वनाथ को तापस के प्रति कोई द्वेष-भाव नही था। उन्होने सिर्फ यही कहा कि आत्मा का कल्याण कोरे काय क्लेश से नहीं होता। कर्मो को भस्म करने के लिए ज्ञान रूपी अग्नि की आवश्यकता है। सम्यग्ज्ञान होने पर ही विधिपूर्वक किया गया तप आत्महितकारी होता है। ज्ञान के अभाव मे प्रत्येक क्रिया कर्मबन्ध का ही कारण होती है।

भाइयों ! इस उदाहरण से आप ज्ञानी और अज्ञानी की क्रिया का अन्तर समझ सकते हैं। सम्यक्त्व के साथ क्रिया की जाय तो भले ही वह थोडी हो, नवकारसी ही क्यों न हो, अज्ञान-पूर्वक की हुई बडी से बडी तपस्या भी उसकी बराबरी नही कर सकती। अतएव याद रखना चाहिए कि आत्मकल्याण के लिए सम्यग्ज्ञान की अनिवार्य आवश्यकता है।

जिसे नौ चीजो का यथार्थ बोध हो गया हो, वही सम्यग्ज्ञानी है। जीव क्या है और अजीव क्या है ? यह विवेक सर्वप्रथम आवश्यक है। जीव-अजीव का ज्ञान न होने से कितने ही लोग कल्याण करने के लिए प्रवृत्ति करते हैं परन्तु अकल्याण कर बैठते हैं। बहुत-से लोग जीव को अजीव समझ कर जीव-हिंसा के पाप के भागी होते है और कई लोग अजीव को भी जीव समझ कर मिथ्यात्व के चक्कर मे फस जाते है।

तीसरी और चौथी चीज है पुण्य और पाप। पुण्य और पाप की व्याख्या बडी ही गहन है और विस्तृत है। यहा उस पर अधिक विवेचन नही किया जा सकता, तथापि विवेकवान पुरुष अपने अन्त करण की शुद्ध साक्षी से पुण्य-पाप का निर्णय कर सकता है और प्राय अन्त करण की भावना के साथ ही पुण्य-पाप का प्रधान रूप से सबध है। ज्ञानी पुरुष गुरुजनो के उपदेश से और अवसर पर अपनी अन्तरात्मा के आदेश से पुण्य-पाप का विवेक कर लेते है। ऐसे कुछ सूत्र या गुर मालूम रहते हैं कि निर्णय करने मे विलम्ब नही होता। जैसे पहला गुर अहिंसा है। अहिंसा की भावना के आधार पर किया हुआ कार्य पुण्य-रूप होता है और हिंसा से प्रेरित कार्य पापरूप होता है। इस

बात को समझने मे ज्ञानी को कोई कठिनाई नही होती ।

पाँचवी और छठी चीज है—पाप-पुण्य का आना और आत्मा के साथ सम्बद्ध हो जाना । किस प्रकार पाप और पुण्य का आगमन होता है, किस प्रकार वे आत्मा के साथ बद्ध हो जाते है, किस प्रकार की भावना से पाप-पुण्य मे किस प्रकार की स्थिति और फलशक्ति उत्पन्न होती है, इत्यादि बातो की जानकारी ज्ञानी को होती है या होनी चाहिए ।

सातवी और आठवी चीज को संवर और निर्जरा कहते है । आये हुए और बांधे पापो को किस प्रकार नष्ट किया जाय नये सिरे से आने वाले पुण्य-पाप को किस प्रकार रोका जाय, यह जानना क्रमश निर्जरा और सवर को जानना कहलाता है ।

नौवी चीज मोक्ष है । उसका ज्ञान होना भी आवश्यक है । मोक्ष के सबध मे ठीक ज्ञान न होने के कारण ससार मे अनेक प्रकार की कल्पनाए सुनी–देखी जाती है । पिछले एक व्याख्यान मे उनके विषय में कुछ कहा जा चुका है । किस प्रकार समस्त उपाधियो से अतीत होकर आत्मा अपने पूर्ण विशुद्ध स्वरूप मे पहुंचती है, यह जानना आवश्यक है ।

भाइयों ! इन नौ बातो का जिसे सही ज्ञान हो गया है, वही सच्चा ज्ञानी है और उसी के कदम आत्म कल्याण की ओर उठते हैं । अभी तक आप छाछ ही छाछ चखते आ रहे हैं । अब मक्खन का भी आस्वादन करके देखो ! कोई लोग कहते हैं कि हमें सब कुछ मालूम है, अब कुछ भी मालूम करना नही है । ऐसे सम-

झने वालो की बीमारी असाध्य है। जो आदमी अपने अज्ञान को जानता है वह थोडा-बहुत जानता है। परन्तु जिसे अपने अज्ञान का ही पता नही है, वह बडे से बडा अज्ञानी है और उसका अज्ञान दूर होना भी बहुत कठिन है। भर्तृहरि ने अपने नीतिशतक मे कहा है कि जब मैं कुछ नही जानता था तो ऐसा मालूम पडता था कि मैं सभी कुछ जानता हू। उस समय मुझे अपने ज्ञान का बडा अभिमान था। किन्तु जब मैंने ज्ञानीजनों की संगति की और उनसे थोडा-सा ज्ञान प्राप्त किया तब पता चला कि मैं तो अभी कुछ भी नही जानता हू। उसी समय मेरा अभिमान चूर-चूर हो गया!

जानू जानू कह रहा है और चोर माल लिये जा रहे है।

चोर घर मे आ घुसा है। औरत ने सावधान किया और कहा कि देखो, चोर घुस आया है। सेठजी बोले-जानता हू। वह माल इकट्ठा करने लगा तो फिर स्त्री ने कहा-अजी, वह माल समेट रहा है! सेठजी फिर बोले-जानता हू चोर ने माल की गठरी बाधी और सिर पर धर कर रवाना होने लगा तो फिर स्त्री से न रहा गया। उसने कहा-वह तो लिये जा रहा है। सेठजी तब भी यही बोले-जानता हूँ। तब स्त्री झुझला कर बोली-तुम्हारा जानना जाय भाड मे, माल लुटा जा रहा है और कहते हो जानता हू। यह जानना किस मर्ज की दवा है! क्या लाभ हुआ ऐसे जानने से? जानने की सार्थकता तो उसके अनुसार व्यवहार करने मे है। ज्ञान का फल क्रिया है। जिस ज्ञान ने व्यवहार को शुद्ध नही बना दिया वह ज्ञान सफल नही हुआ। अतएव जो सच्चा ज्ञानी

होगा, वह अपने ज्ञान के अनुसार क्रिया जरूर करना चाहेगा और यथाशक्ति करता भी है।

भाइयो ! शास्त्रों मे बतलाया गया है कि अकेले ज्ञान से सिद्धि नही होती। ज्ञान के साथ क्रिया का मेल होना चाहिए।

जानने जानने में भी बड़ा अन्तर होता है। ज्ञान दो प्रकार का है--प्रयोजनभूत ज्ञान और अप्रयोजनभूत ज्ञान। जो ज्ञान आत्महित के लिए उपयोगी हो, वह प्रयोजनभूत ज्ञान कहलाता है और जिस ज्ञान से आत्महित में कुछ भी सहायता न मिल सके, वह अप्रयोजनभूत ज्ञान कहलाता है। अभी कहे हुए नौ तत्त्वों का ज्ञान प्रयोजनभूत ज्ञान है। पच्चीस क्रियाओ का ज्ञान भी प्रयोजनभूत ज्ञान है और षटद्रव्य के स्वरूप को समझना भी प्रयोजनभूत ज्ञान है। इस ज्ञान से आत्मा का हित साधने मे सहायता मिलती है। अतएव जानना हो तो इन्हे जानो। जिसने इन्हे जाना है वही वास्तव में भाग्यवान् है। वही आदमी है। ऊंची कुर्सी पर बैठने से या लाखों के धन का स्वामी होने से कोई बड़ा आदमी नही बनता! घोड़े की पूंछ बड़ी होती है पर वह तो पूरी तरह अपनी मक्खियां भी नही उड़ा सकती। उससे दूसरो का क्या भला होता है? वास्तव मे बड़ा वही है जो प्रयोजनभूत अर्थात् आत्मा के हित मे उपयोगी ज्ञान से समृद्ध हो और दूसरों को भी वैसा ही ज्ञान देता हो। जो ज्ञानवान् नही हैं वे न अपना हित कर सकते हैं, न दूसरो का ही हित करते हैं पापी जीवो को ऊंचा पद भी मिल जाय तो भी वे किसी के साथ भलाई नही करते।

सारांश यह है कि ज्ञान के अभाव में न आत्मोपकार हो

सकता है और न परोपकार ही हो सकता है। कदाचित् अज्ञानी किसी का उपकार भी करना चाहे तो उपकार के बदले वह अपकार ही करता है ज्ञान के बिना सत्-असत् का विवेक जो जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का प्रकाशमान् साधन है, कदापि प्राप्त नहीं होता अतएव मुमुक्षुजीवों को सर्वप्रथम ज्ञान की प्राप्ति करने का उद्योग करना चाहिए ज्ञान प्राप्त होने पर ही तपस्या मोक्ष का कारण बनती है और तभी अन्य क्रियाएं भी सार्थक होती हैं अतः अपना कल्याण चाहो तो नित्य थोडा-बहुत समय निकाल कर स्वाध्याय करो, शास्त्रज्ञाता विद्वानों के साथ तत्त्वचर्चा करो, जिज्ञासु बनकर प्रश्नोत्तर करो, नया ज्ञान जो सीखा हो उसका पुनरावर्त्तन करो। जो तुमसे भी कम ज्ञान वाले हों, उन्हें समझाओ। आत्मा के विषय में दृढ श्रद्धा रखकर उसके स्वरूप को समझो आत्मा किन कारणों से अपने स्वरूप से च्युत हो रही है और किन कारणों से उसे शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि हो सकती है, इत्यादि प्रश्नों पर विचार करो।

भविष्यदत्त-चरित.—

कमलश्री को समझने में देरी नहीं हुई कि दाल में कुछ काला है। उसका मातृहृदय विकल और व्यथित हो उठा। नाना प्रकार की अनिष्ट कल्पनाओं ने उसे चारों ओर से घेर लिया। अमंगलमय विचारों की कल्पना कर-करके कमलश्री असह्य वेदना में चीत्कार करने लगी। उसने विचार किया— मैं तो पहले ही समझती थी कि बन्धुदत्त मेरे लाल को धोखा देगा! यह सब उसी स्वरूपश्री की करतूत जान पड़ती है! हे भगवन्! अगर मैंने

अपनी जिन्दगी मे किसी का बुरा न सोचा हो तो मेरे भविष्य का भी बुरा न हो ! वह जहा कही हो, सकुशल हो, सानन्द हो और शीघ्र लौटकर मेरे जलते हुए कलेजे को शीतल करे ! इस प्रकार प्रभु से प्रार्थना करने पर उसका चित्त कुछ शान्त हुआ। उसे खयाल आया कि नगर के अन्य व्यापारी भी भविष्यदत्त के साथ परदेश गये थे। उनके पास जाकर भविष्यदत्त के समाचार पूछने चाहिए। यह सोचकर उसी समय वह उठी और कई व्यापारियो के पास पहुची। मगर बन्धुदत्त का बाप नगर सेठ था और राजा की मूछ का बाल माना जाता था। वह कुपित हो जाय तो न जाने क्या अनर्थ हो, यह सोच कर किसी ने भी कमलश्री को सच्ची बात नही बतलाई।

कमलश्री की आशा पर तुषारपात हो गया। मगर चुप बैठे उसे चैन नही पड़ सका। तब उसने बन्धुदत्त के पास जाने का निर्णय किया। बन्धुदत्त के पास जाकर उसने सबसे पहला प्रश्न जो किया, वह यही था कि—भैया कहां हैं ?

बन्धुदत्त ने हाथ जोड कर कहा—माता, मैं भी तो आपका ही बालक हूँ और परदेश से आया हूँ।

कमलश्री—अच्छी बात है, पर मैं तो यह जानना चाहती हू कि मेरे भविष्य को कहा छोड आए हो ?

बन्धुदत्त—उन्हे बहुत समझाया पर वे नहीं लौटे। वे परदेश मे ही रह गए।

कमलश्री—क्या वह स्वेच्छा से ही रह गया है ?

बन्धुदत्त की आँखे नीची हो गई। पापी के चेहरे पर गूढ लज्जा का जो भाव उदित होता है, वही भाव बन्धुदत्त के चेहरे पर उत्पन्न हो गया।

कमलश्री जान गई कि बन्धुदत्त पापी है और सच्ची बात नहीं बतला रहा है। वह दारुण वेदना लिए भारी पैरो से घर पहुची। साहसशीला होने पर भी वह अपने आपको रोक न सकी। वह विलाप करने और रोने लगी। कमलश्री की माता ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—बेटी, चिन्ता क्यो करती है ? भविष्यदत्त अवश्य आएगा।

सेठ को कमलश्री के आने और लौट जाने की बात मालूम हुई तो उसने बन्धुदत्त को बुलाकर भविष्यदत्त के विषय मे पूछ-ताछ की। बन्धुदत्त पाप के पथ पर इतना अग्रसर हो चुका था कि सत्य बात को प्रकट कर देने का साहस वह कर ही नही सकता था। अतएव उसने कहा—पिताजी ! भाई तो परदेश मे ही रह गये है। मैंने साथ-साथ चलने के लिए बहुत आग्रह भी किया, परन्तु उन्होने मेरी एक न मानी। असल बात यह थी कि मुझे अनमोल रत्न मिले, राजा ने अपनी कन्या दी और व्यापार में भी खूब कमाई हुई ! यह सब उनको अच्छा नही लगा। इतना ही नही, उन्हे मेरे ऊपर ईर्षा जागी।

खलन हृदय अति ताप विसेखी,
जरहिं सदा पर-सम्पति देखी ॥

खल जनो के दिल मे आग होती है और पराई सम्पदा देख-देख कर वे उस आग मे जलते रहते है।

पिताजी ! मैं क्या-क्या बतलाऊं ? वह मुझ पर बुरी तरह जलने लगे। खुद ने बिना सोचे-समझे व्यापार किया और परिणाम यह हुआ कि कमाई तो रही दूर, मूल पूंजी से भी हाथ धो बैठे। मैंने कई बार उनको सहायता भी की, पर कोई परिणाम नहीं निकला आखिर मैं क्या करता ? कहां तक साथ देता ? वे मुझ से अलग हो गये और न जाने कहां चले गये ? वहीं कहीं भटकते फिरते होंगे।

बन्धुदत्त ने जब यह सब बातें कहीं तो उसके चेहरे की रंगत और ही प्रकार की थी। सत्यवादी के मुख पर विश्वास और साहस का जो भाव देखा जाता है, वह उसके मुख पर नहीं था। लज्जा और संकोच उतरा रहा था। यह देख सेठ को बन्धुदत्त की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने बन्धुदत्त को तीखी दृष्टि से देखा और कहा—बन्धुदत्त ! जान पड़ता है कि सत्य बात यह नहीं है तुमने झूठी कहानी घड़ ली है। जो कुछ हो, सत्य-सत्य कहो। मेरे सामने असत्य बोलोगे तो भारी अनर्थ होगा !

बन्धुदत्त बोला—पिताजी ! मैं आपके सामने झूठ बोलूं तो मेरे मुंह पर कालिख पुते ! आप जानते हैं कि मेरे पुण्य को देख कर सभी जलते हैं। परन्तु मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ।

बाप और बेटे के बीच जो बातचीत हो रही थी, पास के कमरे में बैठी तिलकासुन्दरी सब सुन रही थी। बन्धुदत्त की झूठी बातें सुन कर उसे बहुत ही रोष आया। एक बार उसने सोचा-सेठजी के सामने जाकर सारी पोल खोल दूं। मगर कुछ सोचकर

वह शान्त रह गई। तिलकसुन्दरी ने सोचा-ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा है, बन्धुदत्त अपने पाप को बढाता चला जा रहा है। इसकी दुष्टता बढती जा रही है। जरा और देखूँ और इसकी दुष्टता बढ जाने दूँ। जब इसकी अनीति चरम सीमा पर पहुँच जायगी तभी इसे पर्याप्त दण्ड मिलेगा। बन्धुदत्त स्वय अपने विरुद्ध भयकर वातावरण का निर्माण करता जाता है। आज इसने पिताजी को धोखा देने का भी पाप कर डाला है! जरा और शान्ति रख कर इसके पापो का घड़ा भर जाने दूँ, फिर इस घड़े को फोड़ने मे क्या देर लगेगी? पापो का घडा भरते ही मैं झूठी लज्जा और सकोच का त्याग करके बन्धुदत्त की पोल खोल दूँगी।

भाइयों! लज्जा नारी का भूषण है, परन्तु लज्जा का जो स्वरूप आज समझा जाता है और जैसे व्यवहार मे लज्जालुता समझी जाती है, वह रूढि का ही प्रताप है। अनुचित लज्जा से आज अनेक घोर अनर्थ हो रहे है। स्त्रियो में शिक्षा का प्रचार यथावत् न होने के कारण वे आज दबी हुई हैं और अत्याचारी एवं गुण्डो का सामना नही कर सकतीं। स्त्री तो ऐसी हो कि कभी किसी गुण्डे का सामना हो जाय तो चुपचाप रह कर उसके अत्याचार को बर्दाश्त न करे, वरन् सिंहनी का विकराल रूप धारण करके प्रत्येक सम्भव उपाय से अपने सन्मान की रक्षा करे और गुडे को ऐसा सबक सिखावें कि वह भविष्य मे किसी भी नारी की ओर बुरी निगाह से देखने का साहस ही न कर सके।

सुनारों की बरात शादी के बाद वापिस लौट रही थी। शहर के बाहर किसी बगीचे मे बरात ठहरी और भोजन बनने लगा। भोजन करके शाम को रवाना होने का निर्णय किया गया

था। सब लोग अपने-अपने काम मे लग गये। कोई खेल कूद मे मस्त थे तो कोई शहर मे घूमने चल दिये थे। इसी समय बीद उचक-उचक करता हुआ किसी प्रकार तालाव मे गिर गया। शायद उसका पैर फिसल गया और गहरे पानी मे जा पहुँचा। वह 'हो हो' करके एक बार चिल्लाया। बीदणी तालाव के किनारे बैठी यह दृश्य देख रही थी। वह समझ गई कि बीदराजा को तैरना नही आता है और उनके प्राणो को खतरा है। बीदणी ने सोचा-क्या करना चाहिए ? मगर निर्णय तो तत्काल करना था। अतएव उसने उसी समय अपने ढीले-ढीले कपड़े उतारे और कांछ बाँधी और तालाव मे कूद पड़ी। इस तरह उसने अपने पति के प्राणो की रक्षा कर ली। बाहर आकर अपने वही सब कपडे पहन लिये और ज्यो की त्यो बैठ गई।

बहिनो! ऐसे विकट अवसर पर झूठी लज्जा के वश मे हो कर बैठी रहना क्या उचित है ? नही, तुम अपने व्यक्तित्व को पहचानो। अपनी शक्ति को समझो। बहुत सावधानी रखने का मौका है। जमाना बदल रहा है। लुच्चे-गुण्डे बहुत घूमते फिरते है। पहले जैसा वातावरण अब नही रहा है। अतएव तुम अपनी रक्षा और सहायता के लिए दूसरो पर ही निर्भर मत बनो। अपनी रक्षा करने का सामर्थ्य स्वय तुममे ही होना चाहिए। अपने शील, धर्म, सन्मान और गौरव को बचाने की शक्ति प्राप्त करो। गुड़िया की तरह मत रहो।

तिलकसुन्दरी सोचती है—ऐसी लज्जा मे क्या पड़ा है ? मैं चाहूं तो अभी हल्ला मचा सकती हूँ, राजदरबार मे जाकर बन्धुदत्त की कलई खोल सकती हूँ और मौका आने पर यही करूगी भी

मगर थोड़ा और तमाशा देख लेना चाहिए। परन्तु कितना निर्लज्ज और ढीठ है यह वन्धुदत्त! नंगा भूखा होकर आया था! मेरे पतिदेव ने इसे अपना भाई जान कर गले से लगाया। इसके घोर विश्वासघात की परवाह न करके भी इसे हीरे, मोती आदि दिये! मगर यह नरक का कीडा आज उनके विषय मे ऐसे शब्दो का प्रयोग कर रहा है! कितना नीच है, कितना निर्लज्ज है!

तिलकसुन्दरी सोचती-सोचती एकदम उत्तेजित हो उठी! फिर उसने सोचा-ऐ मन, धीरज धर। उतावल मत कर। देख आगे क्या होना है? तुझे भय ही क्या है? धर्म की प्रचड शक्ति के सामने पाप कब तक ठहरेगा? वह तो नष्ट होने को ही है!

यह सोच कर तिलकसुन्दरी ने फिर धैर्य धारण किया। वह अपने चित्त मे अशान्ति उत्पन्न होने पर णमोकारमन्त्र का जाप किया करती थी। महामन्त्र का जाप करने से सभी प्रकार के विघ्न नष्ट हो जाते है, चित्त मे शान्ति का सचार होता है। तिलकसुन्दरी कई बार यह अनुभव कर चुकी थी। मन्त्र का जाप करने से उसे अपूर्व शक्ति प्राप्त हो जाती थी और निर्भयता एवं निश्चिन्तता से उसका चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता था कि कोई दिव्यशक्ति मेरे चारो ओर घेरा डाले खडी है और मै सर्वथा अजेय हूँ। किसी की हिम्मत नही कि वह मेरे पास फटक सके!

इस प्रकार के दृढ विश्वास से तिलकसुन्दरी को बडा लाभ हुआ था। अतएव वह णमोकारमन्त्र का फिर जाप करने लगी।

२८-१०-४८ }

समाप्त